वै
९८

ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्सा

प्रथम भाग

(१८)

मुखरोग-विज्ञान

शुक्ला बुक हाउस
अमीनाबाद
लखनऊ

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य

सुधानिधिग्रन्थावली

ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्सा

प्रथम भाग

शालाक्य तन्त्रान्तर्गत

मुखरोग-विज्ञान

लेखक

भरद्वाज जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य

प्रयाग

दाँत और दाढ़

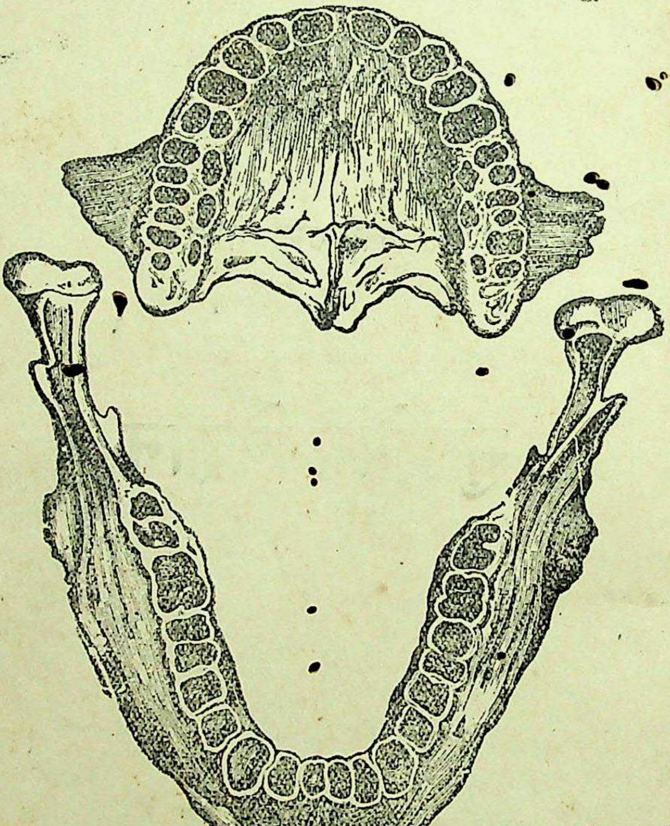

ऊपर ऊर्ध्वहनुमें ऊपरके दाँत तथा दाढ़ औंर निम्न हनुमें नीचेके दांत और दाढ़ दिखायी गयी हैं।

मुखविवर

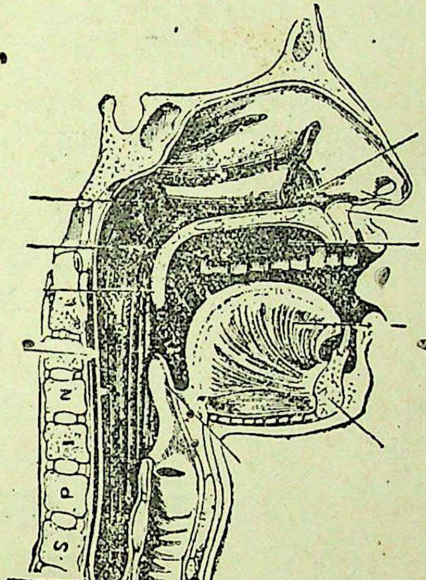

इसमें मुखविवर, गलकक्ष, अन्ननलिका और श्वासनलिका दिखायी गयी है।

जिव्हाका ऊपरी भाग

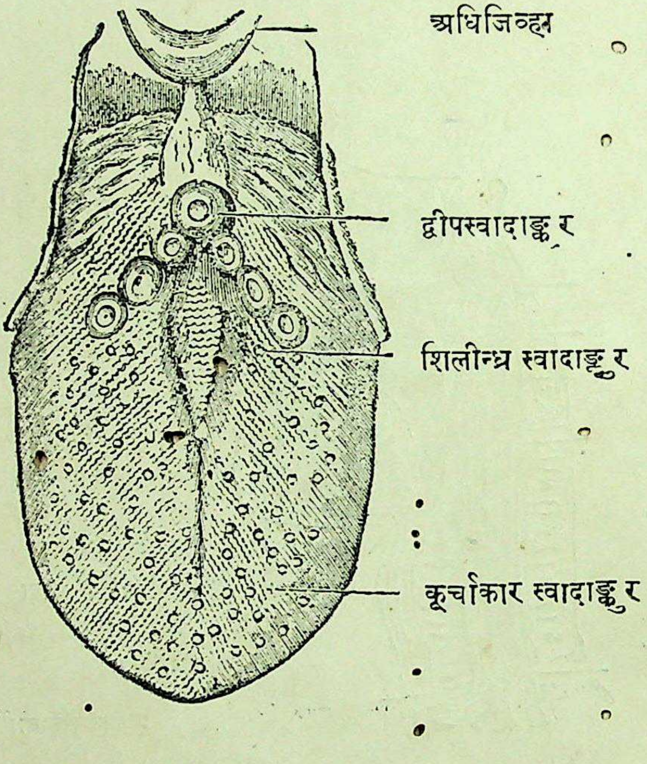

श्रीधन्वन्तरयेनमः
श्रीमते भरद्वाजायनमः

प्राक्कथन

ऊर्ध्वाङ्गके अन्तर्गत मुखकी अपनी एक अलग विशेषता है। विशेष कर मुखमण्डल देखनेसे ही मनुष्यकी पहचान होती है। मुखसे बोलकर ही मनुष्य अपने भाव प्रकट करता है, मुखकी बोलचालसे ही मनुष्य दूसरोंको अपने वशमें कर सकता या अपना शत्रु बना लेता है। मुखसे आहार और जल ग्रहणकर मनुष्य शरीरकी रक्षा करता है और सारे शरीरको बल पहुँचानेका कार्य सम्पादन करता है। ऊर्ध्वाङ्गमें मुख ही प्रथम परिगणित अंग है। इसलिये ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्साका प्रथम भाग मुखरोग-विज्ञान ही हो सकता है।

इस पुस्तककी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मुखमण्डल की बाहरी और भीतरी बनावटका आवश्यकतानुसार सूक्ष्म वर्णन किया गया है। मुखके अन्तर्गत जितने विभाग हैं, सबकी बनावट और उनके कार्य बतलाये गये हैं और उनमें होने वाले रोगोंका पृथक पृथक वर्णन किया गया है। यद्यपि मुखसामुद्रिकका अंश इसका आवश्यक भाग नहीं है, तथापि मुखमण्डलकी बनावटके अनुसार मनुष्यकी प्रकृति और गुण-दोष जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये यह अंश कौतूहलवर्धक होगा। यह अंश विद्यार्थियोंके लिये अनावश्यक है। बनावट जान लेनेसे रोग समझनेमें और चिकित्सा करनेमें अधिक सुविधा हो सकती है। वैद्यके लिये शारीरज्ञान इसीलिये अनिवार्य समझा जाता है। आयुर्वैदिक ग्रन्थोंमें सम्पूर्ण मुखमें ६७ रोग गिनाये गये हैं। ओष्ठगत रोग ८ दन्तमूलमें १६ दांतोंमें ८ जिव्हामें ५ तालुमें ९ गलेमें १८ और मुखके अन्य भागमें ३ रोग लिखे गये हैं। किन्तु इस पुस्तकमें इससे बहुत अधिक रोगोंका जिक्र हुआ है।

ओष्ठगत रोगोंमें खण्डोष्ठ, ओठोंकी सफेदी, ओठोंका फड़कना, ओष्ठ आकुंचन, ओठोंके मस्से और जलाबुर्दका अधिक वर्णन हुआ है। जिससे इनकी संख्या १४ हो जाती है। ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा में मुखमण्डलके वाह्य रोगोंका वर्णन नहीं हुआ। किसीका वर्णन क्षुद्र रोगोंमें हुआ है और किसीका हुआ ही नहीं, किसीका बहुत संक्षेपमें हुआ है। इसमें ११ वाह्य रोगोंका वर्णन चिकित्साके सहित हुआ है। जिव्हागत रोगोंमें अधिजिव्ह, रक्तजजिव्हारोग, जिव्हा शोथ, जिव्हास्वादविकृति, जिव्हाजाड्य, जिव्हावृद्धि, जिव्हाशैथिल्य, जीभका फटना, जिव्हाशुष्कता, जीभकी जलन, जिव्हाकण्डू, जीभकी खाल उतरना, जिव्हा स्तम्भ, गद्‌गद, मिनमिन, मूकत्व, प्रलाप, रसाज्ञान और ५ प्रकारकी अरुचिका वर्णन हुआ है। जिससे इसमें २३ संख्या और बढ़ जाती है। तालुगत रोगोंमें तुण्डकेरीके पश्चात टानसिलका वर्णन अलग कर दिया गया है और तालुपिटिकाका वर्णन बढ़ाया गया है। कण्ठगत रोगोंमें रोहिणीके साथ ही डिप-थीरियाका वर्णन ऐसा कर दिया गया है जिससे रोहिणीका वर्णन अच्छा विस्तृत हो गया है। स्वरभंग, शब्दमन्दत्व, भिल्लीप्रदाह, कांकरमओरीस, गलाबुर्द, गलग्रन्थिशोथ, जृम्भा, काकलकशोथ ४ प्रकारका, काकलक शैथिल्य, कण्ठपिटिका, कण्ठशल्य, कण्ठ-शैथिल्य, कण्ठनली शोथ, पुरातन गलशोथ मिलाकर १९ कण्ठरोगोंका वर्णन अधिक हुआ है। सर्वसर मुखपाकमें ४ भेद कहे गये हैं। मुखस्राव, ६ प्रकारकी मुख दुर्गन्धि, ३ प्रकारके गलगण्ड, मिलकर १४ मुखरोग और हुए। मसूड़ोंके रोग १६ ही कहे गये हैं; किन्तु उनका विवरण अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। प्रचलित ८ दन्तरोगों का विस्तृत वर्णन देनेके अतिरिक्त दन्तचलनका वर्णन चिकित्सा सहित विस्तृत रूपसे दिया है। अधिदन्त, दन्तशूल, बालदन्त, दन्त-कण्डू, दन्तकिक्किट, हनुमोक्ष और अर्दितका भी वर्णन किया गया है। इस तरह ८ रोग यहां भी बढ़े। इस प्रकार समस्त मुखरोगोंमें ८९ रोगोंका वर्णन अधिक हुआ अर्थात कुल १५६ का वर्णन होता है।

जहां जिस रोगका वर्णन हुआ है, वहीं लक्षणोंके साथ उसकी चिकित्सा भी लिख दी गयी है। इसके सिवाय उपसंहारमें कुछ विशिष्ट औषधियोंका भी वर्णन हुआ है। अन्तमें साध्यासाध्य विवरण, चिकित्सासूत्र, पथ्यापथ्य और मुखरोगोपयोगी यन्त्रशस्त्रों का वर्णन दे दिया गया है। जहां तक सम्भव हुआ है रोगोंका नाम आधुनिक डाक्टरीके अनुसार भी यथास्थान लिखा गया है। इसके सिवाय अन्तमें मुखरोगोंके डाक्टरीके तुलनात्मक नामोंकी एक सूची अन्तमें दे दी गयी है; जिन्हें पं० रामसेवक मिश्र ए० एम० एस० शालाक्य विशेषज्ञ जीने प्रसिद्ध किया है। इस प्रकार यह पुस्तक अपने विषयमें इस समय अद्वितीय और सर्वाङ्गपूर्ण है। मुखरोगके सम्बन्धमें जितनी बातें जानना आवश्यक है, यथा सम्भव इसमें उन सबोंका समावेश करनेका प्रयत्न किया गया है। अध्यापकोंका कर्तव्य है कि विद्यार्थियोंको उतना ही अंश पढ़ावें जितना उनके पाठ्यक्रममें है और जितनेका वर्णन प्रचलित शास्त्रमें दिया गया है। शेष अंश वैद्योंके लिये और खोज करने वालोंके लिये उपयोगी होगा।

विषयोंका वर्णन करनेमें आयुर्वेद, यूनानी और एलोपैथीके आधारसे पूर्ण रूपसे प्रतिपादन करनेका प्रयत्न किया गया है। जिससे किसी विषयमें जिज्ञासा बहुत कम रह सकती है। चिकित्सामें भी इस बातका प्रयत्न किया गया है कि किसी रोगकी चिकित्सा यथासभम्व पूरी हो। इससे वैद्योंके लिये तो पुस्तक अधिक उपादेय हुई है; किन्तु विद्यार्थियोंके लिये सभी चिकित्साका वर्णन पढ़ना आवश्यक नहीं है। अध्यापकोंका कर्तव्य है कि इनमेंसे आवश्यक अंश जाननेके लिये उन्हें नोट करा दें, जिससे उनका बोझा न बढ़े। जैसे चिकित्सामें अधिक विस्तार विद्यार्थियोंके लिये आवश्यक नहीं है। परीक्षोपयोगी कुछ शास्त्रोंका प्रयोग जानना ही उनके लिये बस है। इस पुस्तकमें बहुतसे प्रयोग लेखकके अनुभूत हैं, कुछ गुरु उपदिष्ट हैं। कहीं कहीं यूनानी चिकित्सा भी दी गयी है। अतएव कुछ औषध द्रव्य ऐसे उक्त हुए हैं जो विद्यार्थी समाजमें परिचित

नहीं है। यदि वैद्योंको उनका प्रयोग करना पड़े जो उन्हें अत्तारोंके यहांसे प्राप्त करें।

पुस्तक लिखी जानेके बाद सर्वसाधारणके सामने दो वर्षोंके पश्चात् आयी है। प्रेस की अड़चन मुख्य थी, कागजकी समस्या भी इधर विकट रूप धारण किये हुए थी; किन्तु उसके अधिकारियों की कृपादृष्टिसे वह हल हुई तो प्रेस की अड़चन बनी ही रही। ईश्वर कृपासे विलम्बसे सही पुस्तक अब प्रसिद्ध हो रही है। इसके लिये ईश्वरको और इससे सम्बन्धित अन्य सज्जनोंको धन्यवाद है।

यदि वैद्य समाजने इसे अपनाया और इससे लाभ उठाया तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। पुस्तक निर्माणमें मुझे बहुतसे प्राचीन और आधुनिक ग्रन्थ देखने पड़े हैं। उनसे लाभ भी उठाया गया है। अतएव ऐसे सभी आचार्यों और लेखकोंका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ। पुस्तकका बहुल प्रचार हो और वह सर्वसाधरण और वैद्योंमें आदर प्राप्त करे, यही अभीष्ट है। तथास्तु।

प्रयाग
श्रावण कृष्ण ५
संवत २००२ वै०

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य

ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा

शालाक्यतन्त्रान्तर्गत

मुखरोग विज्ञान

अनुक्रमणिका

१ मंगलाचरण १
२ परिभाषा २
१ बनावट और कार्यकलाप ५
२ मुखसामुद्रिक ७
पुरुष सामुद्रिक ८
स्त्री सामुद्रिक १४
३ ओष्ठरोग २२
निदान और सम्प्राप्ति २३
१ वातज ओष्ठ रोग २३
२ खण्डोष्ठ २४
३ पित्तज ओष्ठ रोग २४
४ कफज ओष्ठ रोग २५
५ सन्निपातज ओष्ठ रोग २५
६ मेदोजन्य ओष्ठ रोग २६
७ रक्तज ओष्ठ रोग
८ मांसजन्य ओष्ठ रोग २७
९ अभिघातज ओष्ठ रोग
१० ओठोंकी सफेदी
११ ओठोंका फड़कना
१२ ओठोंमें सिकुड़न और
खिचाव २८
१३ ओठोंके मस्से
१४ जलार्बुद २९
४ मुखमण्डलके बाह्यरोग
१ गण्डालजी
२ पाषाणगर्दभ ३०
३ मुखदूषिका
४ मुखव्यङ्ग नीलिका ३१
५ वल्मीक ३२
६ शिरोग्रह ३३
७ हनुग्रह
८ मन्यास्तम्भ
९ गण्डमाला ३५
१० अपची ३७
५ जिव्हागत रोग
परिचय ३८
प्रकार ३९
१ वातज जिव्हा रोग ४०
२ पित्तज जिव्हारोग ४१
३ कफज जिव्हारोग
४ अलस ४२

५ अधिजिह्व ४३
६ उपजिह्वक
७ रक्तज जिह्वारोग ४४
८ जिह्वाशोथ ४५
९ स्वादुविकृति ४६
१० रसाज्ञान ५३
११ जिह्वाजाड्य ४७
१२ जिह्वावृद्धि ४९
१३ जिह्वास्तम्भ ५१
१४ जिह्वाशैथिल्य
१५ गद्गद-मिनमिनत्व-मूकत्व
१६ जीभका फटना
१७ जिह्वाशुष्कता ५०
१८ जीभ की जलन
१९ जिह्वकिण्डु ५१
२० जीभकी खाल उतरना
२१ प्रलाप ५३
२२ अरोचक ५४

६ तालुरोग

परिचय ५५
लालाग्रन्थि ५६
प्रकार ५९
१ गलशुण्डी ५९
२ तुण्डिकेरी ६०
३ टानसिल ६१
४ अध्रुष ६३
५ मांसकच्छप
६ तालब्र्बुद ६४
७ मांससंघात
८ तालु पुप्पुट ६५
९ तालुशोष
१० तालुपाक
११ तालु पिटिका ६६

७ कण्ठगत रोग

परिचय ६६
प्रकार ६७
१ रोहिणी ६७
२ डिफथीरिया ६८
३ वातज रोहिणी ७१
४ पित्तज रोहिणी ७२
५ कफज रोहिणी ७२
६ सान्निपातिक रोहिणी ७३
७ रक्तज रोहिणी ७३
८ कण्ठशालूक ७३
९ अधिजिह्व ७४
१० वलय ७४
११ वलास ७५
१२ एकवृन्द ७५
१३ वृन्द ७५
१४ शतघ्नी ७५
१५ गिलायु ७६
१६ गलविद्रधि ७६
१७ गलौघ ७७
१८ स्वरभंग ७८

१९ शब्दमन्दत्व ७९
२० मांसतान ८०
२१ विदारी ८०
२२ गलार्बुद ८१
२३ गलग्रन्थि शोथ ८१
२४ जृम्भा ८१
२५ काकलक-कौवा ८२
२६ काकलक शैथिल्य ८४
२७ कण्ठ पिटिका ८६
२८ कण्ठशल्य ८७
२९ कण्ठशैथिल्य ८९
३० कण्ठनलीशोथ ९०
३१ पुरातन गलशोथ ९१
३१ कण्ठ रोगोंकी सामान्य चिकित्सा ९१

८ सर्वसर-मुखपाक

सम्प्राप्ति ९३
१ वातज सर्वसर ९३
२ पित्तजसर्वसर ९४
३ कफज सर्वसर ९५
४ रक्तजसर्वसर ९५
५ त्रिदोषजसर्वसर ९६

९ मुखस्राव ९८

१० मुखदुर्गन्धि ९९

११ गलगण्ड-घेघा

१ वातजगलगण्ड १०३
२ कफज गलगण्ड १०४
३ मेदोजन्यगलगण्ड १०५

१२ दन्त और दन्तमूल शारीर १०५

१३ मसूढ़ोंके रोग

निदान और सम्प्राप्ति ११३
१ शीताद ११४
२ दन्त पुप्पुटक ११६
३ दन्तवेष्ट ११७
४ सौषिर ११८
५ महासौषिर १२०
६ परिदर १२१
७ उपकुश १२१
८ वैदर्भ १२२
९ खल्लीवर्धन १२३
१० अधिमांस १२३
११ दन्तवेष्ट विद्रधि १२४
१२-१६ दन्त नाड़ीव्रण १२५

१४ दन्तरोग

नाम और संख्या १२८
१ दालन १२८
२ कृमिदन्त १३०
३ भञ्जनक १३४
४ दन्तहर्ष १३५
५ दन्तशर्करा १[illegible]
६ कपालिका

७ श्यावदन्तक	१३९
८ कराल	१४१
९ दन्त चलन	१४३
१० अधिदन्त	१४६
११ दन्तशूल	१४६
१२ बालदन्त	१४९
१३ दन्तकण्डू	१५१
१४ दन्तकिकिट	१५२
१५ हनुमोक्ष	१५२
१६ अर्दित	१५२
१५ उपसंहार	**१५४**
विशिष्ट औषधियां	१५४
खदिरादितैल	१५४
खदिरादिवटी	१५५
हरीतकी कल्प	१५५
सप्तपर्णक्वाथ	१५६
पटोलादि गण्डूष	१५६
पीतदारु कल्क	१५६
त्रिफलादि कल्प	१५६
खदिरादि गण्डूष	१५६
दशनसंस्कार मञ्जन	१५७
दन्तरोगाशनि चूर्ण	१५७
मुखरोगहररस	१५७
रसेन्द्रवटी	१५९
अणुतैल	१५८
भूपतिरस	१५९
साध्यासाध्य	१५९
चिकित्सासूत्र	१६०
अपथ्याहार	१६१
पथ्याहार	१६२
मुखरोगोपयोगी यन्त्रशस्त्र	१६२
तुलनात्मक नाम	१६७

श्रीधन्वन्तरयेनमः

ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा

शालाक्यतन्त्र

मुखरोग-विज्ञान

श्रवण नयन बिनु सुनि लखत, हरत जगत त्रयताप।
बिनु वाची बोलत करत, अद्भुत कर्म कलाप ॥
लेत गन्ध आस्वाद बिनु, नासा विविध प्रकार।
दूषित दूरि कर सुख भरत, करत विघनगन छार ॥
नाड़ीमण्डल शीष वसि सुख दुख कर्म अकर्म।
ज्ञान और विज्ञान नित प्रेरत सहज सुधर्म ॥
सर्वशक्ति सम्पन्न विभु, पालक जगदाधार।
करहिं पूर्ण वांछित सोई, श्री "जगदीश" उदार ॥

परिभाषा—

जिस चिकित्सा-विभागमें शरीरके ऊर्ध्व--ऊपरी अङ्गोंके (मुख, नाक, कान, आँख और सिरके) रोगोंका वर्णन, निदान और चिकित्सा लिखी जाती है, उसे ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्सा कहते हैं। इस विभागकी चिकित्साके शस्त्रकर्ममें प्रायः शलाका-सलाईनमा शस्त्रोंका प्रयोग किया जाता है, इसलियें शस्त्रचिकित्सामें इसे शालाक्यतन्त्र भी कहते हैं। अर्थात् जिस चिकित्सातन्त्रमें शलाकाका प्रयोग होता है उसे शलाक्यतन्त्र कहते हैं।

शरीरके मुख्य तीन भाग हैं, शाखा, मध्य शरीर और ऊर्ध्वाङ्ग। इनमें से शाखामें हाथों और पाँवोंकी गणना होती है और इन अंगों

में होनेवाले रोगोंकी चिकित्साको शाखा-चिकित्सा कह सकते हैं; किन्तु इन अंगोंमें स्वतन्त्र व्याधि प्रायः कम होती है। मध्य शरीरमें उदर, वक्ष, वस्ति और गुह्याङ्गोंका समावेश होता है। चिकित्सा-कर्मकी सुविधाके लिये गलेसे नीचेके सभी अंगोंकी बीमारियोंको एक "काय-विभागमें" परिगणित कर उसका नाम कायचिकित्सा रखा गया है। ऊर्ध्वाङ्गमें गलेसे ऊपरके शरीराङ्गोंकी गणना होती है। इसमें मुख, दाँत, जिह्वा, गला, तालु, नाक, आँख, कान, मस्तिष्क, शिर और नाड़ी-मण्डल आदिका समावेश होता है। अतएव इन विभागोंमें होनेवाली बीमारियों, उनके लक्षण और चिकित्सा आदिका विवरण ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्साके अन्तर्गत होता है। शस्त्रकर्म विशारद इसे शालाक्यतन्त्र भी कहते हैं; क्योंकि इन अंगोंमें शस्त्रकर्म करते समय जिन अस्त्रोंका प्रयोग किया जाता है वे प्रायः शलाका अर्थात् सलाईके आकार के होते हैं। केवल दांत उखाड़नेमें संदंश या संडसीके आकारके यन्त्र काम में आते हैं। ऊर्ध्वाङ्गको उत्तमाङ्ग भी कहा जाता है। अर्थात् सारे शरीरमें यह विभाग उत्तम समझा जाता है। यह कथन सर्वथा सत्य और सयुक्तिक है। यद्यपि मनका स्थान हृदय कहा गया है किन्तु वह हृदय वक्षस्थित नहीं मस्तिष्क स्थित हृदय है, अर्थात् मानसिक प्रेरणाओंका मूलाधार मन और मस्तिष्क इसी उत्तमाङ्गमें हैं। सम्पूर्ण चेष्टाओं और क्रियाओंकी पूर्ति नाड़ीमण्डल—नर्वस सिस्टमके आधार पर होती है, उनका मूलस्थान भी यही उत्तमाङ्ग है। आँख भौतिक पदार्थों को देखती हैं, रूप ग्रहण करती हैं, नाक आघ्राण कर गन्ध-ग्रहण करती है, कान श्रवण कर शब्द सुनते हैं और ये सब अंग मस्तिष्ककी सहायतासे फिर उनके विषयोंका यथार्थ निर्णय करते हैं। नाक सांस लेती है। यदि श्वासोच्छ्वासकी क्रिया न हो तो शरीरकी अन्य क्रियाओंकी सिद्धि यहाँ तक कि जीवन धारण भी न हो पावे। मुख आहार ग्रहण करता है, दांत उसे कुचलकर महीन करते और जिह्वा रसास्वादन कर पलटती रहती है। इस तरह सारे शरीरकी समस्त क्रियाओंका अधिकांश आधार उत्तमांग स्थित अवयवों पर

अवलम्बित रहता है। यही अङ्ग शरीरका अधिकांशमें प्रेरक, रक्षक, संवर्धक और सहायक है। किन्तु खेद है कि वर्तमान आयुर्वेदके संरक्षकोंका सबसे कम ध्यान इसी अङ्ग पर है। एक प्रकारसे उन्होंने इस अङ्गका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना और उसकी विशेष कुशलता और सफलतासे चिकित्सा करना छोड़-सा रखा है।

आयुर्वैदिक चिकित्साके आठ अङ्ग हैं—१ कायचिकित्सा, २ बालचिकित्सा, ३ ग्रहचिकित्सा, ४ ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा, ५ शल्य-चिकित्सा, ६ विषचिकित्सा, ७ जरा या रसायन चिकित्सा और ८ वृष या वाजीकरण चिकित्सा। यथार्थमें ऊर्ध्वाङ्गकी गणना सर्वप्रथम होनी चाहिये थी। चिकित्साके ये आठ अंग मालूम पड़ता है भगवान् धन्वन्तरिके समयसे प्रचलित हुए हैं और इन विभागोंके द्वारा चिकित्साविभागका ठीकसे विस्तार हुआ है। आरम्भमें आयुर्वेदशिक्षा के मुख्य तीन ही अंग थे। १ हेतु, २ लिंग और ३ औषधिज्ञान। जब आरम्भमें महर्षि भरद्वाज देवराज इन्द्रसे आयुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करने गये थे तब इन्होंने इन्द्रसे त्रिस्कन्ध आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त किया था। हेतुके अन्तगत व्याधिके सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट हेतुओंका ग्रहण है। लिंगके अन्तगत व्याधियोंके पूर्वरूप, लक्षण, सम्प्राप्ति, उपशय आदिका ग्रहण है। औषधके अन्तर्गत निघण्टु, चिकित्सा, पथ्यापथ्य, सुश्रूषा आदिका ग्रहण होना है। इस तरह आयुर्वेदसूत्र और शारीर-विभागका अन्तर्भाव हेतु अंशके अन्तर्गत हो जावेगा। सृष्टिकर्ता ब्रह्माने भी दक्षप्रजापतिको त्रिसूत्र आयुर्वेदका ही उपदेश किया था। इस प्रकार अनन्त अपार आयुर्वेदको तीन भागोंमें बाँटनेसे उसका शिक्षण सुकर और सुविधाजनक न हो पाता रहा होगा। अतएव भगवान धन्वन्तरिने उसके आठ विभाग कर अधिक सुविधाजनक बना दिया। अब तो समयके प्रवाहसे स्वास्थ्यविज्ञान शरीर-रचना और शरीर-क्रिया विज्ञान तथा भेषज परिचय आयुर्वेदकी शिक्षामें अपना स्वतन्त्र अस्तित्व और स्थान स्थापित कर रहे हैं। तथापि इन्हें अष्टाङ्गके सहायक अङ्ग मानकर हम चिकित्साको आठ अंगोंमें

विभाजित करना ही अच्छा समझते हैं। इस समय आयुर्वेद अपनी उत्तम और पूर्ण चिकित्साके प्रभावसे ही चिकित्सा-जगत्‌में अपना श्रेष्ठत्व स्थापित किये हुए हैं। तथापि हम जानते हैं कि हमारा यह अष्टाङ्ग भी एक प्रकारसे विकलाङ्ग हो रहा है। ऊर्ध्वाङ्गके विभागोंकी रचना और उनके क्रियाकलाप जटिल हैं, अतएव उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर उनकी सफल चिकित्सा करना भी कुछ कठिन-सा ही है। इसीसे इस विभागकी चिकित्सामें बहुत कम वैद्य ध्यान देते रहे हैं और बहुत कम वैद्य इसमें सफलता प्राप्त करते रहे हैं। हमारी इस लापरवाही-का परिणाम यह हुआ है कि इस विभागके सम्बन्धमें साधारण लोगों की यह धारणा-सी हो गयी है कि इसमें वैद्योंकी अपेक्षा डाक्टर ही अधिक कुशल हैं। इस त्रुटिको दूर करनेके लिये आवश्यक है कि मुख और ऊर्ध्वाङ्गके विभागोंके शारीरका ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त किया जाय। कौन रोग कहाँ से सम्बन्ध रखता है और उसकी चिकित्सा कैसी होनी चाहिये इसकी सावधानी अपेक्षित है। इसलिये इस ग्रंथमें इस विभागके सभी रोगोंका पृथक्-पृथक् वर्णन करना उचित समझा गया है। इस ग्रंथमें ऊर्ध्वाङ्गके सभी अङ्गोंका स्वतन्त्ररूपसे विस्तृत वर्णन किया गया है। जिससे मुखरोग-विज्ञान, कर्णरोग-विज्ञान, नासा-रोग-विज्ञान, नेत्ररोग-विज्ञान, शिरोरोग-विज्ञान और मानसिक रोग अलग-अलग एक स्वतन्त्र विषय हैं और समुच्चयरूपसे ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्साके अङ्गभूत हैं। इन सब का इस ग्रंथमें स्पष्ट वर्णन दिया जाता है।

श्री

मुखरोग-विज्ञान

मुखमण्डलके अन्तर्गत वाह्य भागमें कपोल, गण्ड, हनु अर्थात् नीचेकी ठोड़ी या जबड़ा और ऊपरी जबड़ा तथा ओंठका समावेश होता है। भीतरी भागमें दांत, मसूड़े, तालु और गलशुण्डिकाका समावेश होता है। कहा भी है—

ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्ता जिह्वा च तालु च
गलो मुखादि सकलं सप्ताङ्गं मुख मुच्यते ॥

बनावट और कार्यकलाप

मनुष्य शरीरमें मुखका महत्व बहुत अधिक है। जैसे एंजिनमें कोयला और पानी न दिया जाय तो उसमें बाष्पकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और उसके बिना उसमें गति और शक्ति नहीं आ सकती। इसी तरह यदि मनुष्य मुख द्वारा आहार और जल ग्रहण न करे तो शरीरमें रस-रक्तादि धातुओंकी न तो उत्पत्ति हो सकती और न मनुष्यमें कोई कार्य करनेकी क्षमता उत्पन्न हो सकती है। ग्रहणका कार्य मुख्यत: मुख द्वारा ही होता है। भोजनके अतिरिक्त सोते जागते हर समय श्वास-ग्रहण, प्रश्वास-निष्कासन, प्राणवायु (आक्सिजन) का ग्रहण और दूषित उष्ण वायु (कार्बन डाई आक्साइड) का परित्याग बराबर मुखमण्डल द्वारा होता रहता है। शरीरमें संघर्ष और दहन क्रिया रात दिन होती रहती है, उससे शरीरमें कुछ शक्तिक्षय होता रहता है, उसकी पूर्ति आहार और जलपान द्वारा होती है। अतएव मुखमण्डल हमारे शरीरका संरक्षण और जीवन धारणके लिये बहुत उपयोगी अंग है। अन्ननलिका, आमाशय, ग्रहणी, छोटी आंत और

बड़ी आंत मिलकर एक बड़ी नली जो मुखके गलेसे नीचे गयी है उस के द्वारा परिपाक प्रणालीका आरम्भ भी मुखमण्डलसे ही होता है।

मुख एक अण्डाकृति विवर है। यहीं खाद्य द्रव्य चर्वण द्वारा बारीक होता है। मुखमण्डलको लालाग्रन्थियोंसे निकली लारसे वह स्निग्ध और मुलायम होता है। मुखमण्डलके मुखपर सामने, एक ऊपर और एक नीचे ऐसे दो ओंठ होते हैं। ऊपरी भागमें दोनों ओर एक-एक **गलगण्ड** और मुख और नासिकाके इधर उधर आँखोंके नीचे दो कपाल होते हैं। ऊपर एक कठिन और एक कोमल तालु रहता है ऊपर ऊर्ध्व हनु और नीचे अधो हनु या ठुड्डी रहती है। हनु भागमें ही कठिन मांसके मसूड़े और उनसे लगे ऊपर नीचे मिलाकर ३२ दांत रहते हैं। ये दांत ही आहारका चर्वण और पेषण करते हैं। मुखमें आहार द्रव्यको यदि अच्छी तरह चबाकर पीस न दिया जाय तो पाक स्थलीमें उसका ठीकसे परिपाक नहीं होता। ऊपरका ओंठ ऊपरी हनु या जबड़ेसे और नीचेका ओंठ नीचेके हनु या जबड़ेसे लगा रहता है। नीचेके ओंठके नीचे एक उभड़ा हुआ भाग रहता है उसे चिबुक या ठोड़ी कहते हैं। ऊपरी ओंठके ऊपरी चमड़ेपर पुरुषोंके बाल उगते हैं जिन्हें मूछें कहते हैं। इसी तरह नीचेकी ठुड्डीके ऊपरी भागमें जो बाल उगते हैं उन्हें कूच या दाढ़ी कहते हैं। स्त्रियोंमें ऐसे बाल नहीं उगते, कुछ रोवेंसे होते हैं। गण्ड या गालके ऊपरकी अस्थि चौकोर और ऊपर उभड़ी रहती है। ऊपरी हनु और कर्णास्थसे इसका जोड़ मिला रहता है। ऊपरी जबड़ेमें (upper jaw) दो अस्थियां एक दूसरेसे मध्य रेखामें जुड़ी रहती हैं। इनका ऊपरी भाग अक्षिकोषका निचला भाग है। इन दोनों अस्थियोंके बीच जो भाग रहता है वही नाकके नथनोंका पोला भाग है। सछिद्र, झंझरास्थि, फलास्थि और कूर्चाके योगसे दोनों नाकके नथनोंके बीचका पर्दा बना हुआ है। प्रत्येक जबड़ेमें नीचे दोनों ओर दांत बैठनेके लिये आठ आठ घर बने रहते हैं। प्रत्येक अस्थि पोली और हलकी होती है। इस पोले भागमें कभी-कभी रस भर जानेसे अथवा गांठ पड़ जानेसे पीड़ा

होती है। इन दोनों जबड़ोंके परस्पर मिलनेसे मुखके भीतरका कठिन तालूका कुछ अग्र भाग तैयार होता है। **नीचेके जबड़े** (lower jaw) का आकार घोड़ेकी नालके समान होता है। इसमें १६ दाँतोंके लिये घर बने रहते हैं। पिछली ओर उसका एक हिस्सा ऊपर चढ़ा रहता है जो कर्णास्थिसे जुड़ा रहता है। यह जोड़ कानके पास है। जब जबड़ा हिलता है तब वह भाग भी हिलता है। इसी प्रकार ऊपरी जबड़ेके पास दो छोटी कोमल अस्थियां आंखोंके भीतरी कोनोंमें हैं। इन्हें **वाष्पास्थि** (Lackrymal bones) कहते हैं। आंखोंका पानी स्वाभाविक रीतिसे नाकमें उतरता है। इसके लिये एक नली आंखोंके भीतरी कोयोंसे नाकमें आकर लगी है ये दो अस्थियां उसके विशेष भाग हैं। मुखमण्डलमें कुल १४ अस्थियां होती हैं। अर्थात् नाककी अस्थि (nasal bones) २, ऊर्ध्व दन्ताधारास्थि(superior maxilla) २, वाष्पास्थि २, गण्डास्थि (malar bones) २, तालवास्थि (palate bones) २, जालास्थि (inferior turbinated) २, अन्तर्धानास्थि या फालास्थि (vomer) १ और हन्वास्थि (inferior maxcilla) १। इनमेंसे कुछ अस्थियां अन्नका चर्वण करनेमें जिन स्नायुओंका उपयोग होता है, उनकी आधार हैं। शेष हड्डियां चेहरेके कोमल भागका आकार कायम रखती हैं। इनमें ऊपरी जबड़ेकी २ हड्डियां, नीचेके जबड़ेकी अस्थि, नालकी अस्थियां तालूकी अस्थि, नाक और आंखोंकी अस्थियां मुख्य हैं। मस्तक अथवा मुखकी अस्थियोंमेंसे नीचेके जबड़ेको गति मिलती है। निम्न हन्वस्थि मुख मण्डलकी हड्डियोंमें सबसे मुख्य है।

मुख सामुद्रिक

मनुष्यके शरीरकी बनावट उसके वाह्य आकारके सौन्दर्य अथवा कुरूपताकी हीं द्योतक नहीं होती; बल्कि उसके आभ्यान्तरका भी पता बतलाती है। उससे मनुष्यके भले या बुरे होने और उसके

भले-बुरे स्वभावकी भी द्योतक होती है। यही नहीं पुरुष और स्त्री शरीरके लक्षण अलग-अलग जाने जा सकते हैं। पुरुष और स्त्रीके शरीरकी सूक्ष्म रचना कुछ विचित्र और विभिन्न प्रकारकी होती है; अतएव उनके स्वभावके द्योतक अंगोंकी बनावटसे उनका पार्थक्य भी प्रकट होता है। संस्कृतमें इस शास्त्रको सामुद्रिक कहते हैं। इसके आदि आचार्य पण्डित राज समुद्र माने जाते हैं। समुद्रके अतिरिक्त नारद, माण्डव्य ऋषि, शिवपुत्र स्वामिकार्तिकने भी इस सम्बन्धके शास्त्र रचे हैं। राजा भोज और सुमन्त भी इसके अच्छे ज्ञाता माने जाते हैं। बहुत ही गम्भीर चिन्तना, अवलोकन और अनुभवके फल-स्वरूप इस शास्त्रकी उत्पत्ति और प्रचार हुआ होगा। यों तो इस शास्त्रमें सभी अंग प्रत्यंगोंका निरीक्षण कर फल कहा गया है; किन्तु मनुष्य का मुखमण्डल शरीरमें प्रधान है और हमारे ग्रन्थका सम्बन्ध भी ऊर्ध्वाङ्गसे ही है; इसलिये हम ऊर्ध्वाङ्गकी रचनाके अनुसार मनुष्यके स्वभाव और सौभाग्य आदिका परिचय देनेका प्रयत्न करेंगे। चिकित्सा-शास्त्रका इससे प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने पर भी इसका परिचय तो होगा ही कि अमुक अंगकी उत्तमता अथवा निकृष्टता कैसी होती है।

पुरुष सामुद्रिक

गर्दन—जिस मनुष्यकी गर्दन छोटी हो वह श्रेष्ठ होता है, जिसकी ग्रीवा गोल, बड़ी और गठी हुई हो वह सुखी, धनवान और सुन्दर होता है। जिसकी ग्रीवा शंखके आकारकी और तीन रेखावाली हो वह छत्रधारी राजा होता है। भैंसे की सी मोटी गर्दनवाला मनुष्य शूरवीर बैलकी सी गर्दन होनेसे मनुष्य शस्त्राघातसे मरता है। और लम्बी ग्रीवावाला अधिक खानेवाला होता है। टेढ़ी गर्दनवाला मनुष्य चुगलखोर और बड़ी गर्दनवाला मनुष्य भली बात को भी बिगाड़ने-वाला होता है। गधे और ऊँट की सी लम्बी चपटी गर्दनवाला मनुष्य

दुःखी होता है। बगुले की सी गर्दनकी नरी जिसकी हो वह पाखण्डी होता है। जिसकी गर्दन चपटी और रूखी नसोंवाली या मांसहीन हो, वह धनहीन होता है। मनुष्यकी गर्दनकी लम्बाई साधारणतः चार अंगुलकी होनी चाहिये। चारों ओरसे गर्दनके घेरेकी लम्बाई २४ अंगुल हो तो श्रेष्ठ। सुन्दर गर्दनवाला पुरुष बोझा ढोनेवाला नहीं होता। जिसका जत्रुदेश और गलेके ओरकी हड्डियां विषम होती हैं वह भयानक होता है। विशाल जत्रुवाले धनहीन होते हैं। चढ़ी जत्रुवाला भोगी, दबी जत्रुवाला निर्धन और स्थूल जत्रुवाला धनी होता है।

चिबुक-ठुड्डी—जिस पुरुषकी ठुड्डी गोल और मांससे भरी और न छोटी न बड़ी तथा सुडौल होती है, वह पुण्यवान और धनवान होता है। जिसकी ठुड्डी पतली-दुबली, लम्बी, दो हिस्सोंमें बँटी हुई और गांठदार होती है वह मनुष्य दरिद्र होता है। ठुड्डीसे मिले दोनों ओरके हनु—जबड़े जिसके अच्छी तरह मिले, बड़े और गोल रहते हैं, वह श्रेष्ठ है, उसके विपरीत अशुभ होते हैं। स्कन्धसे लेकर चिबुक तककी लम्बाई साधारणतः १२ अंगुल होनी चाहिये। और सारे शरीर की लम्बाई पांवके तलुवेसे लेकर शिरकी चोटीकी जगह तक १०८ अंगुल होनी चाहिये। यदि लम्बाई १०० अंगुल हो तो मध्यम और ९८ अंगुल हो तो अधम समझना चाहिये। यदि दाढ़ीके अगले भाग चिरे न हों, स्निग्ध, सुन्दर, कोमल और खूब नीचे हों तो शुभ है। दाढ़ी लाल, कठोर और थोड़ी हो तो वह मनुष्य चोर होता है।

गण्ड-कपोल—जिस मनुष्यके गण्डस्थल-कपोल ऊँचे होते हैं, वह सुखी होता है। जिनके गण्डस्थल मांससे भरे हों, पिचके न हों तो वह भोगी होते हैं। जिनके गण्डस्थल सिंह और हाथीके समान ऊंचे उठे होते हैं वह मनुष्य धन्य है और नराधिप होता है। जिन मनुष्योंके कपोल नीचे धँसे हुए मांस रहित और छोटे-छोटे बालोंसे युक्त होते हैं, वे पापी, दुःख भोगनेवाले, अभागी और दूसरोंके दूत या चाकर होते हैं। फूले गालवाला मन्त्री होता है। जिसकी ठुड्डीमें दाढ़ी

नहीं जमती और जिसकी छाती पर रोम नहीं हैं वे निस्सन्देह धोखे-बाज होते हैं।

वदन—जिन मनुष्योंका वदन-मुखमण्डल सब ओरसे बराबर गोल, सूक्ष्म, स्निग्ध, समान, दर्शनीय, सुगन्धित तथा हाथी और सिंह के समान भरा हो वह राज्य करनेवाले होते हैं। सुखभोग करनेवालों का वदन भी ऐसा ही होता है। जिस मनुष्यका मुखकमल अपनी माताके मुखके समान हो वह धन्य होता है। जिन मनुष्योंका मुख मोटा चौड़ा, बड़ा हो वह अभागी होता है। जिस पुरुषका मुख स्त्रियों के समान हो वह निस्सन्तान होता है। धूर्त चालबाजोंका मुख चौकोर और छोटा मुख कंजूस मनुष्यों का होता है। पापियोंका मुख डरावना और पुत्रहीन पुरुषोंका मुख नीचे लटका हुआ टेढ़ा होता है। धनहीनों का मुख लम्बा और भाग्यवानोंका मुख गोल होता है। जिनका मुख गधे, ऊँट, बन्दर और बाघका सा हो वे दुःख भोगनेवाले होते हैं। टेढ़े और विकृत मुखवाले, सूखे मुखवाले और घोड़ेके से मुखवाले मनुष्य निस्सत्व-दरिद्री होते हैं। जिनका मुख सुन्दर, असंवृत, विमल चिकना और समान होता है वे नरनाथ होते हैं। विपरीत होनेसे क्लेशभागी होते हैं। छोटे मुखवाला कृपण और सुन्दर मुखवाला भोगी होता है।

विम्बाधर-ओंठ—जिन पुरुषोंके ओंठ पके कुन्दरूके फलके समान लाल होते हैं वे धनवान होते हैं। जिनके ओंठ पाटलपुष्पके समान गुलाबी होते हैं, वे बुद्धिमान होते हैं। मूंगेके समान ओंठवाला मनुष्य राज्य प्राप्त करता है। जिनके ओंठ ऊपर-नीचेकी नापमें दो अंगुलके कोमल, समान और चिकने होते है, वे पुरुष धनवान होते हैं। मोटे ओंठवाला मनुष्य अच्छे आचरणवाला, लम्बे ओंठवाला मनुष्य भोगी होता है। जिसके ओंठ विषम ऊबड़-खाबड़ हों वह दुःखी होता है। जिसके ओंठ रूखे-पतले-विवर्ण बुरे रंगके और फटेसे खण्डित वा स्थूल होते हैं, वह धनके सुखसे रहित होता है, अर्थात दुःखी और दूसरोंकी आज्ञापर चलनेवाला होता है।

दांत—जिस मनुष्यके दांत घनी पांतवाले समान उठे हुए घने हों, स्निग्ध, चिकने और दाढ़ें तेज हों वह धनवान होता है। गधे और हाथीके से लम्बे दांतवाले मनुष्य भी धनी होते हैं। किन्तु भालू और बन्दरके से दांतवाले मनुष्य दारिद्री होते हैं। जिनके दांत कराल भयंकर निकले, काले, विषम और रुक्ष होते हैं, वे निन्द्य हैं। बत्तीसों दांतवाले पुरुष भाग्यवान नरपति होते है, ३१ दांतवाले पुरुष भोगी होते हैं; ३० दांतवाले पुरुष अर्थकष्टमें रहते किन्तु २८ दांतवाले सुखी होते हैं। २६ दांतवाले पुरुष सदा दरिद्री और नीचेकी पांतसे ऊपरकी पांतमें जिसके दांत कम होते हैं, वह पुरुष दुःखी रहता है। जिन बच्चोंके नीचे के दांत १२ महीनेके भीतर निकलते हैं उन्हें राजदन्त कहते हैं, ये शुभ होत हैं। यदि पहले ऊपरके दांत निकलें तो वे अशुभ होते हैं। यदि जन्मके समयमें ही दांत हों तो वह भी अशुभ हैं। जन्मसे लेकर दो वर्षके भीतर दूधके दांत निकल आने चाहिये। इसी तरह सात वर्षकी अवस्थासे लेकर दश वर्ष तकमें स्थायी दांत निकल आने चाहिये। इससे अधिक समय लगे तो समझना चाहिये कि उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। जिनके दांत धीरे धीरे उखड़ें और सब इन्द्रियां कार्य-तत्पर रहें वे पुरुष दीर्घजीवी होते हैं। बड़े दांतवाला मनुष्य प्रायः मूर्ख नहीं होता। चिकने दांतोंवाला पुरुष सदा रुचिकर भोजनोंका आस्वाद लेता है। जिस पुरुषके दांत एक दूसरेसे अलग हों और हँसनेपर कपोलोंपर गढ़े पड़ जावें वह पुरुष पराये धनसे धनी और परायी स्त्रियोंमें मग्न रहता है। जिनके मुख सुईकी भांति, पीठभंग, दांत काले, वेषमैला, नाक टेढ़ी अथवा वज्रसदृश होवे निस्सन्देह दुष्ट चित्त होते हैं।

जिव्हा—जिन मनुष्योंकी जीभ लाल, बड़ी, पतली, नरम और समान हो वे मनुष्य सुन्दर मिष्ठान्नका भोजन करते अथवा तीनों विद्याओंके (कर्म, उपासना और ज्ञान) वक्ता होते हैं। जिनकी जीभका अगला भाग सकरा, नुकीला और स्निग्ध तथा कमलके फूलकी पँखड़ी

के समान, न मोटा, न चौड़ा हो वह मनुष्य पृथ्वीपति होते हैं। जिनकी जीभ सफेद मैलसे भरी होती है वे मनुष्य शौचाचार विहीन होते हैं, नीली जीभवाले धनहीन होते हैं, कबरी तथा चित्रविचित्र रंगकी जीभवाले मनुष्य पापी होते हैं। जिनकी जीभ पतली, रूखी, टेढी, खरखरी, स्थूल, एक समान चौड़ी और मैली तथा पीले रंगकी हो वे मनुष्य सदा मूर्ख और दुःखसे व्याकुल रहते हैं। जिस पुरुषकी जीभ इतनी लम्बी हो कि वह अनायास नाकके अगले भागको चाटले तो वह योगी और मुमुक्षु होकर पृथ्वीपर विचरता है। जिनका सम्पूर्ण शरीर रोमोंसे अच्छादित है, जो दुबले हैं, जिनकी दृष्टि तिरछी है, जिनका वेष मलिन है, जो सदा खेदित रहते हैं, जिनकी जिव्हा हिंसक जन्तुओंकी सी है वे निसन्देह दरिद्र हैं। एक फ्रेञ्च वैज्ञानिकका कहना है कि यदि जीभ लम्बी हो तो वह मनुष्य स्पष्टवादी होगा। यदि जीभ चौड़ी हो तो मनुष्य खर्चीला होगा। यदि जीभ कम चौड़ी हो तो वह मनुष्य तेजीके साथ काम करनेवाला होगा। यदि जीभ चौड़ी और लम्बी हो तो वह मनुष्य बड़ा कानूनी होगा।

तालु—जिन मनुष्योंके तालु लाल कमलके समान हों वे मनुष्य भूमिपति और विक्रमी होते हैं। जिनके तालुदर सफेद हों वे धनवान होते हैं। जिनके तालु हाथीके समान हों वे मण्डलाधीश होते हैं। जिनके तालु रूखे चित्रविचित्र, खरखरे, मैले होते हैं, उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है। काला तालु कुलनाशक होता है। नीले रंगका तालु दुःखदायक होता है। लाल तालु वाला पुरुष गुणी होता है। जीभ और तालु लाल दीर्घ, सूक्ष्म और समतल हो तो वह पुरुष भोगी होता है।

अलि-जिव्हा—जिन मनुष्योंकी अलि-जिव्हा-घटिका अर्थात् कौवा लाल होता है वह शुभ है। जिनकी अलिजिव्हा नोकदार हो वह शुभ है। इसी तरह मोटी, लम्बी, काली, कठोर, सूक्ष्म और चिपटी अलिजिव्हा शुभ नहीं होती।

हास्य—हँसते समय जिनके दाँत बाहर नहीं निकल आते, किन्तु कपोल किंचित विकसित हो जाते हैं और मधुर हास्य होते समय धीरतासे हँसी हो किन्तु अधर विकसित न हों वह स्मित हास्यवाले पुरुष प्रधान पुरुष होते हैं। मध्यपुरुषोंके हँसते समय शिर और कन्धे फड़कने लगते हैं, आँखें मुँद जाती हैं, आँखोंसे आँसू आने लगते हैं, और हँसी अनेक बार होती है। हँसते समय अंगका कपना अशुभ है। पापीजन आँखमूंदकर हँसते हैं, किन्तु बातके अन्तमें हँसनेवाले पागल होते हैं। जिसका मुख सदा हँसीसे प्रफुल्लित रहता है उसे कभी दुःख भोगना नहीं पड़ता।

रोदन-शब्द—जिस बालकके रोते समय गम्भीर शब्द दूध मथती हुई मथानीके संचालनके समान निकले वह बालक आगे चलकर पृथ्वीपाल होता है। जिस बालकके रोते समय आँसू नहीं निकलते और चेहरेमें स्निग्धता रहे तथा रोनेमें व्याकुलता और दीनता न हो वह रोदन शब्द श्रेष्ठ है। इसी तरह यदि रोते समय रूक्ष, दीन और घर्घर शब्द निकले तो वह दुःखदायी होता है। जिसके शब्द, नाभि, सत्व-शक्ति गम्भीर हो वह पृथ्वीपति होता है। पुरुषोंका स्पष्ट और स्निग्ध शब्द उत्तम होता है। अनुमोदी, खण्डित, मधुर और मृदंगसी गम्भीर बोली सम्पति देनेवाली होती है। नगाड़ेकी सी आवाज, बैल, मेघ, मोर, और चक्रवाकका सा शब्द राजा और भोगी लोगोंका होता है। दरिद्रोंकी बोली टूटी-फूटी, अस्पष्ट, धीमी खिंची हुई कर्कश बूढ़ोंकी सी होती है। भेड़िया, कौवा, उलूक, बन्दर, ऊंट, गीदड़, गधा और सुवरकी सी बोली दुष्ट स्वरवाली है।

विशेष—जीभ, दांत, त्वचा, नेत्र, नख और बालोंकी स्निग्धता-देखकर मनुष्यके स्नेहकी परीक्षा होती है। इन सभी अंगोंमें स्नेह होना पुण्यवानोंके भाग्यमें रहता है। प्रिय बोलना जिव्हाके स्नेहनसे होता है स्निग्ध दांतोंवाला पुरुष गरीब और सेवक हो तौ भी उसे सुन्दर भोजन प्राप्त होते हैं, चिक्कन त्वचावाला मनुष्य सुखभोग करता है। चन्दन

और फूलोंकी सी गंध वाला पुरुष स्थिर बुद्धि और सुखभोगी होता है। स्थिर बुद्धिवाला पुरुष पृथ्वी तत्व प्रधान, होता है। प्रियभाषी और अधिक जल पीनेवाला तथा अनेक रसोंका भोगी जलतत्ववाला होता है। चंचल प्रकृति, तीक्ष्ण भोजी, बहुत भूखवाला अग्नि-प्रकृतिका, तथा लालची, चटोरा, दुर्बल शीघ्रक्रोध करनेवाला वायुप्रकृतिवाला, एवं पण्डित, कुशलवक्ता, खुली आँखवाले आकाश प्रकृतिके होते हैं। जिनकी दानमें प्रीति, सबसे प्रेम रखनेकी इच्छा हो और विलम्बसे क्रोध होता हो वे देव प्रकृतिके पुरुष हैं। जिनके नख, चरण, हाथ, जीभ, मसूड़े, ओंठ, तालु और नेत्रोंके कोये लाल हों वे अवश्य लक्ष्मीवान होते हैं।

स्त्री-सामुद्रिक

पुरुषोंके समान स्त्रियोंके भी आकार, रंग, सुगन्धि, चक्र, सत्व, शब्द, स्नान, कान्ति आदिसे सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार स्वभाव और भले बुरेकी परीक्षा होती है। इस समय हमें स्त्रियोंके मुखमण्डलके ही लक्षण ग्रहण करने हैं। अतएव उन्हींका संक्षेप वर्णन करते हैं।

गर्दन—जिस स्त्रीके गलेका गट्टा (घुटकी) सीधा हो वह दीर्घायु होती है। जिस स्त्रीकी कृकाटिका मांससे भरी और मोटी हो वह विधवा होती है। जिसके गलेकी घुटकी समुन्नत-समान ऊंची हो, वह सुख और सौभाग्यको भोगती है। जिसकी कृकाटिका बहुत मांसल अथवा विना मांसकी, सिराओंसे युक्त, रोमपूर्ण, कुटिला, विकटा-टेढ़ी, भयंकर हो—वह प्रायः अभागिनी होती है। जिनका गला मांससे भरा, गोल, चार अंगुल लम्बा और साफ स्वच्छ है वह शुभ होता है और वे ऊँचे दर्जेका सुखविलास भोग करती हैं। जिनकी ग्रीवा सुडौल और तीन रेखाओंसे युक्त होती है, उन्हें सोने, मोती आदिके अलंकार पहननेको मिलते हैं। जिनके गलेमें हड्डियां दिखती हैं, मांसकी कमी है, गला चपटा, फटासा, खरदरा और कुरूप होता है, वह उनके दुःख और अभाग्यका सूचक है। मोटी गर्दनवाली स्त्रियां प्रायः विधवा

होती हैं, जिनके गलेमें चक्रका चिन्ह रहता है वे वन्ध्या होती हैं, जिनकी गर्दन छोटी, सिराएं उभड़ी हुई रहती हैं वे दरिद्रिणी होती हैं। इसी तरह जिनकी गर्दन बहुत लम्बी होती है वे कुलक्षयकारिणी और कुटिल स्वभाव की होती हैं। जिस स्त्रीकी ग्रीवा छोटी और योनि बड़ी हो उसके कुलका नाश होता है। जिस स्त्रीकी ग्रीवा स्थूल, आंखें टेढ़ी, पिंगल वर्ण अथवा चंचल हैं वह कुलटा होती है।

चिबुक-ठुड्डी—स्त्रियोंकी ठुड्डी दो अंगुल परिमाण, मांसल और मुलायम होनी चाहिये। यही शुभ है। इसके विपरीत स्थूल, द्विधा-विभक्त, रोमयुक्त, अधिक लम्बी ठोड़ी अच्छी नहीं होती।

हनु-जबड़ा—दोनों ओर ठोड़ीसे लगे हुए बिना रोमके कड़ी हड्डीवाले दोनों हनु शुभ होते हैं; किन्तु यदि हनु टेढ़े सूखे से मोटे रोमयुक्त हों तो अशुभ है।

कपोल—मांससे भरे गोल बराबर ऊंचे, निर्मल स्त्रियोंके कपोल, फलक अच्छे होते हैं। कामशास्त्रमें ऐसे कपोलोंको गंगाके किनारेके सुन्दर कगार और कामदेवके ठहरनेके टीले कहा है। किन्तु इसके विरुद्ध जिन स्त्रियोंके दोनों कपोल बिना कान्तिके रोम-युक्त, कठोर, रूक्ष, काले और नीचे झुके हों वह स्त्री दुःखिनी होती है। जिस नारीके कपोल मधूकपुष्पसी, देह रोमरहित हों, नसें उभरी न हों वह देवोंकी उपासनाके योग्य है। जिस स्त्रीके बायें कपोल पर लाल मस्सा होता है वह मिष्ठान्नोंका भोग करती है। जिस स्त्रीके कपोल सफेद और गड्ढेदार हों वह सतीकी भांति रहे तो भी व्यभिचारिणी होगी।

वदन—जिन स्त्रियोंका वदन-मुखमण्डल गोल, निर्मल, चिकना और चन्द्रबिम्बके समान सुन्दर चमकदार, सुन्दर मांससे भरा हुआ बराबर सुगन्धित होता है, वह प्रशंसाके योग्य है। इसी प्रकार जिस स्त्रीका मुखकमल अपने पिताके मुखके समान, सदा प्रसन्नता देनेवाला हो वह स्त्री कल्याणकारक होती है। इसके विरुद्ध जिस स्त्रीका मुख-

मण्डल घोड़ा, ऊंट, गधा, बिल्ली, सिंह, बकरी आदिके समान हो, चौड़ा, नीचा या गलफड़ बहुत फटे हों, मुखसे दुर्गन्धि आती हो, वह निन्दित है।

ओष्ठ बिम्ब—जिन मृगनयनियोंके मनोहर ओष्ठबिम्ब मध्य में रेखाखण्डित, चिकने और पके कुन्दरूके फलके समान भरे हुए, स्निग्ध और लाल होते हैं वे श्रेष्ठ हैं। स्त्रियोंके ऐसे ही ओंठोंकी प्रशंसा है जो मानों सुधानिधान अमृतके घर हैं; जिनकी कान्ति और रंग देखते ही हृदयमें अनुरागकी उत्पत्ति होती है। इसके विरुद्ध जिनके ओंठ विषम ऊंचे-नीचे, लम्बे, फटे-कटे, पतले-रूक्ष और सूखे से होते हैं वे दुःख और अभाग्यके सूचक हैं। जिन स्त्रियोंके दशन-च्छद-ओंठ स्थूल और काले हों वह झगड़ालू और पतिहीना होती हैं। जिसके अधरोष्ठ मोटे होते हैं वह कलियुगके गुणयुक्त कलहप्रिया होती है। इसी तरह जिसके विवर्ण स्वाभाविक रंगसे हीन होते हैं वह दरिद्रिणी होती है। स्त्रियोंका ऊपरी ओंठ क्रमसे मुलायम, झुका हुआ, चिकना, स्निग्ध, बिना रोमके और बीचमें उठा हुआ होना चाहिये। ऐसा ओष्ठ श्रेष्ठ होता है। किन्तु जिस स्त्रीका ऊपरी ओंठ चौड़ा, मोटा, ऊँचा, रोमयुक्त छोटा-मोटा होता है वह स्त्री प्रायः विधवा और कलहप्रिया होती है। यदि ओंठ बन्धूकपुष्पके समान लाल, मांसयुक्त, दशनपंक्ति कुन्दपुष्पके समान शुभ्र, वचन सरलतासे पूर्ण समभाव से हंस-कोकिलसा बोलनेवाली स्त्री हो तो वह पतिसुख और ऐश्वर्य भोग करती है। यदि स्त्री लम्बी हो और साथ ही ओंठमें रोयें हों तो वह पतिकी अमंगलकारिणी होती है। यदि ओंठ चढ़े हुए और बालोंके अगले भाग रूखे हों तो वह स्त्री झगड़ालू होती है। जिनके अधर गोल, पाटलवर्ण, स्निग्ध और चिकने होते हैं और उनके मध्य भागमें एक रेखा रहती है वह नारी प्रणयपात्री होती है। चिकने ओंठ शुभ हैं। जिस स्त्रीके अधरके नीचे रोम होते हैं, वह सौभाग्य-हीन होती है।

दशन-दांत—जिन स्त्रियोंके दाँत चिकने-चमकदार, बराबर

नोकदार, उभड़े हुए, कुन्दकलीके समान श्वेत, घने मिले हुए दांत हैं, वे स्त्रियां सौभाग्यवती और ऐश्वर्यशालिनी होती हैं। जिन स्त्रियोंके सब दांत साफ, चमकदार, गायके दूधके समान सफेद हों और संख्यामें ऊपर और नीचेके दांत समान सोलह सोलह अर्थात् बत्तीस हों वह स्त्रियां पृथ्वीपतिकी वल्लभा प्यारी होती हैं। जिन स्त्रियोंके दांत बहुत छोटे, अथवा लम्बे, पतले, मोटे अथवा दोहरी पांतिमें (एकके ऊपर एक जमे हुए), सीपके आकारके अथवा काले होते हैं वे स्त्रियां दरिद्रिणी और दुःखिनी होती हैं। जिन स्त्रियोंकी दन्तपंक्तिमें नीचे के जबड़ेमें अधिक दांत होते हैं वह अपनी माताको मारनेवाली होती हैं। यदि ऊपर और नीचे के दाँतोंकी संख्या समान न होकर विरल हो, तो वह स्त्री कुटिल होती है। यदि किसी स्त्रीके दांत विकट या भयंकर हों, तो वह पतिहीना विधवा होती है। जिन स्त्रियोंके दांतसे लगे मसूड़े सफेद होते हैं वे दुःखिनी होती हैं। इसी तरह बड़े दांत वाली स्त्रियां कुटिला और हिलनेवाले दांतवाली स्त्रियां कड़े मिजाजकी निस्सन्तान और पतिरहिता होती हैं। जिस स्त्रीके दांत मोटे, डरावने और काले मसूड़े वाले हों वह चोर और कष्ट भोगनेवाली होती है। जिन स्त्रियोंके दांत पीले-श्याम तथा स्थूल होते हैं और दो पांतियोंमें अथवा सूतीके समान आकारके विरल हों वह दुःखिनी और दुर्भगा होती है। विरल दांतवाली कुलटा होती है। जिसके दांत विरल, ओंठ और जीभ काली होती है, वह पहले पतिका नाश कर दूसरा प्राप्त करती है।

जिह्वा—जिन स्त्रियोंकी जीभ स्निग्ध, कोमल, लाल, चिकनी और पतली होती है वह सौभाग्यवती और सदा मिष्ठान्न भोजन करनेवाली होती है। जिनकी जीभ नोकमें संकीर्ण नोकदार अथवा कुशके समान आगेकी ओर फैली हुई, सफेद या काली होती है वह अच्छी नहीं समझी जाती। जिस स्त्रीकी जीभ खुरदरी हो, उसकी मृत्यु जलमें होती है। जिसकी जीभ पाटल रंगकी लाल पीली होती है उसका विवाह अच्छे पतिसे होता है। जिस युवतीकी जीभ श्यामता लिये

मण्डल घोड़ा, ऊंट, गधा, बिल्ली, सिंह, बकरी आदिके समान हो, चौड़ा, नीचा या गलफड़ बहुत फटे हों, मुखसे दुर्गन्धि आती हो, वह निन्दित है।

ओष्ठ विम्ब—जिन मृगनयनियोंके मनोहर ओष्ठविम्ब मध्य में रेखाखण्डित, चिकने और पके कुन्दरूके फलके समान भरे हुए, स्निग्ध और लाल होते हैं वे श्रेष्ठ हैं। स्त्रियोंके ऐसे ही ओंठोंकी प्रशंसा है जो मानों सुधानिधान अमृतके घर हैं; जिनकी कान्ति और रंग देखते ही हृदयमें अनुरागकी उत्पत्ति होती है। इसके विरुद्ध जिनके ओंठ विषम ऊंचे-नीचे, लम्बे, फटे-कटे, पतले-रूक्ष और सूखे से होते हैं वे दुःख और अभाग्यके सूचक हैं। जिन स्त्रियोंके दशनिच्छद-ओंठ स्थूल और काले हों वह झगड़ालू और पतिहीना होती हैं। जिसके अधरोष्ठ मोटे होते हैं वह कलियुगके गुणयुक्त कलहप्रिया होती है। इसी तरह जिसके विवर्ण स्वाभाविक रंगसे हीन होते हैं वह दरिद्रिणी होती है। स्त्रियोंका ऊपरी ओंठ क्रमसे मुलायम, झुका हुआ, चिकना, स्निग्ध, बिना रोमके और बीचमें उठा हुआ होना चाहिये। ऐसा ओष्ठ श्रेष्ठ होता है। किन्तु जिस स्त्रीका ऊपरी ओंठ चौड़ा, मोटा, ऊँचा, रोमयुक्त छोटा-मोटा होता है वह स्त्री प्रायः विधवा और कलहप्रिया होती है। यदि ओंठ बन्धूकपुष्पके समान लाल, मांसयुक्त, दशनपंक्ति कुन्दपुष्पके समान शुभ्र, वचन सरलतासे पूर्ण समभाव से हंस-कोकिलसा बोलनेवाली स्त्री हो तो वह पतिसुख और ऐश्वर्य भोग करती है। यदि स्त्री लम्बी हो और साथ ही ओंठमें रोयें हों तो वह पतिकी अमंगलकारिणी होती है। यदि ओंठ चढ़े हुए और बालोंके अगले भाग रूखे हों तो वह स्त्री झगड़ालू होती है। जिनके अधर गोल, पाटलवर्ण, स्निग्ध और चिकने होते हैं और उनके मध्य भागमें एक रेखा रहती है वह नारी प्रणयपात्री होती है। चिकने ओंठ शुभ हैं। जिस स्त्रीके अधरके नीचे रोम होते हैं, वह सौभाग्यहीन होती है।

दशन-दांत—जिन स्त्रियोंके दाँत चिकने-चमकदार, 'बराबर'

नोकदार, उभड़े हुए, कुन्दकलीके समान श्वेत, घने मिले हुए दांत हैं, वे स्त्रियां सौभाग्यवती और ऐश्वर्यशालिनी होती हैं। जिन स्त्रियोंके सब दांत साफ, चमकदार, गायके दूधके समान सफेद हों और संख्यामें ऊपर और नीचेके दांत समान सोलह सोलह अर्थात् बत्तीस हों वह स्त्रियां पृथ्वीपतिकी वल्लभा प्यारी होती हैं। जिन स्त्रियोंके दांत बहुत छोटे, अथवा लम्बे, पतले, मोटे अथवा दोहरी पांतिमें (एकके ऊपर एक जमे हुए), सीपके आकारके अथवा काले होते हैं वे स्त्रियां दरिद्रिणी और दुःखिनी होती हैं। जिन स्त्रियोंकी दन्तपंक्तिमें नीचे के जबड़ेमें अधिक दांत होते हैं वह अपनी माताको मारनेवाली होती हैं। यदि ऊपर और नीचे के दाँतोंकी संख्या समान न होकर विरल हो, तो वह स्त्री कुटिल होती है। यदि किसी स्त्रीके दांत विकट या भयंकर हों, तो वह पतिहीना विधवा होती है। जिन स्त्रियोंके दांतसे लगे मसूड़े सफेद होते हैं वे दुःखिनी होती हैं। इसी तरह बड़े दांत वाली स्त्रियां कुटिला और हिलनेवाले दांतवाली स्त्रियां कड़े मिजाजकी निस्सन्तान और पतिरहिता होती हैं। जिस स्त्रीके दांत मोटे, डरावने और काले मसूड़े वाले हों वह चोर और कष्ट भोगनेवाली होती है। जिन स्त्रियोंके दांत पीले-श्याम तथा स्थूल होते हैं और दो पांतियोंमें अथवा सूतीके समान आकारके विरल हों वह दुःखिनी और दुर्भगा होती है। विरल दांतवाली कुलटा होती है। जिसके दांत विरल, ओंठ और जीभ काली होती है, वह पहले पतिका नाश कर दूसरा प्राप्त करती है।

जिह्वा—जिन स्त्रियोंकी जीभ स्निग्ध, कोमल, लाल, चिकनी और पतली होती है वह सौभाग्यवती और सदा मिष्ठान्न भोजन करनेवाली होती है। जिनकी जीभ नोकमें संकीर्ण नोकदार अथवा कुशाके समान आगेकी ओर फैली हुई, सफेद या काली होती है वह अच्छी नहीं समझी जाती। जिस स्त्रीकी जीभ खुरदरी हो, उसकी मृत्यु जलमें होती है। जिसकी जीभ पाटल रंगकी लाल पीली होती है उसका विवाह अच्छे पतिसे होता है। जिस युवतीकी जीभ श्यामता लिये

होती है वह या तो जाति बदलकर दूसरी जातिमें जाती है या कलह-कारिणी होती है। अधिक मांसल या मोटी जीभ वाली स्त्री दरिद्रिणी और अधिक चौड़ी जीभवाली शोकग्रस्त रहती है, इसी तरह जिसकी जीभ लम्बी होती है वह सदा खाद्य खाद्य वस्तुओंको चाहती रहती है।

तालु—स्त्रियोंका तालु सुन्दर-चिकना-कमल पुष्पके समान रंगका कोमल और स्वच्छ अच्छा समझा जाता है। किन्तु श्याम रंगका मोटा तालु बहुधा दुःखदायक होता है। सफेद तालु वाली स्त्री दरिद्रिणी होती है और काले तालुवाली पतिहीना और दुःखिनी होती है। इसी तरह जिनके तालु सूखे और मैले होते हैं वे अधिक घूमने-वाली वैरागिन्नी होती हैं।

अलिजिव्हा-घण्टी—जिन स्त्रियोंकी गलेकी घण्टी जड़में मोटी गोल और क्रमशः तीक्ष्ण और लाल होती है वह अच्छी समझी जाती है। किन्तु बहुत मोटी या छोटी या लम्बी और काली या सफेद घण्टी अच्छी नहीं समझी जाती।

हास्य—हँसते समय मुँह थोड़ा खुले, गण्डस्थलका थोड़ा विकास हो; किन्तु हँसते समय दांत न दिखाई पड़ें। स्त्रियोंकी वह हँसी उत्तम समझी जाती है। किन्तु हँसते समय यदि कन्धे और हाथ फड़क उठें, आँखें वन्द हो जायँ, मुँह बारम्बार काँपे, वह हँसी निन्दनीय है। जिस स्त्रीके हँसते समय गालोंमें गढ़े पड़ जाते हैं वह भ्रष्टा होती है।

नासा—सुन्दर तोतेकी नाक सी उतार-चढ़ाव दार नुकीली नाक अच्छी समझी जाती है। किन्तु यदि नाकका अग्रभाग द्विधा विभक्त मालूम पड़े तो वह स्त्री दरिद्रिणी होती है। छोटी नाकवाली स्त्रियों को प्रायः दूसरोंकी मजदूरी करनी पड़ती है। चपटी नाकवाली स्त्रियाँ प्रायः पतिहीना और बड़ी नाकवाली स्त्रियाँ बहुधा क्रोधी स्वभावकी होती हैं।

छींक—जोरसे छींक आवे और ऊँची गोल आवाज हो वह

असन्नता देनेवाली होती है; किन्तु जिसमें आवाज अधिक न हो, वह श्रेष्ठ होती है। इसके विपरीत छींक निन्दनीय होती है।

नेत्र,--जिन स्त्रियोंकी आँखोंकी सफेदी गोदुग्धके समान निर्मल, श्वेत, अन्तमें ललाई और बीचकी पुतली काली होती है और बाहरी किनारे कानके पास तक लगे हों, वे आंखें अच्छी समझी जाती हैं। आंखोंकी बरौनी नील कमलके पुष्पके समान, निर्मल हों और उन पर छोटे-छोटे बाल हों, बाल कोमल हों और पलक उठने पर सूर्यके प्रकाशित होते समय जैसे कमल खिलता है, उसी तरह नेत्र पटल खुलें, वैसी बरौनी युक्त नेत्र सौभाग्यवती और सब भोगोंसे युक्त स्त्रियोंके होते हैं। जिन स्त्रियोंके नेत्र हरिणीके से चञ्चल, खरगोशसे सुहावने, शूकर से फिरनेवाले, मयूरके से मद भरे लम्बे-चौड़े कमल-पुष्पकी पंखुड़ीके समान सुन्दर और निर्मल होते हैं, वे स्त्रियां शुभ लक्षणवाली होती हैं। इसके विपरीत जिन स्त्रियोंकी आंखें ऐंचीतानी, विषम, कुडौल होती हैं, वह निद्रित और उद्भ्रान्त चित्तवाली होती है। जिनकी आंखें भेड़की सी गोल या बिल्लीकी सी कंजा होती हैं, चढ़ाव-उतारदार नहीं होती, वह दीर्घायु नहीं होती। जिस स्त्रीके दोनों नेत्र पीले होते हैं वह सुखयुत कुशला होती है। किन्तु दुःशीला होनेके कारण वैधव्यको प्राप्त होती है। जिस स्त्रीके नेत्र पीले रंगकी गऊके से रंगके होते हैं, वह इतना कामातुरा होती है कि मामा-भाई-श्वसुर आदि नातोंका भी विचार नहीं रखती। जिस स्त्रीके दोनों नेत्र लाल कमलके समान हों, वह पर-पुरुषकी कामना करती है। जिस स्त्रीके नेत्र जलसे भरे रहते हैं, वह श्रेष्ठ नहीं है। जो स्त्री देखते समय आंखें फाड़कर देखती है वह खोटे स्वभावकी होती है। इसी तरह पुरुषोंकी सी आंख वाली, कोटर घुसे हुए नेत्रवाली, धँसे नेत्रवाली और चञ्चलतायुक्त स्त्री भी अच्छे स्वभावकी नहीं होती। जो स्त्री बायीं आंखसे कानी हो, वह व्यभिचारिणी होती है और जो जन्मसे दाहिनी आंखकी कानी होती है, वह निस्सन्तान होती है। जिन स्त्रियोंके नेत्र बड़े-बड़े होते हैं, वे भूख-प्यास सहनेवाली, सहनशील, मितभाषिणी, मितपान-भोजनवाली

होती हैं।

बरौनी और भौंह—जिन स्त्रियोंकी आंखकी बरौनी सुदृढ़, स्निग्ध, काली, सूक्ष्म और घनी होती हैं, वे सौभाग्यवती होती हैं; किन्तु जिनकी बरौनीके बाल मोटे, सूक्ष्म, विरल, हलके, पीले (कपिल) होते हैं अथवा बकरीके बालसे होते हैं वे निन्दनीय हैं। हँसने-रोने और पलक भँजनेके जो गुण-दोष पुरुषोंके सम्बन्धमें कहे गये हैं, वे ही स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी जानने चाहिये। भौंहें कमानीदार, गोल, पतली और कज्जलकी सी छाया जिन पर पड़ती है वे अच्छी होती हैं। किन्तु जिन भौंहोंसे नेत्र घिरेसे मालूम पड़ें, वे भौंहें अच्छी नहीं समझी जातीं। देखनेमें सुन्दर, छोटी, नरम रोमवाली चढ़ी हुई कमान के समान भौंहें शुभ हैं। किन्तु बिखरे और पिङ्गल रंगके बालोंसे युक्त गोल, चौड़ी और खरदरे बालोंवाली भौंह शुभ नहीं है। जिनकी भौंह छोटी होती है वे निर्धन और जिनकी भौंहें मोटी हैं वे स्त्रियां शीलहीन होती हैं। जिनके भौंहोंके बाल बड़े-बड़े होते हैं, वे रमणी वन्ध्या होती हैं। जिस स्त्रीके भौंहके किनारे अथवा ललाटमें मस्सा होता है वह राज्य भोगती है।

स्वर—स्त्रियोंका साधारण बोल कोमल होता है, अच्छा स्वर सबके मनको आकर्षण करता है। जिसके बोलते समय स्वर वीणा अथवा वंशीका सा निकले अथवा कोकिल या हंसकी सी बोली हो, मेघ गर्जनसी गम्भीरता, मयूरकी केका ध्वनिसी कूजन हो, वह राजरानी होती है। बोलनेमें कुटिलता न हो, दीन वाणी न हो, बोलनेमें स्निग्धता, चतुरता, मिठास, पवित्रता, कोमलता और सुन्दरता प्रकट हो, वह स्वर आनन्ददायक होता है। जिसकी आवाज फूटे बाँसकी सी, गीदड़, गधा, उल्लू, कौवा, कंकपक्षी किसी करकराहट लिये हो वह दुःखी होती है, उसके दिन शोकमें बीतते हैं। बोलते समय अधर पल्लवोंके खुलते ही ऐसा मालूम पड़े मानों कानोंमें अमृत घोला जा रहा है, ऐसा स्वर कल्याणकारक होता है।

———

स्त्री-मुख-सामुद्रिक

फुटकल—जिन स्त्रियोंके बायें कपोलमें काला मस्सा या तिल हो, वह स्त्री सदैव अच्छे अच्छे भोजन और मिष्ठान्न भोजनमें पाती है। जिस स्त्रीके कण्ठके वाम भागमें मस्सा या तिल हो, वह पहली बार पुत्र उत्पन्न करती है। जिस स्त्रीके नख, रोम, त्वचा और लोचन सुन्दर होते हैं वह क्षमाशील होती है। जिस स्त्रीके तालु, नख, जीभ, ओंठ, नेत्र और गुह्य अंग लाल हों, वह धन-धान्यसे युक्त होती है। जिसके बड़े नेत्र, लम्बे-चौड़े कूले, चौड़ी छाती, बड़ी कमर और चौड़ी योनि हो, वह समाजमें पूजा और प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। जिस स्त्रीके नरम रोम, कोमल शरीर, कोमल बाल हों, जो मृदु भाषिणी हो और थोड़ा ही क्रोध करनेवाली हो, ऐसी स्त्री बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। जो स्त्री बड़े मुखवाली, बड़े नेत्रवाली, बड़ी भुजाओं वाली और बड़ी-बड़ी अँगुलियोंवाली तथा लम्बे बालोंवाली होते हुए भी दुबली पतली होती हैं, वे दीर्घायुष्य प्राप्त करती हैं। जो गोल मुख, गोल कुच, गोल गदोरी, गोल जांघें, गोल घुटने, गोल ग्रीवा, गोल नाभि और गोल शिरवाली होती है, वह धन्य है। जिस स्त्रीके पहुँचे और कण्ठदेशमें तीन रेखाएँ व्यक्त हों, वह राजरानी होती है। जिस स्त्रीका मुख बड़ा और चौड़ा हो, ओंठ लम्बे किन्तु मोटे हों, बड़े किन्तु भयङ्कर नेत्र हों, बड़े कान, बड़े पैर और बड़ी मोटी अँगुलियां हों वह पतिघातिनी होती है। जिस स्त्री की काली आँखें, काला अङ्ग, काले नख, काली रोमवली, काले बाल, काले ओंठ, काले तालु और काली जीभ हो, उसका चरित्र भी काला ही होता है। जिसका लम्बा ललाट, लम्बी ग्रीवा, लम्बे ओंठ, लम्बी नाक, लम्बे कुच, लम्बी कोख और लम्बी योनि हो वह अच्छी नहीं समझी जाती। सोते समय जिस स्त्रीके मुखसे सदा लार निकला करती है और कुछ नेत्र खुले रहते हैं, वह कुलटा होती है। जिस स्त्रीके हँसते समय मुखसे लार और नेत्रोंसे आंसू गिरे वह शीलकी रक्षा करनेवाली नहीं होती। जिसके हँसते समय कपोलोंमें गढ़े पड़ जायँ

और नेत्र चलायमान हों वह असती और पति-घातिनी होती है। बहुत छोटे मुखवाली स्त्री धोखा देनेवाली होती है। बड़े लम्बे मुखवाली स्त्री दुःख भोगनेवाली और सूखे टेढ़े मुखवाली स्त्री सौभाग्य और धनसे हीन होती है। जो निरन्तर ऊँचा-कड़वा-तीखा बोल बोले और जिस की भौंहें फड़का करें, तथा जिसका आचार स्वच्छ, चाल स्वच्छन्द हो, वह लक्ष्मीसे रहित होती है। जो स्त्री सोते समय दांत पीसा करती है और कुछ बड़बड़ा उठती है वह यदि अच्छे लक्षणोंसे युक्त हो तो भी अच्छी नहीं होती। जिसका मुख, नेत्र, नाक, कमर, कान और रोम सब बन्दरके से हों वह प्रायः उल्टे काम करने वाली होती है। जिस स्त्रीके गलेमें दाहिनी ओर भौंरी (आवर्त-चक्र) हो, तो वह दुःखी रहती और विधवा हो जाती है। यदि भौंरी घुटकीके पास दाहिनी ओर झुकी हुई टेढ़ी हो, तो वह एक वर्ष में ही विधवा होकर अन्यका आश्रय ढूँढ़ती है।

ओष्ठरोग

ओष्ठ रोगोंका विवरण——यूनानीमें ओटोंको पट्ठों, मांस, दिल की रग और यकृतकी रगोंसे मिलकर बना हुआ कहा गया है। ओठोंका काम मुखविवरको छिपाये रखना है। आहारका चर्वण करते समय ओठ आहार और लारको बाहर निकलनेसे रोकते हैं। बोलनेमें ओटोंसे जिह्वा और दांतोंको सहायता मिलती है। गुदामें विकार होनेसे ओठोंमें भी विकार होनेकी सम्भावना रहती है। ओठोंमें सबसे बाहर त्वचा रहती है उसके नीचे वसा, वसाके नीचे मांस और मांसके नीचे अर्थात् ओष्ठके भीतरी पृष्ठपर श्लैष्मिक झिल्ली रहती है। सम्पूर्ण मुखमें ६७ रोग होते हैं। इनमेंसे ओठोंमें ८ दन्तमूलमें १६, दांतोंमें ८, जिह्वामें ५, तालुमें ९, गलेमें १८ और मुखके अन्य भागमें ३।

निदान और सम्प्राप्ति——अनूपदेशमें पाये जाने वाले प्राणियों का मांस, मछली भैंसा, शूकरका मांस, दही-उरद आदि कफ कारक वस्तुओंके सेवन, हरी मूली, क्षार, कच्चादूध, सूक्त—सिरका, ऊखका रस, राब आदि अधिक सेवन करनेसे, खुलेमें नंगे बदन सोनेसे, दन्तधावन न करनेसे, धूम्रपान, वान्ति और कुल्ले अधिक करनेसे फस्द खुलवानेका अभ्यास होनेपर फिर उसे एकदम बन्द कर देनेसे दोष प्रकुपित होकर विशेषकर कफको दूषित करते और मुखमें रोग उत्पन्न करते हैं। आठ प्रकारके ओष्ठ रोगोंमेंसे १—वातजन्य २—पित्तजन्य ३—कफजन्य ४—सान्निपातिक ओष्ठरोग, ५—रक्तजन्य ओष्ठरोग ६—मांसजन्य ओष्ठ रोग ७—मेदजन्य ओष्ठरोग और ८—आघातजन्य ओष्ठरोग हैं। किन्तु इसमें १४ ओष्ठरोग लिखे गये हैं।

वातज ओष्ठ रोग——१ वातजन्य ओष्ठरोगमें दोनों ओष्ठ कर्कश, रूखे, स्तब्ध होते हैं, ओंठ फटते हैं, दरार पड़ती हैं, उनमें दर्द होता है। ओठोंके रंगमें श्यामता आ जाती है।

चिकित्सा——(१) वातजन्य ओष्ठरोगमें राल, मोम, गूगल और देवदारुके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तेल या घी रुईके फाहेमें डुबाकर बारम्बार लगावे। अच्छा तो यह है कि तेल-घी-बसा और मज्जा चारों मिलाकर इसीमें उक्त औषधियाँ सिद्ध करे। इन चारों स्नेहोंके मेलको महास्नेह कहते हैं। (२) अथवा उक्त महास्नेहमें तैयार किये हुए स्नेहमें मुलेठीका चूर्ण मिलाकर ओठोंमें रगड़े। (३) अथवा दूधमें एरण्डके पत्ते पकाकर उसी दूधकी भाफ नली द्वारा ओठोंमें पहुँचाकर नाड़ी स्वेद करे। (४) खण्डोष्ठ रोगमें क्वथित तेल नाकमें डाले और उसी तेलके कपड़ेकी घड़ी मस्तक पर रखे (५) शिरमें वातनाशक तेल लगावे, शिरोवस्तिदे (६) अथवा शाल्वण स्वेद करे। अर्थात् दशों जीवनीयगण की औषधियाँ, गुडूची, ककड़ासिंगी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, ऋद्धि, वृद्धि, देवदारु, कूट, हल्दी, वरुणकीछाल, मेषशृंगी, बरियारी, शरपतकी जड़, गोखरू, पाषाणभेद, सतावर, पुनर्नवा,

धतूरा, यव, कुलथी गोरखमुण्डी, असगन्ध, और दशमूल की औषधियां डालकर तेल सिद्ध करे। इसीका शाल्वण स्वेद देवे। (७) यदि ओठों का चमड़ा छिल गया हो तो बिहीदाना, खतमी और अलसी भिगा कर लुआब निकाले और उसीको ओठोंपर दिनमें कई बार मले अथवा ओंठ, ठुड्डी और गुदापर बनफशाका तेल मले। (८) माजूफल, सफेदा, नशास्ता, और कतीरा महीन पीसकर घी अथवा मुर्गीकी चर्बीमें मिलाकर ओठोंपर लगावे। (९) तेल, घी, राल, रास्ना, गुड़, सेंधानमक, गेरू सबको पकाकर मोम उसीमें गलादे और इसी मल्हमको ओंठोंपर लगाया करे। दवा लगानेके बाद ओठोंपर अंडेके भीतरका छिलका अथवा पतला कपड़ा चिपका दें। ओठोंको वायुसे बचावें। लहसुन, प्याज, नमक और हिरन, बकरी और घोड़ेके मांससे बचे। गरम चीजें न खावे। स्निग्ध और पतली चीजें तथा मांस रसका सेवन करे।

खण्डोष्ठ---वायुदोषसे ओंठ फट कर उसके दो भाग हो जाते हैं उसे खण्डोष्ठ कहते हैं। खण्डोष्ठमें स्नेहन---स्वेदन कर ओठके फटे भागोंको खींच कर नरम रेशम या सनके सूत्रसे सीकर शतधौत घृत लगाकर पट्टी बाँध दे और सद्योव्रण की चिकित्सा करे। मुलेठी, माल कांगनी, लोध, मुंडी, अनन्तमूल, नीलोफर, परवर और मकोयसे सिद्ध किया हुआ तेल नाकमें डाले।

पित्तज ओष्ठरोग---पित्तप्रकोपसे जो ओष्ठ रोग होता है उसमें किसी वस्तुका स्पर्श सहन नहीं होता, ओठोंका रङ्ग पीला हो जाता है; ओठोंपर सरसोंके समान छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। ओठोंमें क्लेद या चिपचिपापन मालूम पड़ता है और ओंठ पक जाते हैं। पाकके साथ ही दाह भी होता है।

(१) पित्तजन्य ओष्ठ रोगमें आवश्यकतानुसार जोंक लगवाकर खून निकलवा दे। (२) पठानीलोध, राल और मुलेठीका चूर्ण मधु-मिलाकर ओठोंपर चुपड़े (३) गुच, मुलेठी और पतंग लकड़ीसे सिद्ध

किया हुआ घी ओठों पर लगावे। (४) पित्तजन्य विद्रधिके समान चिकित्सा करे, शिरोमोक्षण करे, वमन-विरेचनकर दोष शान्ति करे। कटु रसवाले पदार्थोंका सेवन, माँसरस, ठण्डे लेप, शीत कषाय और शीतगुणविशिष्ठ तेल लगावे।

कफज ओष्ठरोग—कफजन्य ओष्ठविकारमें ओठोंपर ठण्डी चीजें सहन नहीं होतीं। ओठ भारी पड़ जाते हैं, उनमें सूजन हो आती है। ओठोंके रङ्गकी बहुत सी फुंसियाँ उत्पन्न होती हैं। खुजली मालूम पड़ती है, मन्दवेदना होती है।

(१) कफज ओष्ठरोगपर जोंक लगाकर या फस्द खुलवाकर रक्त निकलवावे। (२) पाढ़ी, जवाखार अथवा सज्जीखार, सोंठ, मिर्च, पीपलका समभाग चूर्ण मधुमें फेंटकर ओठों पर लगावे। (३) कफ-नाशक पदार्थोंके काढ़ेसे कुल्ले करे, श्वासकुठाररस या सिरसके बीजों के चूर्णका नस्य देवे, कफनाशक पदार्थोंका धूम्रपान करे। कफ की सूजनमें सोंया, बाबूना और अकलीलउल मलिकका लेप करें।

सन्निपातज ओष्ठरोग—सन्निपातज ओष्ठरोगमें ओठोंका रङ्ग अनेक प्रकारका होता है अर्थात् कभी काला, कभी पीला, कभी श्वेत वर्ण होता है। अनेक प्रकार की फुंसियोंसे पूर्ण होता है। ओठोंसे लस बहती है और दुर्गन्धि आती है, ओठोंमें पिच्छिलता या पिचपिचापन मालूम पड़ता है। अकस्मात उनमें मलीनता आ जाती, कभी सूजन आ जाती और कभी दर्द मालूम होने लगता है। कुछ भाग पक जाता है और कुछ नहीं पकता। कोई भाग पहले पक जाता है, कोई कुछ दिनों बाद पकता है।

(१) इसमें रक्तमोक्षण कराकर शाल्वण स्वेद करे (२) यदि फुंसियोंमें मवाद आजाय तो सफेद शहद या घीमें सानकर लगावे (३) माजूफल और मुर्दासंग बारीक पीसकर मोमके तेलमें फेंट कर लगावे। (४) नाड़ी स्वेद करे। (५) यदि उष्ण प्रकृति हो और ओंठोंमें जलन रहा करती हो तो अलसीका लुआब, काहू, हरीधनिया, कासनी

अथवा लालसागके पानीमें अथवा गुलाबमें भिगाकर बर्फमें ठण्डाकर ओठों पर रखे। इसबगोलको गलाव जलमें भिगा वर्फसे ठण्डा कर लगावे अथवा चन्दन, गुलाब और कपूर पीसकर लगावे और तर रखें। (६) यदि ठण्डे मिजाज वाले की प्रकृति दूषित हो और शीत वायु लगनेसे ओठ नीले पड़ जाते हों, बेहोशी आ जाती हो अथवा प्रकृति दोषसे खुश्कीके कारण ओंठ फट जाते हों और ओठों की पतली चमड़ी छिलके की तरह उठ आती हो अथवा तर दुष्ट प्रकृतिके कारण ओंठ लटके रहते हों, नरम रहते हों और बोलनेमें कष्ट होता हो तो कस्तूरी बकायनके तेलमें घिसकर लगावें अथवा चमेलीके तेलमें अकरकरा घिसकर लगावें अथवा सौसनके तेलमें या नरगिसके तेलमें जुन्दवेदस्त पीसकर लगावें। खुश्कीसे प्रकृतिमें दोष आया हो तो जौके पानीमें बादामका तेल डालकर खावें। अथवा इसबगोलके लुआबमें चीनी मिलाकर पीवें। ओठोंको बनफशाका तेल, नीलो, फरकातेल और लौकीके बीजोंके तेलसे तर रखें। अथवा इन्हीं तेलों में मोम पिघला कर मल्हम सा बना ओठोंपर लगावें।

मेदजन्य ओष्ठ विकार—मेदजन्य ओष्ठविकारमें ओंठ तेलके समान स्निग्ध रहते, सूज जाते, ओठोंमें खुजली होती, वे नरम मालूम पड़ते और उनसे सफेद लस बहती है। ओठोंमें क्षत होनेसे वे बारम्बार फटते हैं, उनमें लकीरें सी पड़ जाती हैं; और फिर गांठ सी पड़ जाती है, उनमें खुजली होती है इसे पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानका मैक्रोचेलिया (Macrocheilia) समझना चाहिये। ऐसे ओठोंका घाव सूखता नहीं गीला ही रहता है। मेदजन्य ओष्ठविकारमें पहले स्वेदन कर उसे चीर दे, फिर शोधन करके अग्निसे जला दे। कवल धारण करावे और फिर प्रियङ्गु, आंवला, हर्रा, बहेड़ा और लोध पीस कर शहदमें मिलाकर लगावे। इन्हीं वस्तुओंका प्रति सारण करे अर्थात् धीरे धीरे ओठों पर, मुखपर दाँतों पर रगड़े।

रक्तजन्य ओष्ठ रोग—रक्तजन्य ओष्ठ रोगमें ओंठ खूनके

सुमाने लाल रङ्गके रहते हैं और उनसे रक्त निकलता रहता है। पका हुआ भाग खजूरके फूलके समान मालूम पड़ता है। रक्तजन्य ओष्ठरोगमें पित्तजन्य ओष्ठरोगके समान चिकित्सा करे। वमन विरेचन कराकर फस्द खुलवावे। रसवत, बाबूना, जौका आटा, गुलाब, उसारे गाफिस, मकोय, बादामका तेल और मोम डालकर मल्हम बनावे।

मांसजन्य-ओष्ठरोग--मांसदूषित होनेसे जो ओष्ठरोग होता है, उसमें दोनों ओंठ भारी और मोटे हो जाते हैं. मांसपिण्डके समान ओंठ ऊपर उठ आते हैं। ऐसे विकारमें प्रायः ओठोंमें कृमि उत्पन्न हो जाते और बढ़ते हैं।

इसमें शस्त्रक्रियाकर दूषित मांस निकाल दे और फिर व्रण शोधन और पूरणविधि की चिकित्सा करे। कृमि पड़ गये हों तो व्रण की सी चिकित्सा करे।

अभिघातज ओष्ठरोग--ओठोंपर चोट लग जानेसे ओठोंमें दर्द होता है, सूजन आ जाती है, ओंठ फट जाते हैं, उनमें खुजली होती है, ओंठ लाल और विदीर्ण हो जाते हैं। इसका उपाय व्रण शोथके समान करे।

ओठोंकी सफेदी--रक्तमें कफका विकार बढ़ जाने और आमरस संचित होनेसे शिर और मुख की उष्णता घट जाती है, इससे ओठोंमें पूर्ण रक्त संचार नहीं होता और उनमें सफेदी आजाती है। रक्तपरिभ्रमण की शक्ति घट जानेसे ओठोंका रङ्ग यथार्थ नहीं हो पाता। ऐसी दशामें ऐसी वस्तुएं खानी चाहिये जो कफको निकालने वाली हों। हरे और पत्रशाक न खावे। उष्णस्निग्ध पदार्थ खावे। प्राकृतिक उष्णता उभाड़नेके लिये नारदैनका तेल, खैराका तैल, चमेली का तेल, केसरका तैल, नाकमें टपकावे।

ओठोंका फड़कना--जब आमाशयमें कफकी वृद्धि हो जाती है, आमाशयमें सिकुड़न और जकड़न आ जाती है अथवा कभी फैल,

जाय तब आमाशयमें कुछ हलचल सी होने लगती है। आमाशयका भाग अन्ननालिकासे और अन्ननलिकाका भाग मुखसे मिला हुआ है, इसलिये आमाशयके हिलनेसे ओठोंमें फड़कन होने लगती है। ऐसी दशामें जी मचलाता है, हिचकी और उबकाई आने लगती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि मस्तिष्कमें श्लेष्माका रस भर जाय, स्रोतस बन्द होने और खुलनेके समय उस भरे हुए श्लेष्माको निकालनेका प्रयत्न करता है, ऐसी दशामें नसोंके हिलनेके साथ ही ओंठ फड़कने लगते हैं। ऐसी दशा प्रायः पक्षाघात और अपस्मारके दौरेके पहले होती है। तीसरा कारण यह भी होता है कि मुखमण्डलमें ही श्लेष्मा बढ़ जाय और उसके कारण ओठोंमें वायुके संयोगसे फड़कन हो। चौथा कारण यह हो सकता है कि ओष्ठगत शिरा और नाड़ी रक्तसे भर जायँ, फिर शीत और वायुके कारण रक्तसे बाष्प या वायु ऊपर उठे किन्तु रन्ध्रों के सिकुड़नेके कारण उसे बाहर निकलनेका अवसर न मिले ऐसी दशामें ओठोंमें फड़कन होती है। ओठोंकी फड़कनमें आवश्यक हैं कि रक्तमोक्षण कराया जाय, स्वेदन किया जाय, आहार कम दिया जाय।

ओष्ठ आकुंचन, ओठोंमें सिकुड़न और खिंचाव--जिस समय बच्चा बढ़ता रहता है उस समय उसके शरीरमें धातुओं की कमी हो तो ओंठ खिंचे हुए और सिकुड़े हुए रहते हैं। बचपनमें शरीर कोमल रहता है इसलिये दाई और मा का कर्तव्य है कि ओठोंको की मालिश और स्वेदन कर नरम करे और खींचकर ठीक दशापर लावे। तथा बाँध दे। कुछ दिनों तक ऐसा करते रहनेसे विकृति दूर हो जाती है। यदि दोषों की वृद्धिसे ओठोंमें विकार हो तो गरम तेलों की मालिश कर दोषदूर करे और ओठोंको ठीक बना दे।

ओठोंके मस्से--जैसे कानमें बवासीरकेसे मस्से होते हैं उसी तरह कभी कभी ओठोंमें भी अगूरके दानेके समान नीचेके ओठोंमें मस्सा निकल आता है। ऐसा मस्सा गाढ़ा बीचमें फटा हुआ रहता है,

जिससे नीचेका ओंठ बाहरकी ओर उलटा हुआ रहता है। कभी कभी शहतूतके फलके समान मस्सा नीचेके ओंठमें निकलता है। इसमें दर्द नहीं होता, स्पर्शज्ञान भी इसमें नहीं रहता। कभी कभी ऐसा मस्सा ऊपरी ओंठमें भी निकल आता है जिससे मुखका अग्रभाग दब जाता है। यह मस्सा विदग्ध रक्तके कारण निकलता है। इसमें ओंठके ऊपर की दो शिराएं और नीचेके ओंठ की दो शिराओंका रक्त मोक्षण करावे; और आकाश वेलिका काढ़ा पिलाकर दोष निकाल दे। इसके बाद यदि मस्सेका रङ्ग काला हो तो ओंठपर नश्तर लगाकर वहाँके दोष निकाल दे और उस जगह पर सिरका मले इससे खून निकल जायगा। यदि मस्सेका रङ्ग लाल हो तो नश्तर न लगावे। मसूरका लेप करे और मुर्दासङ्गका मल्हम लगावे। मसूर, बाबूना, स्पग और खतमी लेकर पानीमें औटावे और उस काढ़ेमें अण्डेकी जर्दी और मुर्गी की बीट मिलाकर लगावे। मल्हम बनानेके लिये मुर्दासङ्ग, सफेदा, केसर, फिटकरी, लोहेका मैल सबको महीन पीस बादामके तेलमें डाल गरम करे और उसीमें मोम पिघलाकर मल्हम बना ले। यदि बीमारी पुरानी पड़ गयी हो और इससे लाभ न हो तो ओंठमें लम्बा चीरा लगा मस्सा निकाल दे और असली दशा पर ओंठ हो जाने पर सी देवे। खून बन्द करनेके लिये गुलाबका फूल, केसर, हीराबोल (दम्बुलअखवैन) को महीन पीस घाव पर बुरका दे और फिर घाव भरने वाले मल्हम लगाकर घाव ठीक कर दे।

जलार्बुद—कफवातके दोषसे ओंठ पर जो पानीके बुलबुलेके समान अर्बुद होता है, उसे जलार्बुद कहते हैं। जलार्बुदको फोड़कर दबादे और सब दोष निकाल कर उसपर पीपल और मिर्च पीसकर शहदमें सानकर लगावे। यदि अर्बुद गहरे पहुँचा हो और अधिक बढ़ गया हो तो उसपर क्षार लगावे अथवा दाग दे।

मुखमण्डलके बाह्य रोग

गण्डालजी—गाल या कपोल मुखमण्डलका बाहरी भाग है।

इसकी बनावटमें सबसे बाहर त्वचा, त्वचाके नीचे बसा बसाके नीचे माँस और माँसके नीचे श्लैष्मिक झिल्ली रहती है। जब वसा कम होती है तब गाल पतले और पिचके हुए रहते हैं। जब बसा आवश्यकतानुसार रहती है तब गाल फूले हुए और चेहरा भरा हुआ मालूम पड़ता है। गालपर दाहयुक्त सूजन हो और सूजनका भाग कड़ा हो इसके कारण रोगीको ज्वर भी हो जाय तो ऐसे शोथको गण्डालजी या गलगण्ड कहते हैं। जब गण्डालजीका शोथ कच्ची दशामें हो तब उसका उपचार शोथके समान करना चाहिये।

पाषाणगर्दभ—हनुसन्धिमें वात और कफके प्रकोपसे जो कठिन मन्दवेदनायुक्त शोथ होता है और जो स्पर्शमें स्निग्ध रहता है उसे पाषाण गर्दभ कहते हैं। कुशल वैद्यको उचित है कि पाषाणगर्दभका पहले स्वेदन करे और फिर मैनसिल, कूट, हल्दी, हरताल और देवदारुको पीसकर लेप करे। यदि पक जाय तो शस्त्रक्रिया कर दोष निकाल दे और व्रणका सा उपचार कर ठीक कर ले। वात और कफजन्य शोथको नष्ट करनेवाले अन्य लेप भी लगावे। कभी कभी जोंक लगवा देनेसे खराब खून निकल जाता है और बिना औषधिके ही पाषाणगर्दभ अच्छा हो जाता है।

मुखदूषिका युवा स्त्री पुरुषोंके कपोल और मुखके बाहरी भाग पर सेमरके काँटेके समान कफ वायु और रक्तदोषसे छोटी फुंसी निकलती हैं, इन्हें मुखदूषिका या मुहांसे कहते हैं। युवानपिटिका भी कहते हैं। अंग्रेजीमें इसे "एकनी वलगेरिस" (Acne Vulgeris) कहते हैं। मुखकी त्वचाके मेदपिण्डोंके द्वार बन्द हो जानेसे फूल उठते हैं। डाक्टरोंका कहना है कि एकनी नामक जीवाणुसे दूषित होकर ये पिटिका पकती हैं। इसमें पठानी लोध, धनियां और, बच पीसकर लेप करे अथवा गोरोचन और कालीमिर्च पीसकर लेप करे। इससे जवानीमें उत्पन्न हुई मुखपिटिका नष्ट हो जाती है। उत्तम लेप का परिमाण आधा अंगुल मोटा लगाना है। मध्यम लेप तिहाई

अंगल और निकृष्ट लेप चौथाई अंगल मोटा होता है। जब लेप सूख जाय तब उसे निकाल देना चाहिये क्योंकि सूखने पर वह गुणहीन हो जाता है और वहांके चमड़े को रूक्ष और दूषित कर देता है। सेमरके कांटोंको दूधके साथ पीसकर मुखपर तीन चार दिनों तक लेप करे। इससे मुख दूषिका नष्ट होती और मुख कमलके समान कोमल और चिकना हो जाता है।

मुखव्यङ्ग और नीलिका—क्रोध करने और अधिक परिश्रम करनेसे वायु और पित्त दूषित होकर मुखमण्डलमें आकर सहसा मुखके ऊपर वेदना रहित, पतली श्याव वर्ण व्यङ्ग (काली सफेद मिश्रित झाई) उत्पन्न करते हैं, इसे व्यङ्ग कहते हैं। जब इसी प्रकार का व्यङ्ग वेदना रहित, पतला गाढ़े नीले रङ्ग का होता है, मण्डलयुक्त होता है तब उसे नीलिका कहते हैं। अंग्रेजोमें इन्हें कैपिलरी एन्जियोमाटा या नीवी कहते हैं। धमनी, शिरा, और केशिकाओंमें एक छोटा गुच्छ त्वचामें बन जानेसे इनकी उत्पत्ति होती है। शिरावेधकर रक्त निकाले और फिर बरगदके अंकुर और मसूर पीसकर लेप करे तो व्यङ्ग और झाई आराम होती है। मजीठको पीस मधुके साथ मिला लेप करनेसे भी व्यङ्ग और नीलिका अच्छी होती हैं। खरगोशके रक्तका लेप करनेसे भी ये अच्छी होती हैं। अथवा वरुणकी छाल बकरीके मूत्रमें पीस लेप करे। अथवा जायफलको दूधके साथ पीसकर लेप करे। अथवा अकौवेका दूध और हल्दीका चूर्ण मिलाकर मल कर लेप करे तो मुख की कलौंस दूर होती है। मसूरकी दाल दूधमें पीस कर घी मिलाकर मुखपर लेप करे तो ७ दिनमें मुख कमलके समान चिकना और मुलायम हो जाता है। अथवा बरगदके पीले पत्ते, मालती, लालचन्दन, कूट, कदम्ब, अथवा मलयागिर चन्दन और पठानी लोध पीसकर लेप करे तो युवानपिडिका, झाई, नीलिका आदि आराम होती है। **कुंकुमाद्यतैल** केसर, चन्दन, लोध, पतङ्ग, लालचन्दन, कदम्ब, खस, मजीठ, मुलेठी, तेजपात, पद्माख, कमल, कूट, गोरोचन,

हल्दी, लाख, दारुहल्दी, गेरू, नागकेसर, पलाशपुष्प, पियंगु, वटांकुर, मालती, मोम, सरसों, महाक्षरीवच, सब एक एक तोला लेकर ४ गुने दूधमें पीस दो सेर तिल तेलमें उक्त सब दवाइयोंका कल्क और ८ सेर दूध डालकर मन्दाग्निसे पकावे। जब तेल सिद्ध हो जाय तब उतार छानकर बोतलमें रख दे। इस तेलको मुखपर मलनेसे व्यङ्ग, नीलिका, तिल, मस्सा, न्यच्छ (लच्छन), मुखदूषिका, पद्मिनी कण्टक और जतूमणि नष्ट होते हैं और मुखमण्डल पूर्णचन्द्रके समान स्वच्छ और सुन्दर हो जाता है।

वल्मीक—गर्दन, कन्धे, कांख और कभी कभी हाथ पाँवमें सन्धियों और गलेमें वल्मीक (बाँबी) के समान छोटे छिद्रों और दानों वाली ऊंची ग्रन्थियाँ निकलती हैं। बांबीकेसे दाने होनेके कारण इसे वल्मीक कहते हैं। वात-पित्त-कफ तीनों दोषोंके प्रकोपसे जो ग्रन्थियाँ होती हैं वह दुश्चिकित्स्य होती हैं। किन्तु चिकित्सा न करने से वे बढ़ती और स्राव तथा वेदना युक्त भी हो जाती हैं। इसके बाद ही ऊंची और अनेक मुखों वाली होकर विसर्पकी तरह फैलती हैं। यह व्याधि पुरानी होनेसे असाध्य हो जाती है। पश्चिमी वैज्ञानिक इसे "एक्टिनोमाइस" कीटाणुके कारण उत्पन्न बताकर इसका नाम एक्टिनो माइकोसिस रखते हैं। हाथ पाँवके ऊपर होने वाला, बहुछिद्रों से युक्त शोथवाला वल्मीकि असाध्य है। इसे शस्त्रसे चीरकर क्षार तथा अग्निसे जला देवे। फिर अर्बुदमें कही हुई विधिसे शोधन कर व्रणका रोपण करे। अत्यन्त बढ़े हुए वल्मीकमें तथा मर्मस्थलके वल्मीकमें रक्तमोक्षण कराना भी हित है। कुल्थी की जड़, गच, सेंधा नमक, अमिलतास की जड़, दन्ती की जड़, काली निशोथ या अनन्त-मूलकी जड़, तिल, जौका सत्तू इन सबोंको मिला घी डाल पकावे और उसी की पुल्टिश बाँधे। पकने पर शस्त्रसे चीर मवाद निकाल और प्रलेप लगाकर फिर क्षार द्वारा दूषित मांसका शोधन करे। शुद्ध होने पर व्रण रोपण की चिकित्सा करे। अथवा मैनसिल, हरताल,

भिलावा, छोटी इलायची, अगर, सफेद चन्दन और चमेलीकी पत्ती इनके कल्कमें तक्र मिलाकर नीमके तेलमें सब औषधियोंका पाक करे। यह **मनःशिलाद्य तैल** अनेक छिद्रोंवाले तथा अनेक व्रणवाले वल्मीक को नष्ट करता है।

शिरोग्रह—प्रकुपित वात ग्रीवामें रहनेवाली सिराओंमें रूक्ष, वेदनायुक्त और कृष्णवर्ण विकार कर देता है उसे शिरोग्रह कहते हैं। यह व्याधि प्रायः असाध्य होती है; किन्तु शीघ्र ही इसमें सिराओंमें स्थित वातकी सी चिकित्सा हो तो लाभ होता है। तैल मर्दन, स्नेहोपनाह, स्निग्ध प्रलेप तथा रक्तमोक्षण कराना चाहिये। दशमूलके क्वाथ तथा बिजौरा नींबूके स्वरसके साथ पकाये हुए तेलका अभ्यङ्ग करना एवं शिरोवस्ति देनी चाहिये।

हनुग्रह—जीभको अधिक बाहर खींचने, चने आदि सूखे पदार्थ खाने, ठुड्डीमें चोट लगने आदि कारणोंसे हनुमूलमें स्थित वायु कुपित होकर हनुको नीचे कर मुखको खोल देता है अथवा ऊपर कर मुखको बन्द कर देता है। इसे हनुग्रह कहते हैं। इसमें मुँह खोलने, बोलने और कोई वस्तु चबानेमें कष्ट होता है। जब अधोहन्विकास्थिका विश्लेष होता है, तब मुँह खुल जाता है। यह विश्लेष पेशियोंके कर्षण या चिबुक पर आघात लगनेसे होता है, अथवा सन्धि-बन्धन ढीले पड़ जावें अथवा हन्विकासन्धि अर्बुदके छोटे होनेसे सुगमतासे हनुर्वातसे आगेकी ओर फिसल आनेसे भी मुख खुल जाता है। साधारणतया मुख खोलनेके समय हनुमुण्ड फिसलकर हनुर्वातमें आगे की ओर सन्ध्यर्बुदके पीछे पहुँच जाता है। उस समय यदि चिबुकमें आघात लगे तो वह अर्बुद पर से फिसलता हुआ उसके आगे पहुँच जाता है। हनुकुन्त पर लगी हुई संकोचक पेशियां भी अस्थिको आगेकी ओर खींचती हैं। अतएव रोगीका मुँह खुल जाता है, चिबुक नीचे को दब जाती है। यदि सन्धि-विश्लेष एक ओर ही हो तो चिबुक उसी ओर मुड़ जायगी यदि सन्धि विश्लेष दोनों ओर हों तो नीचे दबेगी।

ऐसी दशामें कपोल पर कर्णमूलके आगे एक गढ़ा और उसके आगे एक उभाड़ दिखाई पड़ेगा। मुखके भीतर अँगुली डालकर देखें तो हनुकुन्त अपने स्वाभाविक स्थानसे आगेकी ओर हटा हुआ मालूम पड़ेगा। जब मुँह पूर्ण रूपसे बन्द हो जाता है तब पेशियोंका सङ्कोच होनेसे ऐसा होता है। अंग्रेजीमें इसे (Lock) अथवा ट्रिसमस (Trismus) कहते हैं।

(१) यदि मुख बन्द होगया हो तो चिबुकका स्नेहन तथा स्वेदन करके सँडसीसे या चम्मच डालकर मुँह खोल देवे। (२) यदि मुँह खुला रह गया हो तो चिबुक और हनु पर तैलकी मालिश कर चिबुकको झुकाकर उसे एक हाथ शिर पर और दूसरा ठोडी पर रख दबाकर बन्द कर दे। रोगीको एक कुर्सी पर बिठाकर स्नेहन स्वेदनके बाद एक मनुष्य पीछे खड़ा होकर रोगीका शिर पकड़ रखे। सामने वैद्य खड़ा हो, अपने अँगूठेको एक साफ कपड़ेसे लपेट रोगीके मुखके भीतर डाले। बाहरी अंगुलियोंसे दाढ़ी पकड़े और पीछे एवं नीचेकी ओर दबावे। दबाव पड़नेसे हनु हनुमुण्डकी ओर दबकर सन्ध्यर्बुद परसे फिसलता हुआ अपने स्थान पर आ जाता है। इसके पश्चात् हन्वस्थि पर पट्टी बांध दे और दस दिनों तक बँधा रखे। आहार दूध या पतला यवागू रखे। (३) लहसुनको छीलकर पीस ले और सेन्धानमक मिलाकर तिलके तेलके साथ खिलावे। (४) लहसुन तथा उड़दकी धोई हुई दालको एकत्र पीसकर सेन्धानमक, अदरक और हींग मिलाकर तिलके तेलमें बड़े बनावे। इन्हें जठराग्निका विचारकर खिलावे। (५) प्रसारिणी तैलकी मालिश कर एरण्डकी बीजी, सेन्धानमक, काले तिलकी पोटली बना मन्द आंचसे स्वेदन करे। शिर पर उड़दके आटे को सान कानके ऊपर चारों ओर दो अंगुल ऊँची दीवाल बना शिर में तैल भरकर शिरोवस्ति दे।

मन्यास्तम्भ—दिनमें सोने अथवा विपरीत आसन पर बैठने एवं विकृत रीतिसे गर्दनको ऊपर उठाकर देखनेसे कर्णमूलिका (Sterno mastoid) नामक मांसपेशीका सङ्कोच होता है और कफसे

आवृत वायु गर्दनके पीछेके भागमें रहने वाली मन्यासंज्ञक १४ सिराओंको स्तब्ध कर देता है। उसे मन्यास्तम्भ• कहते हैं। डाक्टरी में इसे टार्टी कोलीज (Torticolis) कहते हैं। मन्यास्तम्भमें दशमूलका काढ़ा पीनेको देवे और पंचमूलकी औषधियों द्वारा रूक्ष स्वेदन करावे। तथा नस्यकी योजना करे। तेल अथवा घीसे गर्दनपर मालिशकर अंकौवाके पत्ते अथवा एरण्डके पत्तोंसे गर्दन ढक कर वारम्बार सेंक करे। अथवा मुर्गीके अण्डेके रसको गरम कर उसमें सेंधा नमक और घी मिलाकर गर्दनमें मले इससे मन्यास्तम्भ आराम होता है।

गण्डमाला--कन्धेके पास, गलेमें हंसलीके अगल बगल या मन्याके पास गलेके ऊपरी भागमें ठुड्डीके अगल वगल (कभी कभी काँख और अण्डोषके पास भी) कफ और मेदके दूषित होनेसे जो एक या अनेक गांठें उत्पन्न होती हैं और अधिक दिनोंमें धीरे धीरे पकती भी हैं, उन्हें गण्डमाला कहते हैं। भोजके मतसे बढ़े हुए वात-पित्त और कफ मेदके साथ मिलकर जांघ की कण्डरामें प्रवेश करते हैं और मछलीके अण्डेके समान अनेक गांठें उत्पन्न करते हैं। उन गांठोंसे प्रकुपित वायु दोषोंको ऊपर ले जाकर काँख, कन्धा, गला, मन्या, अण्ड आदि स्थानमें आश्रय लेता और वहाँ गाठें उत्पन्न करता है। ये गांठें बेरकी गुठलीके समान, बड़ी बेरकी गुठलीके समान अथवा आंवले की गुठलीके समान बड़ी होती हैं।

(१) मुण्डी की जड़ मुण्डीके पञ्चांगके रसमें पीसकर गण्डमाला की गांठमें लगानेसे गण्डमाला नष्ट होता है। (२) कचनार की छालका काढ़ा सोंठ मिला कर अथवा वरुण की छालका काढ़ा शहद मिला कर पीवे। (३) कचनारकी छाल, चित्रककी जड़ और वचनाग पानीमें घिस कर गण्डमालामें नित्य लेप करे। सात दिनोंमें गण्डमाला फूट जायगा। फूटने पर अमिलतास की जड़ पानी या चावलके धोवनमें पीस कर लेप करे, और इसीका नस्य दे। (४) त्रिफलादिगुग्गुल--सोंठ ८

तोले, मिर्च ८ तोले, पीपल ८ तोले, हर्रा ३ तोले, बहेड़ा ३ तोले, आंवला ३ तोले, कांचनारकी छालका चूर्ण ४८ तोले, शुद्ध गुग्गुल १ सेर और शहद ४० तोले मिला कर कूट कर आधे आधे तोले की गोली बनावे इन्हें सवेरे शाम खानेसे गण्डमाला आराम होता है (५) **कांचनार गुग्गुल** कचनार की छाल ४० तोले, हर्रा-बहेड़ा-आँवला प्रत्येक आठ-आठ तोले, सोंठ-मिर्च-पीपल प्रत्येक चार चार तोले, वरुणकी छाल ४ तोले, दालचीनी, इलायची और तेजपात प्रत्येक एक एकतोला लेकर सबका चूर्ण करे। सबके बराबर शुद्ध गुग्गल मिलावे और तीन तीन माशेकी गोली बनावे, एक गोली नित्य सबेरे खावे। इससे उग्र गण्डमाला, अपची, गाँठ, बतौरी, गुल्म, कुष्ट और भगन्दर नष्ट होता है। अनुपानमें मुण्डी अथवा खैर अथवा हर्राका काढ़ा देवे। (६) **अजमोदादितैल**—अजमोदा, सेंदुर, हरताल, हल्दी, दारुहल्दी, जवाखार, सज्जीखार, समुद्रफेन, दौना, रालाधूप, इन्द्रायण, अपामार्ग, केलेकी जड़, घृतकुमारी सब एक एक तोला, सरसोंका तेल एक सेर। पहले तेल कड़ाहीमें चढ़ा उसमें आठसेर बकरीका मूत्र डाले और सब दवाइयां पीस कल्ककर डाल दे। एक सेर सेहुंडका अर्क और एकसेर मन्दारका अर्क भी डाले। मन्दाग्निसे पचाकर तेल तैयार करे। इससे गण्डमालाका नाश होता है। कच्ची या अधपकी गाँठोंको पकाता है, पकी हुई गाँठोंका शोधन करता है, गण्डमालाके घाव भरता और उन्हें नरम करता है।

(१) **गन्धकादि योग**—शुद्ध गन्धक, सोहागे की लाई, सेंधा-नमक, हल्दी, नवसादर, सौंचर नोन, जवाखार, कांचनमक, हिंगुल, सज्जीखार, सफेद संखिया, लाल संखिया, रेह मिट्टी, और जयपालके बीज सबको पीसकर नींबूके रसमें घोटे। गण्डमालाकी गांठ शस्त्रसे मुखकर इस गन्धक योगको लगावे और एरण्ड पत्र लगाकर पट्टी बांध दे। इससे ३ दिनमें गांठ फूट जावेगी, फूटने पर उसमें दही भात बांधे। इससे गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि, बाहर होकर बह जाती है।

(८) **गन्धकादिलेप**--गन्धक--पारा समभाग लेकर मन्दारका दूध, सेंधा नमक और भरभण्डेकी जड़ सबको पीस गण्डमाला पर लेप करे। (९) **गण्डमालाकण्डनरस**--शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक आधा तोला, ताम्रभस्म डेढ़ तोला, मण्डूर भस्म ३ तोले, सोंठ २ तोला, पीपल २ तोला, मिर्च २ तोला, सेंधा नमक आधा तोला, कचनार की छालका चूर्ण १२ तोला, शुद्ध गुग्गुल १२ तोला सबको घोटकर गायका घी डालकर कूटे और तीन तीन माशे की गोली बनाकर कचनारके काढ़ेसे अथवा गायके घीसे नित्य गोली देवे। इससे गलगण्ड, गण्ड-माला, अपची, ग्रन्थि आदिका नाश होता है।

अपची--गण्डमाला की गांठ जब कोई पकती, कोई बहती और कोई नष्ट होती रहती है; तब उसे अपची कहते हैं। अपची साधारणतः साध्य होती है; किन्तु यदि पीनस, पार्श्वशूल, खाँसी, ज्वर, छर्दि आदि विकार और उपद्रवसे युक्त हो तो असाध्य होती है।

(१) अपचीपर सहिजन की छाल और देवदारु कांजीसे पीस पकाकर कुनकुना लेप करे, दुस्तर अपची नष्ट होगी। (२) सरसों, नीमके पत्ते, दन्ती और भिलांवा बकरीके मूत्रमें पीसकर अपचीपर लेप करे (३) पीपलकी लकड़ी, नीमकी लकड़ी और गायके दांत जलाकर सुवरकी चर्बीमें सान लेप करे अपची नष्ट होगी।

(४) **चन्दनादितैल**--चन्दन, हर्रा, लाख, वच, कुटकी सब एक एक छटांक लेकर कल्क करे और एक छटांक दवा लेकर ५ सेर पानीमें चतुर्थांशी काढ़ा करे। ढाई पाव तेल कड़ाहीमें चढ़ा उसमें सवासेर काढ़ा और कल्क की दवाके साथ १० सेर पानी डाल तेल सिद्ध करें। इस तेलके पीनेसे अपचीका नाश होता है। (५) **व्योषादितैल**--सोंठ-मिर्च-पीपल, वायविडंग, मुलैठी, सेंधानमक, देवदारु पीसकर तेल सिद्ध करे, इसके नस्यसे अपची नष्ट होती है।

जिह्वागत रोग

परिचय—मुखमण्डलमें जिव्हा आस्वाद लेनेकी इन्द्रिय है। हम जो कुछ खाते हैं, उसका रस विश्लेषण करना और भोजनके पदार्थोंका चर्वण करनेमें दांतोंको सहायता पहुँचाना जिव्हाका काम है। जब दांत आहारद्रव्यका चर्वण कर उसे बारीक कर आमाशयमें पहुँचानेकी क्रिया करते हैं, तब जिव्हा कौरको उलट पुलट कर मुंहमें चारों ओर घुमाती और दांतों तक पहुँचाती रहती है। इस क्रियाके कारण ही लाला-पिण्डोंसे लार उत्पन्न होती और आहार द्रव्यको स्निग्ध और गीला बनाती है। जब कोई वस्तु दांतोंके बीच फंस जाती है तब जिव्हा सञ्चालनके द्वारा वह निकल आती है। भोजन द्रव्य जीभके मारे गाल या दांतोंके बीच रुकने नहीं पाता। रसज्ञान करानेके अतिरिक्त जिव्हा पदार्थों की उष्णता और शीतत्वका भी बोध कराती है। जिससे ग्रहण योग्य आहार हम मुखमें डाल सकते हैं। इन कार्यों के अतिरिक्त वाणीका मुख्य कार्य जिव्हाके ही द्वारा होता है। यदि जिव्हा न हो तो हम स्पष्ट शब्द और वर्णोच्चार करनेमें समर्थ न हों। जीभका अगला सिरा पतला और नुकीला होता है; किन्तु मूलमें जिव्हा मोटी रहती है। जिव्हा अधिकांशमें मांससे बनी रहती है और उसके ऊपर मोटी श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। कई मांस पेशियों द्वारा अधोहन्वस्थि, शिफाप्रवर्धन और कण्ठिकास्थिसे जुड़ी रहती है। मांससे बनी होनेके कारण मांसके संकोच और प्रसारसे वह छोटी बड़ी, मोटी और पतली हो सकती है। जिन मांसपेशियों द्वारा वह कण्ठिकास्थिसे जुड़ी रहती है उनके संकोचसे वह मुंहके भीतर चली जाती और प्रसारसे बाहर निकल आती है। यही नहीं मुंहके भीतर भी गति करती रहती है।

जीभमें जो छोटे लाल दाने उभड़े हुए दिखते हैं वे सौत्रिकतन्तु, नाड़ीसूत्र और रक्तकेशिकाओंके इकट्ठे होनेसे बनते हैं। इनके ऊपर सेलोंकी कई तहें चढ़ी रहती हैं। ये दाने ३ प्रकारके होते हैं।

जिव्हामूल पर ६ दश बड़े दाने दो पंक्तियोंमें होते हैं जो पीछे जाकर एक दूसरेसे मिलकर एक बृहत कोण बनाते हैं। प्रत्येक दानेके चारों ओर एक खाईं सी बनी रहती है, जिससे इन्हें खातवेष्टितांकुर कहते हैं। इन्हीं खातकी दीवालोंमें छोटे छोटे सेल रहते हैं, जिन्हें स्वादुकोष कहते हैं। प्रत्येक अंकुरमें सौ डेढ़ सौ स्वादुकोष होते हैं। दूसरे प्रकारके दाने जिव्हाकी फुनगी पर छत्राकार रहते हैं। इनमें जो स्वादाङ्कुर होते हैं उनमें स्वाद पहचाननेकी शक्ति अधिक होती है। तीसरे दाने पतले और नुकीले होते हैं जो समान्तर पंक्तियोंमें सर्वत्र फैले रहते हैं। इन्हें सूत्रांकुर कहते हैं, इनमें स्वादु पहचानने की शक्ति कम होती है। इनका उपयोग स्पर्श और उष्णताके ज्ञानके लिये विशेष होता है। जिव्हामूल और जिव्हाकी नोकके पास स्वादकोष तो रहते ही हैं; किन्तु कुछ स्वादकोष कोमलतालुके नीचे और स्वरयन्त्रच्छदके पिछले भाग पर भी रहते हैं। स्वादुकोषमें दो प्रकार की सेलें रहती हैं और प्रत्येक स्वादकोषमें एक छिद्र होता है जिसे स्वादुरन्ध्र कहते हैं।

रसज्ञानवाली सेलें बीचमें मोटी और सिरोंपर पतली होती हैं। इनके ऊपरी सिरेसे एक बाल जैसा तार निकलता और स्वादरन्ध्रमें रहता है। सेलके दूसरे सिरेसे भी एकतार निकलता है, वह स्वाद सम्बन्धी नाड़ीके तारसे मिला रहता है। कोषके केन्द्रीय भागमें रसज्ञ सेलें होती हैं और उनकी सहायताके लिये कुछ सेलें बीचमें भी रहती हैं। सुरस वस्तुओंका स्वाद घुली हुई दशामें जाना जा सकता है। मिश्री या मिठाई मुंहमें डालने पर वह मुंहके रसमें घुलकर रसज्ञ सेलोंके बालोंसे टकराती और सेलों पर स्पर्श प्रभाव पड़कर नाड़ी तारों द्वारा मस्तिष्कके स्वादकेन्द्रोंको उसकी सूचना पहुँचती है। जिव्हाके पिछले तिहाई भागके तार जिव्हाकण्ठनाड़ी द्वारा मस्तिष्कमें पहुँचते हैं, शेष दो तिहाईके तार रसनाड़ीके द्वारा मस्तिष्कमें जाते हैं। इसी तरह दोनों नाड़ियोंके तार स्वादकेन्द्रमें पहुंचते हैं। मधुर रसका आस्वाद जिव्हाग्रसे, अम्लका किनारोंसे और कटु रसका

आस्वाद जिव्हामूलसे होता है। अन्य रस कुछ कुछ प्रत्येक भागसे जाने जाते हैं। यदि जीभपर मैल जमा हो तो खाद्यका उत्तम आस्वाद नहीं समझमें आता। यही नहीं मैलसे अनेक प्रकार की बीमारियां भी हो सकती हैं। इसलिये नित्य जीभको साफ करते रहनेकी आवश्यकता है। जिव्हालोलुपतामें पड़ स्वादिष्ट आहार आवश्यकतासे अधिक नहीं लेना चाहिये। क्योंकि ऐसे आहार पाकस्थलीके लिये सुविधाजनक नहीं होते। प्रमेह सम्बन्धी बीमारियोंमें तथा पक्वाशयके विकार और शौचशुद्धि न होनेसे जीभमें मैल अधिक जमता है। जीभमें सफेदी की तह फेफड़ोंके विकारमें भी जमती है। इस तरह जीभ देखकर रोगोंका परिचय भी किया जा सकता है।

जिव्हारोग निदान और चिकित्सा

आयुर्वेदमें जिव्हारोग पाँच प्रकारका माना गया है १ वातज जिव्हारोग २ पित्तज जिव्हारोग ३ कफज जिव्हारोग ४ अलास और ५ उपजिव्हिका। इनके अन्तर्गत कई विकार और भी होते हैं। नीचे हम सबका वर्णन करेंगे।

वातज जिव्हारोग--वातजविकारसे जिव्हा फटी हुई रहती है, रसोंका ठीक ज्ञान नहीं कर पाती, जैसे सागौन के पत्तोंमें खरखरापन और छोटे दानेसे उभड़े रहते हैं उसी तरह जिव्हा दानेदार खरखरी रहती है। कभी कभी जीभमें कालापन आ जाता है, ऊपरी चमड़ा सूखा सा रहता है। इसे डाक्टरीमें क्रेकृडटङ्ग या फिसडटङ्ग कहते हैं। मुंहमें लार या लुआब बहुत कम रहता है। वायु दोषकी शान्तिके लिये अमरबेलिका काढ़ा पिलावे। इसके बाद अंजीर और मेथीको अलसीके पानीमें पकाकर उसमें बनफशाका तेल और मधु मिला कुल्ले करावे। हरा या सूखा काहू, कासनी और हरी धनियांका रस अथवा सबको पानीमें भिगाकर रस निकाल मुखमें कवल धारण (कुल्ला मुंहमें रोककर रखें) करें। सब प्रकारके जिव्हारोगमें रक्तमोक्षण

कराना प्रशस्त उपाय है; किन्तु वायु विकारके कारण यदि खुश्की अधिक हो तो रक्तमोक्षण न करावे। गुर्च, पीपल और नीमकी छालके काढ़े में पिसी हुई सोंठ छोड़ कवल धारण करे।

पित्तज जिव्हारोग---पित्तके कारण जीभमें विकार हों या जीभ में कांटे आये हों तो जीभमें दाह होता है, जीभमें चुनचुनी बनी रहती है और जीभमें लाल दाने या मांसांकुर अधिकतासे उठ आते हैं। यदि पित्त विकारसे शोथ भी हो तो जीभका रङ्ग पीला हो जाता है। पित्तज जिव्हारोगमें रक्तमोक्षण कराना ठीक नहीं है, क्योंकि जिव्हा-गत रक्त पित्तदोषको दवाये रहता है, यदि रक्त निकल जाय तो पित्त की उल्बणता अधिक हो जायगी। इससे जलनमें भी अधिकता हो सकती है। इसे डाक्टर लोग रेडग्लाज्डटङ्ग कहते हैं। गुलाबजलमें ऊखका सिरका मिलाकर कुल्ले करे। बादामका तेल और नील कमल के तेलमें कपूर मिलाकर मुखमें कवल धारण करे। समशीतोष्ण पदार्थों के द्वारा मृदु विरेचन देकर पित्तका जोर घटावे। यदि कण्टक अधिक हों तो उन्हें घिसकर या रगड़कर कुछ रक्त निकाल दे। मधुर गण की उपयुक्त औषधियोंमें सेंधानमक मिलाकर प्रतिसारण करे अर्थात् अंगुलीसे धीरे धीरे जीभको रगड़े। मधुर औषधियोंका काढ़ा पिलावे और मधुर औषधियोंसे सिद्ध किये हुए तेलको नाकमें टपकावे। या नस्य लेवे। ऐसे तेल की तैयारीमें औषधि-कल्कसे चौगुना तेल और तेलसे दशगुणा दूध डाल कर पकावे।

कफजन्य जिव्हारोग—कफ विकृतिसे जिव्हामें जो विकार होते हैं उनमें जीभमें सेमरके कांटोंके समान ऊँचे कांटे उठ आते हैं वे कांटे या अंकुर मोटे और कड़े होते हैं। जीभ स्पर्शमें शीत, देखनेमें सफेद और स्वादमें क्षारगुण विशिष्ट रहती है। जीभमें सफेदीके साथ लुआब सा रहता है।

इसे डाक्टरीमें इचथ्योसिस कहते हैं। नरम औषधियोंसे जुलाब दे। नरम औषधियोंके काढ़ेसे वस्ति दे। जीभपर शहद मलें। अथवा

सरसों, सोंठ, मिर्च, पीपलको पीसकर अंगुलीसे जीभमें प्रतिसारण करे अर्थात् घिसे, नस्य देवे और कुल्ले भी करावे। अथवा पिपल्यादि-गण (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, गजपीपर, रेणुकबीज, इलायची, अजमोदा, इन्द्रजव, पाढ़ी, जीरा, सरसों, बकायन नीम, मैनफल, हींग, भारंगी, मूर्वा, अतीस, बच, बायविडंग और कुटकी) की औषधियोंका चूर्ण शहद मिलाकर जिव्हामें रगड़े। सरसों और सेंधा नमक पीसकर कवल धारण करे। भोजनमें परवर, नीम और बैंगनका शाक जवाखार मिलाकर सेवन करे।

अलस--कफ और पित्त विकारसे जीभके नीचे ऊँची सूजन हो जाती है, इससे जीभ जकड़ जाती और तनती है तथा उस सूजनके पक जाने पर उसमें मछलीकी सी गन्ध आती है। उसे अलस या अलास कहते हैं। गद निग्रह कार इसे कफ और रक्त विकारसे उत्पन्न बताते हैं; और आयुर्वेद विज्ञानकारका मत है कि यह त्रिदोष जन्य है; क्योंकि इसमें जो जिव्हास्तम्भ होता है वह वायु विकारके कारण, भृशपाकत्व पित्तके कारण और शोथ कफके कारण समझना चाहिये। हकीम लोग भी ऐसी गांठको कफ और रक्तके विकारसे उत्पन्न बताते हैं। वे लोग इसका आकार मेंडकीके सिरकी सूरतकी कहते हैं। इसलिये उनके यहाँ इसका नाम 'जफदा' है। इसके बढ़ जानेसे और जीभके जकड़ जानेसे मनुष्यका बात करना कठिन होता है। चेपदार कफ और रक्तके कारण जिव्हाके नरम भाग नष्ट हो जाते हैं। शेष भाग कड़ा हो जाता है। जिव्हालसकी चिकित्सा कफज जिव्हारोगके समान करे; किन्तु इसमें शस्त्रप्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि रक्तकी अधिकता मालूम पड़े तो हाथकी मध्यमा अंगुलीकी सीधमें कोहनीके गड्ढेके बीच जो शिरा है उसका शिरामोक्षण कर रक्त निकलवावे। इसके बाद जुलाब देकर जूफा, नमक, अनारका छिलका और मांस गलाने वाली वस्तुएं नौसादर, भुनी फिटकरी, जंगार, सौसन की जड़ और मुरेमककी पिलाकर जीभके नीचेके बढ़े हुए मांस

पर मलें। यदि वह पक कर बह जाय तो पानीमें ऊखका सिरका मिलाकर कुल्ले करावे। यदि शस्त्र प्रयोग करना ही पड़े तो जीभके नीचे की दोनों नसोंको चिमटीसे पकड़ रखे, जिससे यह कटने न पावे, इनके कटनेसे मृत्यु होनेका भय रहता है और रक्त बन्द नहीं होता। अतएव उन्हें पकड़कर सावधानीसे गांठको चीर दे। कभी कभी जीभके नीचे एक नरम गाँठ निकलती है। उसे चीरा देकर उससेंसे दूषित अंश निकाल दे और कैंची से नसोंको उठाकर साफ कर लें। फिर ऊपरके समान चिकित्सा करे। अलासको सुश्रुताचार्य असाध्य मानते हैं।

अधिजिव्ह--जीभके नीचेके भागमें उसके बन्धनके पार जीभ की नोकके समान खरखरी सूजन होती है, उसपर मांसांकुर आ जाते हैं, जीभ तनती है, चुनचुनी लगती है, लार निकलती रहती है, उसपर ठनका लगता है, खुजली होती है, बोलने और खानेमें अड़चन पड़ती है, इसे अधिजिव्ह कहते हैं। यह कफ-पित्त और रक्त विकृतिसे होता है। इसे डाक्टरीमें 'सब लिंगुअल एबसिस' कहते हैं। अधिक बढ़कर अधोहनु की उपत्वचामें शोथ उत्पन्न करता है। इसमें जीभको ऊपर उठाकर गलेके पास सूजनको खींचकर मण्डलाग्र शस्त्रसे (छः अंगुल का एक शस्त्र होता है जिसके अग्रभागमें गोल तजनी अंगुलीके नखके समान धार रहती है) काट देवे। इसके ऊपर तीक्ष्ण और उष्ण औषधियोंका चूर्ण रगड़ देवे। ऐसी ही औषधियोंके काढ़ेसे कुल्ले करावे और ऐसी ही औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ तेल नाकमें टपकावे।

उपजिव्हक--अधिजिव्हके समान ही उपजिव्हक भी होता है, किन्तु यह जीभके ऊपरी भागपर होता है। अर्थात् जिव्हाके अग्रभाग के समान आकृति वाला कफ और रक्त दोषसे उत्पन्न शोथ होता है। लार बहती है, उसमें खुजली होती है, जलन होती है, जिव्हा ऊपर को उठी रहती है। इसे डाक्टरीमें रेन्यूला (Ranula) कहते हैं।

जिह्वाके निचले भागमें जिह्वाऽधः स्थित लालाग्रन्थिके स्रोतसोंमें श्लेष्मलद्रवका संचय होनेसे ऊपर शोथ उठ आता है। इसे शस्त्रसे, अंगुलिशस्त्र या सागोनके पत्तेसे रगड़ कर रक्तमोक्षण कर जवाखार घिसे। गलशुंडी कफघ्न औषधियोंसे रगड़े, कफघ्न औषधियोंसे कुल्ले करावे और कफघ्न नस्य देवे। अधिक बढ़ जाने पर उसका सिरा ककरीके बीजके समान किन्तु काला होता है, उसमें सिरा नहीं दिखती, उसे वाडशयन्त्रसे पकड़ कर मंडलाग्रशस्त्रसे काट देवे। न तो अधिक जड़से और न अधिक नोकके पाससे ही काटे। नोकके पास कम काटनेसे व्याधि बढ़नेका डर रहता है और बहुत जड़से काटनेसे अधिक रक्त निकल जानेसे मृत्युका भय रहता है। उपजिह्वा काटने पर मिर्च, अतीस, पाढ़ी, वच, कूट, श्योनाक और सेंधा नमक पीस कर मधु मिला रगड़े। और कुटकी, अतीस, पाढ़ी, नीम, रासना और बचका काढ़ा कर कुल्ले करावे। उपजिह्वाका लेखन (Scraping) कर क्षार मले और नस्य देकर शिरोविरेचन करे, धूम्रपान कराकर दोषशान्ति करे और सोंठ, मिर्च, पीपर, जवाखार, हर्र, और चीताका चूर्णकर रगड़े तथा इन्हीं औषधियोंके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तेल भी लगावे।

रक्तज जिह्वारोग--आयुर्वेदने रक्तजजिह्वा रोग नहीं माना। पित्तज रोगमें ही उसका अन्तर्भाव कर लिया गया है; किन्तु यूनानी में रक्तज जिह्वा रोग अलग माना गया है। रक्तज जिह्वारोगमें जीभ लाल हो जाती है। कुछ नीलापन और खिंचावके साथ दर्द होता है। थूक बहुत थोड़ा आता है। इसमें फस्द खोले और शीत कषायसे तबियतको नरम करे। यदि शोथके कारण कण्ठका मार्ग रुक गया हो और कोई वस्तु गलेके नीचे न उतर सकती हो तो वस्ति कर्म कर पेट साफ करे। इसके पश्चात् काहू, कासनी, ताजी मकोय की पत्ती का रस लेकर तथा अन्य ठण्डी और ग्राही वस्तुएं लेकर कुल्ला करे और कवल धारण करे। ऐसी ही शीत वस्तुओंसे कपड़ा तर कर

जीभपर रखें। अथवा अलसीके लुआबमें काकनजका पानी रखे। मधुर, स्निग्ध और शीत पदार्थोंका भोजन करे या दूध और शर्वत लेवे।

जिव्हाशोथ--जिव्हाशोथको डाक्टरीमें ग्लोसाइटीज (Glossitis) कहते हैं। इसमें जीभ सूजकर लाल हो जाती है, खिंचाव होता है, लार गिरती है, बोलने और खाने पीनेमें कष्ट होता है। अधिक शोथ होनेसे जीभ बाहर निकल आती है, ऐसी दशामें कभी कभी रोगी मर भी जाता है। कभी कभी कच्चा पारा खानेसे जो मुंह आता है, उसमें भी ऐसी ही दशा होती है। कभी कभी अधिक अजीर्ण, सर्दी, ऋतुओंके फेरफार, मुखपाक अथवा पारावाली दवा खानेसे जीभमें दाह होता है। इसमें जिव्हाके पेशीसूत्रोंमें विकार आ जाता है, जिससे वे कभी कभी नष्ट भी हो जाते हैं। दहन-दाहक और तीव्र पदार्थ जिव्हामें लगनेसे अथवा मधुमक्खीके काटनेसे भी यह हो जाता है। दांत की तेजधारसे जीभ कट जाने अथवा चुरुटके पाइप की तेजीसे भी जिव्हाशोथ होता है और अधिक दिनों तक स्थायी होता है। तरुण जिव्हाशोथमें जीभ मोटी पड़ जाती है, कुछ बढ़ जाती है और मुखगह्वरमें समा नहीं सकती। इससे दांतोंसे बाहर दो अंगुल निकल आती है। जीभका ऊपरी भाग दोषानुसार सफेद, लाल, रक्तपीत होता है और नीचेका भाग लालकाला रहता है। जीभ चलाना, आहार चवर्ण आदि असम्भव हो जाता है। इसके कारण रस ग्रन्थियां भी बढ़ जाती हैं। मुख मण्डल नीलवर्ण हो जाता है। ज्वर, वेदना, मानसिक उद्वेग और बेचैनी होती है। जीभमें छाले भी आजाते हैं। जिव्हाशोथ पुराना हो जानेसे ऊपर कहे हुए उपद्रव नहीं रहते। जीभमें कुछ वेदना रहती है। इसके पश्चात श्लैष्मिक झिल्ली क्षतग्रस्त होनेसे जलन और पीड़ा होती है। आक्रान्त भाग दृढ़ हो जानेसे जीभका चलाना कठिन होता है। विशेष कर जीभ की नोकमें कष्ट अनुभव विशेष होता है।

जब जीभमें चीरे पड़ जाते हैं और छोटे छोटे पिण्डसे टुकड़े विभक्त हो जाते हैं तब डाक्टरीमें उसे ग्लोसाइटीज डिसेकैंस कहते हैं। इन विभक्त अंशोंके बीचमें आहार द्रव्य भर कर क्षत बढ़ाते हैं। इन क्षतोंमें वेदना होती है। किन्तु क्षत आराम होने पर वेदना भी जाती रहती है। इतना होने पर भी जिव्हाके जो खण्ड हो जाते हैं वे बने रहते हैं। जिव्हाकी श्लैष्मिककला विकृत होने पर पीड़ा अधिक होती है, रोग अधिक दिन चलता है, श्लैष्मिककला मोटी, कठिन और फटीसी हो जाती है। उसमें एक प्रकारका (एपिथिलियम) आवरण उत्पन्न हो जाता है। अन्य अंशमें यह आवरण नहीं रहता। ऐसी दशामें सारी जीभ पिच्छिल और श्वेत हो जाती है। रोगी कठिन चीज खा नहीं सकता तथा पान तमाखू भी नहीं खा सकता। ऐसी दशामें जीभ चलानेमें कठिनाई होती है। तरुण जिव्हा शोथ एक सप्ताहमें अच्छा हो जाता है। किन्तु रोग प्रबल होनेसे श्वासावरोध होकर मृत्यु हो सकती है। पुरातन जिव्हाशोथ प्रायः आराम नहीं हो सकता। ऐसी दशामें पहले जुलाब देकर पेट साफ करे और फिर कत्था, इलायची, शीतल चीनी, हीराबोल पीसकर मुंह और जीभमें रगड़े। अथवा त्रिफलाको जलाकर उसकी राखमें मधु मिलाकर जीभमें रगड़े। अथवा मधुको मुखमें रख कवल धारण करे, अथवा मुंहमें बर्फका टुकड़ा रखे। अथवा जीभसे रक्त निकाल कर पीपल, बरगद, गूलर, पाकर और वेतसकी छालका काढ़ा कर उसीसे कुल्ले करे।

जिव्हास्वादविकृति—कभी कभी मुँहका स्वाद बिलकुल बिगड़ जाता है और खायी हुई वस्तुका रस और आस्वाद बिलकुल मालूम नहीं पड़ता। यहां तक कि जिव्हाको पदार्थकी सर्दी गर्मीका भी ज्ञान नहीं हो पाता। संवेदनात्मक और ज्ञानतन्तुओंकी विकृतिसे ऐसा होता है। जीभमें मैल जमने और उसका असर जीभ की पेशी और नसोंमें बैठ जानेसे स्वादज्ञापक अवयव भर जाते हैं। जिससे उस अंशमें नरमी और पक्वता आ जाती है। ब्राह्मी और बच मिली दवा

मधुके साथ चाटे या सारस्वत चूर्ण जिव्हामें रगड़े। अकरकरा, मुनक्का और राई पानीमें औटाकर उसीसे कुल्ले करावे। यदि यह विकृति शीतके कारण हो तो गुलाबके फूलको औटा कर उसमें काँजी मिलावे और उसीसे कुल्ले करें। यदि स्वादज्ञापक शक्तिमें सामान्य बिगाड़ आ गया हो और स्वाद जानने की शक्ति बदल गयी हो, और किसी पदार्थका विपरीत स्वाद मालूम पड़े अथवा विना उस वस्तुको खाये उसका स्वाद मालूम पड़े तो पहला कारण हल्का है और दूसरा अधिक विकृतिसे होता है। यदि मुंहमें कड़वापन रहे तो उसका कारण पित्त, यदि मधुरता रहे तो रक्त, खट्टापन अम्ल कफको या वायुको और खारीपन विदग्ध कफके कारण होता है। दोषानुसार औषधियों के काढ़े से कुल्ले कराने और जिव्हा साफ करनेसे अवस्था सुधर जाती है।

जिव्हाजाड्य--जीभके भारी पड़ जानेसे बोलचालमें अन्तर पड़ जाता है, अच्छी तरह शब्दोंका उच्चारण नहीं हो पाता, इसके कई कारण हैं। (१) जिव्हागत दोष दूषित होकर उष्णता उत्पन्न करें और सौमभाग को सुखाकर खुश्की पैदा कर दें, जिससे जीभमें खिंचाव और ऐंठन पैदा हो, ऐसी दशामें जीभ पतली पड़ जाती और खिंच जाती है तथा तेज बुखार आ जाता है। यह व्याधि साध्य नहीं है; परन्तु रोगीका कष्ट निवारण करनेके लिये बनफशाका तेल, कद्दूका तेल, मीठे बादामका तेल, विहीदाना, खतमीके बीजके लुआबसे कुल्ला करें और जीभ पर मलें। इन दवाइयोंके साथ मुर्गी और बतखकी चर्बी भी मिलायी जा सकती है। सिरपर तरेरा देवे और गर्दन की नसें तथा कानों की जड़ पर मलें। (२) पक्षाघातके कारण जिव्हापर असर आया हो, जीभमें ढीलापन आगया हो किन्तु जिव्हागत ज्ञान-तन्तु और संवेदनात्मक तन्तुमें अन्तर न आया हो तो इसमें दोष निकालनेके लिये काली मिच, नवसादर, राई, अकरकरा और नसक पीसकर जीभ पर मलें और इन्हीं औषधियोंके काढ़ेसे कुल्ले करावे। दोनों

कानों की जड़के पास दाग देवे। (३) जीभमें मस्तिष्कगत नाड़ियोंका कार्य ढीला पड़ जाय, मुखसे लार बहे, जिव्हामें ढीलापन होनेके कारण रोगी बोल न सके। यदि दोष कम हों तो किसी तरह कुछ बोल लेवे तो पक्षाघातमें जो दवाइयां लाभदायक हों उनका उपयोग करे और उन्हींसे कुल्ले करावे (४ जीभमें गाढ़ स्निग्धता आजाय, जीभ कठिनता से हिल सके, जीभ छोटी और मोटी हो जाय; किन्तु यदि रोगोत्पादक दोष विपरीत दिशामें हों तो जीभ बढ़ कर लम्बी हो जाय तो मस्तिष्क शोधक औषधियोंके द्वारा दोष निकाले कुल्ले करावे, सोयेके तेल और बाबूनेके तेलसे कुल्ले करे। इससे जिव्हास्थानमें गर्मी आवेगी। सिरके पिछले भाग पर गरम पानीका तरेरा दे, यहीं से जिव्हागति देने वाली सिरा चलती है, अतएव उसमें नर्मी आवेगी। आलूबुखारे की गुठलीका तेल जीभ पर मले और मुखमें रखें जिससे दोष पतले होकर निकल जावें। (५) सन्निपात या मस्तिष्क शोथके कारण कभी कभी जीभ मोटी पड़ जाती है। यदि रोग ताजा और नया हो तो लार और क्लेद निकालने वाली वस्तुएं जीभ पर मले अथवा नमक, इन्द्रायण और नवसादर पीसकर जीभ पर मले। (६) यदि जीभके नीचेकी सीवन या बन्धन छोटा हो, चाहे स्वभावतः जन्मसे हो चाहे घाव होनेके कारण बन्धन छोटा पड़ गया हो अथवा बन्धन जीभके किनारे लगा हुआ हो अथवा जीभका सिरा खाली हो किन्तु अच्छी तरह फैल न सकता हो और जीभ उलटाते न बनता हो तथा मुंहसे बाहर न निकल सकती हो, ठीक बात न की जा सकती हो तो जीभके बन्धनको थोड़ी चौड़ाईमें जीभके किनारे नश्तर देकर काट दे। यह सावधानी रहे कि अधिक न कटे अन्यथा खून अधिक जानेसे हानि होने की सम्भावना है। बन्धन इतना ही कटे कि जीभ उलटायी जा सके और बाहर निकाली जा सके। काटनेके बाद खून बन्द करनेके लिये फिटकरी पीस कर दबा दे। (७) कभी कभी कड़ी सूजनके कारण जीभ भारी पड़ जाय और घाव होकर गांठ पड़ जाय तो गांठ नरम करनेके लिये खतमीका लुआब कोई तेल या चर्वी

लगावे (८) कभी कभी चोट लगने या धमाकेसे जीभको हिलाने वाली सिरके पिछले भाग की नस टूट जाती है, इससे जीभ भारी पड़ जाती है। किन्तु वह नस जुड़ नहीं सकती। अतएव इस व्याधिका उपाय नहीं है।

जिव्हावृद्धि--कभी कभी जीभ इतनी बढ़ जाती है कि मुखमें नहीं समा सकती, अतएव मुखके बाहर निकल आती है। यूनानीमें इसे 'अदलाउललिसान' कहते हैं। क्लेद की वृद्धिसे ऊपर की तरी जीभ की ओर आ गिरती है और जीभके अवयवोंमें वह समा जाती है। यदि इसमें रक्तकी वृद्धि मालूम पड़े तो शिरा मोक्षण कर उसे कम करे और फिर क्लेद बहाने वाली और लार निकालने वाली वस्तुएं जिव्हा पर मले। खट्टादही, नीबू और खट्टा अनारका उपयोग करें। अथवा नमक, सिरका और सोंठ अथवा नौसादर और सिरका अथवा फाड़े हुए दूधके पानीमें नवसादर मिलाकर जीभमें मलें। अथवा मट्ठे को पकाकर उसमें नमक मिला धूपमें रख सुखा लें फिर उसीको मलें।

जिव्हाशैथिल्य—कभी कभी जीभ भारी होने पर ढीली हो जाती है और उसे सुविधाके साथ उलटाया पलटाया नहीं जा सकता। इसके लिये राई और शहद मिलाकर मुखमें कवल धारण करे। कभी कभी जीभके नीचे की नससे रक्तमोक्षण कराना आवश्यक होता है।

जीभका फटना—यदि दिमागमें खुश्की बढ़ जाय और वह खुश्की नसोंके द्वारा जिव्हा तक पहुंच जाय तो उससे जीभ फट जाती है। जीभ नरम, सछिद्र और लचीली है; अतएव यह खुश्की सहन नहीं कर सकती और फट जाती है। इसका कारण प्रधानतः वायु है। ऐसी दशामें भोजन करना भी कठिन होता है। विशेष कर खट्टी और नमकीन वस्तुएं सहन नहीं होतीं। इसके पहिले निद्राकी कमी होती है और मस्तिष्कमें खुश्की और उष्णता रहती है। इसमें थोड़ी चीनी मिला

कर इसबगोल मुखमें रखें, जौका पानी पीवें, खीरेका झाग और बनफशाके तेलमें मोम मिलाकर जीभपर मलें। नमकीन, खट्टी और तीक्ष्ण वस्तुओंसे परहेज रखें। मस्तिष्कको तर रखें। जब विदग्ध दोष आमाशयमें इकठ्ठा हों और उनकी ऊष्मासे भाफकेसे परमाणु ऊपर उठ कर जिव्हाको दूषित करें तब भी जीभ फट जाती है। ऐसी दशामें डकारमें धुआंसा मालूम पड़ता है, मुखका स्वाद दोष विकृति के अनुसार वातमें कषैला फीका, पित्तमें कटु और कफमें गुलचट मधुर या खारा रहता है। कभी कभी वमन भी हो जाता है। ऐसी दशामें दोष निकालनेका प्रयत्न करें और लसोढ़ा मुखमें रखें।

जिव्हाशुष्कता—वातपित्तके विकारसे यदि गर्मी और खुश्की हो, जीभ पीली और खरखरी हो, वात-पित्तके लक्षण विद्यमान हों और जीभ सूखी रहे अथवा ज्वरके कारण जीभ सूखी हो तो बिहीदानेका लुआब और नीलकुमुदनीका स्वरस चीनी मिलाकर मले और इसका मुखमें कवल धारण करे अथवा लौकीके बीजको पीस पानी मिला चासनी बना ले और जीभमें मले। अथवा खीरा या ककड़ी या तरबूजके पानीसे कुल्ले करे। यदि चेपदार और क्लेद युक्त दोष जीभ के ऊपरी भाग पर आकर जम जायँ और उष्णताके कारण जम कर सूख जायँ, मुंहसे चेपदार लुआब निकले तो खरबूजेके पानीमें चीनी मिलाकर जीभपर रगड़े।

जीभकी जलन—कभी कभी आमाशयकी उष्णताके कारण जिव्हामें उष्णता पहुँचती और उसमें जलन होने लगती है। कभी कभी मस्तिष्क की उष्णताका असर जिव्हा पर पड़ता और उसमें जलन होने लगती है। कभी कभी कटु-तिक्त, उष्ण और क्षार वस्तुओं के सेवनसे भी जीभमें जलन होती है अथवा पित्तविकृति और उष्णताके कारण भी जलन होती है। इसके लिये हरी धनियां, इसबगोल और बिहीदानेके लुआबका कवल धारण करें। अथवा ककरीके बीज, खीरेके बीज, बादामकी गिरी, खरबूजेके बीजकी गिरी,

लौकीके बीजकी गिरी पीसकर जीभपर रगड़े। उष्णता मिटानेके लिये पित्तनाशक क्वाथ पीवे और ऐसे ही क्वाथसे कुल्ले करे। आमाशयके मुखकी गर्मी दूर करनेके लिये चन्दन, खस, कमलगट्टा, इलायची, शीतल चीनी, गुलाबके फूल, कासनी पीसकर शर्बत बना कर पीवे।

जिव्हाकण्डू—मस्तिष्कमें विदग्धदोष इकट्ठा होनेसे जलन हो और उसका असर जीभमें पड़े अथवा आमाशय अथवा शारीरिक दोष जिव्हामें आश्रित हों और जीभ लाल हो जाय तो जीभमें खुजली उत्पन्न होती है, जिससे मनुष्य जीभको दांतोंसे टकटोरकर सहलाता रहता है। ऐसी दशामें गर्म पानीसे कुल्ले करनेमें आराम मालूम होता है। इसके लिये उचित है कि जहांसे दोषोंका उत्थान हो वहाँसे उन्हें निकालनेका प्रयत्न करे। फिर गरम पानीसे गरारे करे, जिससे जीभमें नरमी आवे और दोष पतले पड़कर निकलने लगें। इसके बाद दूधमें चीनी मिलाकर कुल्ले करे फिर गुलरोगनमें सिरका मिला-कर कुल्ला करे। इससे जलन बन्द होगी और जीभमें सर्दी पहुँचेगी। यदि पीली हर्र चबाता रहे अथवा पीसकर जीभपर मलता रहे तो जिव्हा स्थित दोष और क्लेद जल्दी निकलते हैं।

जीभकी खाल उतरना—जीभ, तालू और मसूड़ों पर जो ऊपरी चमड़ा होता है उसपर उष्ण-तीक्ष्ण और तोदकारी वाष्पके परमाणु का असर होनेसे इन स्थानोंको आवरण करनेवाली झिल्ली जलकर सूख जाती है और वहांकी तरी नष्ट होजाती है। इससे ऊपरी चमड़ा निकलने लगता है। यदि कपड़ेसे जीभ पोंछें तो प्याजके छिलकेके समान बाहरी चमड़ा निकल आता है। कुछ वेदना भी होती है। इसमें रक्तमोक्षण कराना और हर्रका काढ़ा पिलाना लाभ-दायक होता है। अथवा अनारके फूल और गुलाब की पत्ती औटाकर सिरका मिला उसी पानीसे कुल्ला करें। मुखको मुलायम करने वाली ग्राही वस्तुएं ग्रहण करना हित है।

जिव्हास्तम्भ शब्दोंको वहन करनेवाली सिराओंमें स्थित प्रकुपित वात जब जिव्हाको स्तम्भ कर देता-जकड़ लेता है तब उसे जिव्हास्तम्भ कहते हैं। जिव्हा जकड़ जानेसे रोगी मनुष्य भोजन करने, कुछ पीने और बोलनेमें असमर्थ होता है ; क्योंकि जिव्हाको हिलाना डुलाना कठिन होता है। इसमें वातव्याधिकी ही चिकित्सा करनी चाहिये। अर्दित रोग की सामान्य चिकित्सा भी हितकर होती है। इसके पहले जिव्हाजाड्यका वर्णन हो चुका है, यह उससे बढ़ी हुई अवस्था है।

गद्गद-मिनमिन और मूकत्व—विकृत वायु कफको अनुगामी बनाकर शब्दवाहिनी धमनियोंको आवृत कर मनुष्यकी वाक्शक्तिको कम कर देता है। ऐसा मनुष्य जब पद और व्यञ्जनोंका ठीक उच्चारण नहीं कर पाता, बोलते समय हँकलाता है तब उसे गद्गद रोग कहते हैं। जब मनुष्य नाकके बल मिनमिना कर बोलता है और उसके शब्दोच्चारणमें सानुनासिक उच्चारण विशेष होता है तब उसे मिनमिनत्व कहते हैं। जब वायु की प्रबलतासे शब्दोच्चारण नहीं हो पाता तब उसे मूकत्व या गूंगापन कहते हैं। इन तीनोंकी दोष विकृति और स्थान संश्रय समान होता है ; किन्तु दोषोंकी न्यूनाधिकता वश रोग भेद होता है।

सारस्वतघृतके—सेवनसे जिव्हाजाड्यत्व, गदगदत्व और मूकता नष्ट होती है। स्मरणशक्ति, मेधाशक्ति और प्रतिभा बढ़ जाती है। सहजन, वच, सेंधानमक, धौके फूल, पठानीलोध, और पाढ़ी सबको एकएक छटांक लेकर कल्क बनावे। एक सेर घी कड़ाहीमें डाल उसमें चार सेर बकरीका दूध और कल्क की दवा छोड़ घृत सिद्ध करे और, फिर इस घीको एक एक तोला दोनों समय लिया करे।

कल्याण अवलेह--इसके सेवनसे भी सुनी हुई बात स्मरण रखने की शक्ति बढ़ती है। मेधाशक्ति स्फुरित होती है। जिव्हासञ्चालनकी

शक्ति इतनी तीव्र हो जाती है कि गद्‌गदत्व, मिनमिनत्व और साधारण मूकत्व भी नष्ट होता है। हल्दी, वच, कूट, पिप्पली, सोंठ, जीरा, अजमोदा, मुलेठी, और सेंधानमक समान भाग लेकर कपड़छान कर चूर्ण करे। तीन माशे चूर्ण दो तोले घीके साथ नित्य २१ दिन तक दोनों समय चाटे।

वच, अक्करकरा, कुलींजन, मुलेठी, ब्राह्मी, पीपल और सेंधानमक समान भाग लेकर मधुके साथ नित्य दोनों समय जीभमें रगड़े, इससे भी गद्‌गदत्व, मिनमिनत्व और मूकत्वमें लाभ पहुँचता है।

प्रलाप--प्रकुपित वायु मस्तिष्कसे मुखकी ओर आनेवाली वातवाहिनियोंको दूषित कर देता है। इससे उसके मस्तिष्कमें भ्रमात्मकभावना उदय होती और वह मुखसे असम्बद्ध और निरथक भाषण करने लगता है, उसे प्रलाप कहते हैं। तगर, पित्तपापड़ा, अमिलतासकागूदा, नागरमोथा, कुटकी, खस, असगन्ध, ब्राह्मी, मुनक्का, चन्दन, शंखपुष्पी, बेलकी छाल, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, खम्भार, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी भटकटैया की जड़, बड़ी भटकटैया की जड़ और गोखरू सब समान भाग लेकर कूट ले। एक बारमें सब दवा २ तोले, जल आधासेर डाल मिट्टीके वर्तनमें पकावें, जब आधपाव रहे तब उतार छान कर पिलादे, इससे प्रलाप शीघ्र नष्ट होता है।

रसाज्ञान--जिव्हामें मस्तिष्कसे जो ज्ञानवाहिनी और संवेदनात्मक नाड़ियां आकर मिलती हैं, वे जब विकृत वात-कफसे दूषित और मूर्छित हो जाती हैं, तब जिव्हामें मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषाय रसोंका आस्वाद लेकर समझनेकी शक्ति नहीं रह जाती, उसे रसाज्ञान या रसबोधकी अज्ञानता कहते हैं। जिव्हा स्वाद विकृतिका पहले वर्णन हो चुका है, उससे अधिक बढ़ी हुई अवस्था रसाज्ञानता है। सेंधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल और अम्लवेतको समान भाग लेकर इसीसे जीभको रगड़े। इससे लारके द्वारा विकृति दोष निकल जावेगा और रसबोधज्ञान जागृत हो जावेगा। अथवा **किरततिक्तादि** कल्क

का उपयोग करे। चिरायता, कुटकी, इन्द्रजव, वच, ब्राह्मी, पलाश बीज, सज्जीखार, स्याहजीरा, पिप्पली, पिपरामूर, चीता, सोंठ, मिर्च और पीपल समान भाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको अदरखके रसमें सान कल्क बना ले। इस किराततिक्तादि कल्कको वारम्बार जीभमें घिसे, इससे जिव्हागत दोष शान्त होंगे और उसका रसज्ञान उद्भूत होगा। यह कल्क जिव्हाकी शून्यताको नष्ट कर देता है।

अरोचक—यद्यपि अरोचक रोग की उत्पत्तिका मूल सम्बन्ध साक्षात मुखसे नहीं है तथापि उस रोगके लक्षण समूह मुखमण्डलमें अधिक घटित होते हैं। इसलिये उसका भी संक्षिप्त वर्णन किये देते हैं। महर्षि चरकने भी इसका वर्णन मुखरोगके ही अन्तर्गत किया है। वातादि दोषोंके एकत्र मिलनेसे शोक, भीति, अतिशय लोभ, अतिशय अनुरक्ति आदि विकार मनमें विकृति करते हैं। इसके सिवाय मनमें घृणा उत्पन्न करने वाले आहार तथा गन्धसे भी मन में अरुचि उत्पन्न होती है। **वातजन्य अरुचिमें** दाँत सिहरते हैं, और मुँह कषैला हो जाता है। **पित्तजन्य अरुचि** में मुँह कडुवा-खट्टा, खारा और बेस्वाद हो जाता है, गन्धमें पसन्दगी नहीं रहती है। **कफजन्यअरुचि** में मुँह मीठागुलचट, लिबलिबा, भारी और शीत रहता है। पेट जकड़ा हुआ सा मालूम पड़ता है। शोक, भीति, लोभ, रागादि और अरुचिकर अन्न या गन्ध जनित **मानसिक विकृति** जन्य अरुचिमें मुंहका स्वाद तो स्वाभाविक रहता है; किन्तु भोजन की इच्छा नहीं होती। त्रिदोषज अरुचिमें मुंहका स्वाद एक प्रकारका नहीं, समयानुसार परिवर्तित होता रहता है।

अरुचिकी चिकित्सामें मुखमें कवल धारण करना, धूम्रपान, कुल्ले करना, मनकी प्रसन्नता देनेवाले अन्नपानका सेवन करना; मन प्रसन्न करने वाले कार्य, मनको समाधान पहुंचानेवाली वार्ताएं हितावह हैं। (१) वातजन्य अरुचिमें सोंचर नमक, जीरा, मिश्री, कूट,

मिर्च और विडनमक पीस कर तेल और मधुमें सानकर मुखमें रखे। पित्तजन्य अरुचिमें (२) आंवला, इलायची, पदमाख, खस, छोटी पीपर, नीलकमल और चन्दनका बुरादा पीसकर तेल और मधुमें सानकर मुखमें रखे (३) कफजन्य अरुचिमें पठानीलोध, तेजबल, हर, सोंठ-मिर्च-पीपर और जवाखार पीसकर तेल और मधुमें सान मुंहमें रखे (४) त्रिदोषजन्य अरुचिमें अनारका रस, अदरख, जीरा और मिश्री तेल और मधुके साथ मुंहमें रखे। (५) स्याह जीरा, मिर्च, सफेद जीरा, मुनक्का, कोकम या अमचुर, अनार दाना या अनार का रस, सोंचर नमक और गुड़ सबको पीसकर मधुमें सान गोली बना ले। इन गोलियोंको मुखमें रखनेसे सब प्रकारकी अरुचि नष्ट होती है (६) वातजन्य अरुचिमें वस्ति देवे। पित्तजन्य अरुचिमें विरेचन देवे। कफजन्य अरुचिमें वमन देवे। मानसिक घृणासे उत्पन्न अरुचि में हृदयको प्रियकर, अनुकूल और आनन्द दायक आहार-विहार रखे।

तालुरोग

परिचय--मुंह खोलने पर दांतोंके पीछे एक छत सी दिखाई देती है, इसे तालु कहते हैं। तालुका अगला भाग जो दांतोंके समीप लगा रहता है वह कड़ा होता है, इसे कठिन तालु कहते हैं। पिछला भाग जो ऊपर होता है, वह मुलायम होता है, उसे कोमलतालु कहते हैं। कोमल तालुके बीच एक छोटी घण्टी सी लड़की रहती है, उसे कौवा, अलिजिव्हा तथा शुण्डिका या गलशुण्डी कहते हैं। कठिन तालुका तीन चौथाई भाग दांतोंके पीछे हन्वस्थियोंके अंशोंसे बनता है और चौथाई भाग तात्वस्थियोंके अंशोंसे बनता है। इनके दो भाग ऊर्ध्वस्थ और समस्थ होते हैं और उनके मिलने की जगह पर ९० अंशका कोण बनता है। समस्थ भाग ऊपरसे कम लम्बा होता है उसका एक किनारा दूसरी ओर की अस्थिके किनारेसे मध्यरेखामें जुड़ा रहता है और अगला किनारा उच्च हन्वस्थिसे पिछले किनारेसे

कोमलतालु लगा रहता है। ऊपरके पृष्ठोंसे नाककी फर्शका पिछला भाग और नीचेकी पृष्ठसे कठिन तालुका पिछला भाग बनता है। ऊपरी भाग उच्चहन्वस्थिसे जुड़ा रहता और नासिकाकी बाहरी दीवाल बनानेमें सहायक होता है।

लालाग्रन्थि—हमारा मुख भीतरसे सरस और गीला रहता है। जीभको ओष्ठों और तालुसे स्पर्श करने पर इसका अनुभव होता है। जीभकी नोकसे, मुखके भीतरके जो अंश छुये जा सकते हैं वे सब श्लैष्मिक कलाके अस्तर द्वारा (Mucous membrane) रचित हैं। इसी प्रकार की सूक्ष्म कला द्वारा अन्ननलिकाका भीतरी अंश घिरा रहता है। जिस पदार्थके द्वारा यह सब भाग सरस रहता है उसे रस या श्लेष्मा (mucus) कहते हैं। मुख और अन्ननलिकामें लालारस उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियाँ होती हैं, उन्हें **लालाग्रन्थि** कहते हैं। ये लालग्रन्थियाँ रक्तसे लाला रसका आकर्षणकर लेती हैं। शरीरके लिये उपयोगी रस तैयार कर शरीरमें ही सञ्चारित करनेके लिये **सेचकग्रन्थि** (Secreting glands) होती हैं। इनके विरुद्ध प्रस्वेदवाही ग्रन्थि और वृक्कद्वय रेचक ग्रन्थि कही जाती हैं; क्योंकि ये रक्तके अनुपयुक्त भागको बाहर निकालनेका काम करती हैं। सेचक ग्रन्थि कुछ तो नलिका युक्त होती हैं। जो अपने रसको शरीरके विभिन्न स्थानोंमें पहुँचाती हैं और कुछ ग्रन्थियाँ नलिका विहीन होती हैं। इनके चारों ओरसे रक्त निकला करता है और रक्तमें मिल कर अपना कार्य साधन करता रहता है। नलिकाविहीन ग्रन्थियां शरीरमें जिस परिमाणसे रस पहुँचाती हैं तदनुसार मनुष्य छोटा, बड़ा, ज्ञानी, मूर्ख, कवि, शिल्पी, आरोग्य, रोगी, दुर्बल,बली, युवा अथवा वृद्ध होता है। ये विभिन्न अंगोंमें रहती हैं।

किन्तु हमें मुखके भीतरकी लालाग्रन्थियोंसे ही यहाँ प्रयोजन है। मुखमें लार और थूक लालाग्रन्थियोंसे (Salivary-glands) उत्पन्न होता है, ये भी सेचक ग्रन्थि हैं। यह लार

मुखको स्निग्ध और सरस रखनेके अतिरिक्त भोजनके श्वेतसारीय भागका परिपाक करनेमें सहायता पहुँचाती है। ये लालाग्रन्थियां मुखमें छः हैं। दो बड़ी लाला ग्रन्थियां कानके नीचे अधोहन्व-स्थिके पीछे हैं। इन्हें कर्णमूल लालाग्रन्थि (Paratid) कहते हैं। इनकी दो नलियां दोनों गण्डदेशमें भीतरसे ऊपरी चर्वणादन्तके पास मुखविवरमें आकर मिलती हैं। पढ़ते या बोलते समय इन्हीं दोनों ग्रन्थियोंसे लार निकलकर मुखको गीला करती रहती है। कर्णमूल और मम्पसरोगमें ये लालाग्रन्थियां शोथ और प्रदाह युक्त हो जाती हैं और ये बढ़कर कानके नीचे और आसपास फूल जाती हैं। इनके बाद हनुभागके नीचे प्रायः एक इञ्च लम्बी दो **अधोहनुलाला**—ग्रन्थि (Sub-maxillary) हैं। इनकी लाला निस्सारक नलिका जीभके नीचे रहती हैं। तीसरी श्रेणीकी अधोजिव्हा लालाग्रन्थि (Sub-ligual) जिव्हाके नीचे रहतीहैं और जीभको ऊपर उल्टा कर देखनेसे जीभकी जड़के पास लाल लाल दोनों ओर दिखलाई पड़ती हैं। इनसे लालास्राव और लालासेचन कार्य नाड़ी (Nerves) द्वारा परिचालित होता है। कोई अघटित घटना या शोक संवाद सुनने पर मुँह सूख जाता, जीभ सूखकर जकड़ सी जाती है, उसका कारण यही है कि नाड़ीमण्डल क्षुब्ध होनेसे रक्त-धारा संकुचित हो जाती और इनका कार्य रुक जाता है। किन्तु कोई सुस्वादु और अम्ल वस्तु खानेसे अधिक लार निकलने लगती है। यहां तक कि ऐसी वस्तुएं देखते ही नाड़ी क्रियाशील हो जातीं, ऐसी ग्रन्थियोंमें रक्त धारा प्रवाहित होने लगती और लालारस बनने और निकलने लगता है।

वैज्ञानिकोंका कथन है कि यह लार क्षारयुक्त है और टायलिन नामक दाहक किन्व पदार्थ युक्त है। इसीसे आहार द्रव्य मुखमें क्षारयुक्त होनेसे पाकस्थलीमें जाकर पच जाता है। शरीरमें आवश्यक उष्णता रहनेसे लाला निस्सरणका काम ठीकसे होता रहता है। किन्तु शरीर ठण्डा होने पर इनकी क्रियामें अन्तर पड़ जाता है।

लवणयुक्त आहारसे टायलिनका काम विशेष होता; किन्तु अम्लरससे इसके काममें रुकावट पड़ती है। मैदायुक्त श्वेतसारीय (कार्बोहाइड्रेट आहार पचानेमें यह टायलिन विशेष सहायक होता है। सेम, अखरोट, मकाई, मटर, दाल, आलू, चावल, चीनी, गेहूँ जैसे श्वेतसारीय पदार्थोंसे शरीरमें उत्ताप, तेज और स्निग्धता बढ़ती है, अतएव लार बननेका काम भी ठीकसे होता रहता है। जिससे शरीरमें कार्यकरी शक्तिकी पूर्ति होती रहती है। कच्चे श्वेतसारीय द्रव्योंमें टायलिनका कार्य अच्छी तरह नहीं होता। इसीसे ऐसे पदार्थ पकाकर खाये जाते हैं। इस लारके द्वारा खाद्य द्रव्य चिकना और गीला होकर गलेके नीचे सुगमतासे जाता है और श्वेतसार पदार्थोंमें जो शर्कराके समान मधुरांश (Maltose) रहता है वह बनता है। श्वेतसारीय पदार्थ पहले अद्रवनीय रहते हैं किन्तु लालामिश्रित होनेसे शर्करारूप में परिणत होते हैं। चावल या अखरोट या मकाई मुखमें रख थोड़ी देर तक चबाते रहनेसे उनमें द्रवता आ जाती, उनका स्वाद बढ़ जाता और उनमें मधुरता आजाती है। इसीसे सिद्ध है कि भोजनको खूब चबाते रहकर उसमें लालाक्रिया होने देना चाहिये। ऐसा न करनेसे ऐसे द्रव्य पाकाशयमें भी अच्छी तरह नहीं पचते और मधुरांश पाखानेके साथ बाहर निकल जाता है। यही नहीं पेटमें दर्द, अम्लपित्त, अजीर्ण, उदर विकार आदि होते हैं। जबड़ोंके हिलाने और मुखमें खाद्य द्रव्य पहुँचनेसे लार निकलनेकी क्रिया सम्पन होती है। लालोत्पादक ग्रन्थियोंके चारों ओर जो रक्तवाहिनी की जाली आकर मिलती हैं उन्हींसे ये ग्रन्थियां अपने लिये उपयोगी मुखरस या लार निकालती रहती हैं। इस मुखरसमें एक हजार भाग में ९८८ अंश जलका रहता है। इस रसमें घन भाग अन्दाजसे १० या १२ अंश रहता है। टायलिनकी क्रियामें अपनेसे दो हजार गुणा वजनके पदार्थ पर शर्करा निर्माणकी शक्ति है। जिव्हाकी आस्वाद-शक्ति इस मुखरसके द्वारा बढ़ती है। अन्दाज है कि यह मुखरस या लार प्रति दिन एक मनुष्यमें डेढ़ सेरसे ३ सेर तक उत्पन्न

होती है। इसका कम अधिक बनना आहार द्रव्यके गुणों पर भी अवलम्बित रहता है।

निदान और चिकित्सा--आयुर्वेदमें तालुगत ९ रोग माने गये हैं। (१) गलशुण्डी (२) तुण्डिकेरी (३) अध्रुष या अध्रूष (४) मांसकच्छप (५) तालु अर्बुद (६) मांससंघात (७) तालपुप्पुट (८) तालुशोष और (९) तालुपाक।

गलशुण्डी--कफ और रक्तके प्रकोपसे तालुमूलमें शोथ उत्पन्न होता है और क्रमशः बढ़ता हुआ वायुसे भरी हुई चमड़ेकी थैलीकी तरह हो जाता है। प्यास अधिक लगती है, खांसी और श्वासकी पीड़ा होती है। इसे गलशुण्डी कहते हैं। यह गलेमें मछलीकी वस्ति के समान लटकी रहती है। कोमल, लम्बी, पिच्छिल सूजन होती है। आहारका कौर ठीकसे अन्ननलिकामें नहीं जा सकता और कभी कभी नाकमें चढ़ जाता है। गला बैठा सा रहता है। किसी किसीको वान्ति भी होती है। एलोपैथीमें इसे इलांगेटेड युवुला (Elongated uvula) कहते हैं। इसमें जो खांसी आती है वह लेटनेपर और रात में अधिक आती है। क्योंकि लेटने पर गलशुण्डिकाका स्पर्श गलेके पिछले भागपर होता है, जिससे सुरसुरी लगकर खांसी आती है। (१) गलशुण्डीमें कूट, सोंठ, मिर्च, पीपर, बच, सेंधानमक, पाढ़ी और केवटीमोथाका चूर्णकर शहदमें मिलाकर गलशुण्डी पर मले। (२) अथवा जीभको दबाकर गलशुण्डीको अंगूठे तथा तर्जनी अंगुली से चिमटी की तरह पकड़ खींचे और मंडलाग्रशस्त्र (छः अंगुलका शस्त्र जिसके छठे भागमें मण्डलाकार अंगूठेके नखके भीतरी भागके समान छुरेकी तरह धार होती है) से छेदन करदे। यह अधिक न कटने पावे, नहीं तो अधिक रक्तस्राव होनेसे प्राणहानि होनेका सन्देह रहता है। इसी तरह कम करनेसे शोथ, लालास्राव और भ्रम उपस्थित होता है। अतएव कुशलता पूर्वक शस्त्र क्रिया करनी चाहिये। शस्त्र-क्रिया करनेके पश्चात् पीपल, अतीस, कूट, बच, मिर्च, सोंठ और

सेंधा नमक पीस कर मधुमें सान गलशुण्डीकी जगह पर प्रतिसारण करे। इसके सिवाय वच, अतीस, पाढ़ी, रासना, कुटकी और नीमकी छालका काढ़ा कर इसीका कवल धारण करे। (३) यदि तालु शोथ हो और यदि रक्तदोष अधिक हो तो उष्णता, तेजी और लाली रहती है, यदि कफ दोष अधिक हो तो गर्मी रहती है। दर्द नहीं रहता, शोथका रंग सफेद रहता है। यूनानीवाले इसमें फस्द खोलने की सलाह देते हैं और हर्र तथा पितापापड़ेका काढ़ा पिलाकर तबियतको नरम बनाते हैं। क्लेद और दोष हटानेके लिये अधीरा, गुलाबके फूल, अनारके फूल, मकोयकी जड़ सिरके सें औटा कर कुल्ले कराते हैं। इसके सिवाय वंशलोचन, गुलावके फूल, खुरफाके वीज, निशास्ता, कतीरा, समग अरवी और मसूरका आटा तथा कपूर मिलाकर चूर्ण करे और तालू पर दवा दे। इसके बाद बाबूना, बनफशा, और कनूचेके काढ़ेमें अमिलतासका गूदा मिलाकर कुल्ले करावे, जिससे शेष दोष भी निकल जावें। कफाधिक्य शोथमें माई और अकरकरा कांजीमें मिलाकर कुल्ले करावे, जिससे पुष्टता प्राप्त होगी और दोष निकल जावेंगे। (४) सेंहुड़का दूध लगानेसे गलशुण्डी दब कर अपनी उचित अवस्थामें आ जाती है। (५) कफनाशक पदार्थोंके काढ़ेमें मूंग पकाकर उसीके रसमें जवाखार डालकर पीवे।

तुण्डिकेरी--कण्ठमें हनुसन्धिके आश्रित स्थानमें वनकपासके फलके समान जो पिच्छिल, कमवेदनायुक्त और कठिन शोथ होता है उसे तुण्डिकेरी कहते हैं। इसमें कफ और रक्त दूषित होते हैं। इसमें सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, जलन और पाक होता है। सूजनमें अधिक जगह घिर जाती है। डाक्टरी में बढ़े हुए टांसिल (Enlarged Tonsils) के लक्षण इससे मिलते हैं। इसी तरह डाक्टरीमें जिसे (Sore throat-tonsillitis) कहते हैं वह भी इसीके अन्तर्गत भेदमें समझना चाहिये। अजीर्ण, बद्ध कोष्ठ और सर्दीसे गलेमें लाली आ जाती और गलशुण्डीमें शोथ हो जाता है, कुछ ज्वर भी

आजाता है. जबड़ेके पिछले भागमें गांठ सी पड़ जाती है। गलेमें चिकना थूक आता है; और वह निकलता नहीं है। इससे मालूम पड़ता है कि मानो गलेमें कुछ भरा हुआ है। आहार या पानी गले के नीचे उतारनेमें दर्द होता है। कभी तुण्डिकेरी पक कर फूट जाती है। इसमें गरम पानीसे सेंक पहुँचाना, ऊपर अलसीकी पुल्टिश बांधना और गरम पानीमें फिटकरी डालकर बारम्बार कुल्ले करना हितकारी है। दोष निकालनेके लिये एक जुलाब ले लेना अच्छा होता है। यदि गलेमें भी शोथके कारण बाहर गांठ आजाय तो उस पर दशांग लेप (शोशम, मुलेठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, कूट और सुगन्धवाला दशों औषधियोंको समभाग लेकर चूर्ण करे और पंचमांश घीमें घोट कर पानीमें घोल कर लेप करे। यह लेप विसर्प, विषदोष, विस्फोटक, शोथ और दुष्ट व्रणके लिये लाभदायक कहा गया है) अथवा बेलाडोनाका लेप लगावे। डाक्टर लोग फिटकरीके अतिरिक्त सलफेट आफजिंकके भी कुल्ले कराते हैं। शस्त्रक्रिया द्वारा इसका भेदन करना भी हितकर होता है।

टानसिल—यद्यपि तुण्डकेरी ही टानसिल रोगका द्योतक है, तथापि उसका अलग वर्णन कर देना अच्छा होगा। कण्ठनलीमें घण्टीके अगल बगल जो दो गांठें हैं उन्हींमें शोथ होकर टानसिल रोग होता है। यह दो प्रकारका है। एक एक्यूट टानसिलाइटिस अर्थात तरुण टानसिल या कुइसी और दूसरा क्रानिक टानसिलाइटिज अर्थात जीर्ण टानसिल रोग। टानसिल रोगाक्रान्त होते ही अत्यन्त वेदना होती, कोई वस्तु गलेसे नीचे निगलनेमें बहुत कष्ट होता है, साधारणत: ज्वर बना रहता है। कण्ठनलीके दोनों ओरकी ग्रन्थियां लाल हो जाती हैं, उनमें शोथ होता, एक प्रकारका रस निकलता, किन्तु प्रारम्भमें क्षत नहीं होता; कुछ दिनोंमें उसमें मवाद आ सकता है। पुराना होजाने पर उसे चीर कर मवाद निकाल चिकित्सा करनी

पड़ती है और उपयुक्त चिकित्सासे रोगी आराम हो जाता है।

इसमें आवश्यक नहीं कि दोनों ग्रन्थियोंमें शोथ हो, एकमें भी हो सकता है। शरीरमें सर्दी लगने, जुखाम, कफज कास आदि कारणों से यह उत्पन्न होता है। एक बार होनेके बाद बारम्बार इसका आक्रमण हो सकता है। इसके होने पर ठण्डक मालूम होती, कपकपी होती, बेचैनी, ज्वर और श्वासमें दुर्गन्धि रहती है। गलेमें दर्द हो और वह दर्द कानों तक पहुंचे, गला दबाकर बोलनेमें भी कष्ट हो। कण्ठ स्वर बदल जाता है, गलग्रन्थि बढ़ जाती हैं, गर्दन घुमाने फिरानेमें कष्ट हो, मुखमें लार बहुत संचित हो। कभी कभी ज्वर १०२ डिग्रीसे १०५ तक हो जाता है। ऐसी दशामें श्वासावरोधसे मृत्यु होनेका भी भय रहता है। इसी समय गांठोंके फट जाने और विकार बह जानेसे रोगीको कुछ शान्ति मालूम होती है। आराम हो जानेपर भी रोगी कुछ दिनों तक कमजोरीका अनुभव करता है। दोनों टानसिल बढ़ जानेसे श्वासावरोध जन्य कष्ट होता है। ऐसी दशामें किसी किसीको प्रलाप भी होता है, तालु ग्रन्थि देखनेसे बढ़ी हुई और सफेद दानोंके चत्तसे भरी हुई तथा फैली हुई मालूम पड़ती है। तीनसे सात दिनों तकमें या तो मवाद आजाता है या बढ़ी हुई गांठ कम होने लगती है। यह प्रायः तरुण लोगोंको अधिक होता हैं, बच्चोंको होने पर श्वासावरोधका भय अधिक रहता है। ऐसी दशामें पोषणाभावसे मृत्युका भय रहता है।

इसकी चिकित्सा करनेके पहिले कोष्ठ परिष्कार करनेके लिये विरेचन देना आवश्यक है। ज्वरके लिये त्रिभुवनकीर्ति अथवा सर्वज्वर हर लौह देवे। डाक्टर लोग इसमें टिंकचर आफ एकोनाइट देते हैं और टिंकचर आफ एकोनाइट ग्लिसरीनमें मिला कर ग्रन्थियोंमें लगाते हैं। सेलीसिलेट आफ सोडियमसे अधिक उपकार होता है। मुहमें बरफ रखनेसे आराम होता है। गलेके ऊपरी भागमें गाँठोंके ऊपर सेंक देवे और पुल्टिश भी बाँध सकते हैं। बकरीका खोवा आमाहल्दी और सेंधानमक सेकने और पुल्टिशके काममें लाना

चाहिये। घीकुआरका पट्ठा एक ओर छीलकर दूसरी ओर छिला रहने दे, छिले भागमें हल्दी, आमाहल्दी और नमक डाल गरम कर बाँधे। गरम पानीमें फिटकिरी डाल कुल्ले करावे। संकोचक द्रव्योंके क्वाथ द्वारा वाष्प स्वेदनसे भी लाभ होता है। आवश्यक होने पर तेज चाकूसे ५ छः स्थानों काट दे। खानेके लिये तरल और पुष्टिकारक द्रव्य देवे। ऐसा उपाय करे कि पसीना आवे, पेशाब खूब हो और पायखाना साफ होता रहे।

बच्चोंका टॉनसिल विकार जब पुराना हा जाता है तब कमजोरी पाकर वह बीच बीचमें उभड़ता रहता है, वही जीर्ण या पुराना टानसिल है। तालुग्रन्थि बढ़ जाती हैं, कण्ठस्वर बदल जाता है, कोई चीज निगलनेमें कष्ट होता है, सांस लेने और छोड़नेमें शब्द होता है। बारम्बार सर्दी और जुखाम होता है। कभी कभी बहरापन भी हो जाता है। ऐसी दशामें रोग सहज ही अच्छा नहीं होता। ऐसी दशामें बलकारक खुराक और औषिधियां देते रहना चाहिये। लगाने की औषधि संकोचक गुणवाली हों। औषधिसे आराम न हो तो अस्त्र प्रयोग द्वारा गांठ कटवा देनी चाहिये।

अध्रुष--कठिन तालुमें जो लाल रङ्गका रक्तजन्य शोथ होता है और जिसमें ज्वर तथा तीव्र पीड़ा होती है, उसे अध्रुष या अध्रूष कहते हैं। इसका शोथ भी कठिन होता है। किन्तु यह शोथ अधिक घेरेमें नहीं होता। गलशुण्डीके समान इसमें भी उपचार करे और शस्त्रकर्म द्वारा दोष निकाल कर गलशुण्डीके समान पश्चात्कर्म करे।

मांस कच्छप--कफ दूषित होनेके कारण कछुवे की तरह बीचमें ऊंचे और किनारों पर ढलुवे शोथको कच्छप कहते हैं। इसकी वृद्धि धीरे धीरे होती है। इसमें वेदना नहीं होती। डाक्टरीमें तालुके सारकोमा (carcoma) से तथा तालुके कैंसरसे इसका मिलान किया जा सकता है। इसे भी शस्त्रक्रिया द्वारा भेदन कर दोष निकाल दे और गलशुण्डीके समान पश्चात्कर्म करे। मिर्च, अतीस, पाढ़ी,

बच, कूट और श्योनाकका चूर्ण कर जवाखार और सेंधानमक मिला-कर रगड़े। अथवा इंगुदी (हिंगोंट), किणही या कटभी, दन्ती, निशोथ और देवदारुका चूर्णकर इसमें वालछड़ और चन्दन मिला बत्ती बनावे और इसीका दिनमें दो तीन बार धूम्रपान करे इससे कफ की शान्ति होगी और शोथ घटेगा।

तालवर्बुद--रक्तप्रकोपके कारण तालुके बीचोबीच जो रक्तार्बुद फुंसी फोड़े की तरह कमलाकार शोथ होता है उसे अर्बुद या तालवर्बुद कहते हैं। इसका रंग लाल होता है। कमलाकार कहनेसे कमलपुष्प के बीच जो कर्णिका होती है, उसीके समान समझना चाहिये। जैसे पद्मकर्णिकामें चारों ओर केसरके छोर निकले रहते हैं, उसी तरह इस अर्बुदमें भी चारों ओर मांसांकुर उठे रहते हैं। रक्तदोष प्रायः पित्त प्रकोपसे होता है। अतएव पित्तजन्य दाहादि भी इसमें होते हैं। यह प्रायः असाध्य होता है। अतएव इसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। तथापि गलशुण्डीमें लिखे उपचारोंसे कष्टकी कमी हो सकती है। पीपर, मिर्च, कुलींजन और इन्द्रजव चबाकर लार गिरानेसे कष्ट कम होता है। अथवा पञ्चवल्कल (वरगद—पीपल—गूलर—पाकर और वेतस की छाल) का काढ़ाकर कुल्ले करे। त्रिफला के काढ़े अथवा अमिलतासके वृक्षकी छालके काढ़ेसे भी कुल्ले करनेसे लाभ होता है। जवकी रोटी या दलिया देना पथ्य है। यदि अर्बुद नया हो और बढ़ा न हो तो उसे काट कर जवाखार और सोंठका चूर्ण मधुमें मिलाकर रगड़े।

मांस संघात--कफकी अधिकता और कफप्रकोपसे तालुके बीचो बीच मांसका भाग जमकर उठ आता है, उसे मांससंघात या तालु-संहति कहते हैं। इसमें वेदना नहीं होती। एलौपैथीके 'एडीनोमा आफ-दी पैलेट (Adenoma of the palate रोगके लक्षणोंसे इसकी समानता है। मण्डलाग्रशस्त्रसे भेदनकर दूषित मांस निकलवा कर कफनाशक द्रव्योंके क्वाथसे कुल्ले कराना हितकारी है। अथवा

साई और अकरकरा कांजीमें मिलाकर कुल्ले करावे।

तालुपुप्पुट--कफ दूषित होकर जब मेदको दूषित करता है और कफमेद युक्त बेरके फलके समान कड़ी वेदना रहित सूजन आ जाती है तब उसे तालुपुप्पुट कहते हैं। यह शोथ स्थायी होता है। इसलिये मंडलाग्रशस्त्रसे लेखन कर इसके दूषित अंशको निकाल देना चाहिये। इसके बाद गुञ्च और नीमके काढ़ेमें मधु और तेल मिला कर कुल्ले करावे। ऊपर लिखे हुए पीपल, अतीस, कूट, बच, मिर्च, सोंठ और सेंधानमकके चूर्णमें मधु मिलाकर शस्त्रकर्मकी जगह पर रगड़े।

तालुशोष--वात और पित्तके प्रकुपित हो जानेसे अथवा ताप और श्रम अधिक होनेसे तालु सूखने लगता है। श्वास रोगके कारण भी तालु शोष रहता है। तालुमें फटने की सी पीड़ा होती है। मुलेठी, इलायची और शीतलचीनी मुखमें रख कर उसका रस चूसता रहे अथवा मिश्री मुखमें रख रस चूसे। इससे तालु शोष दूर होता है। चमेली की पत्ती मुखमें रख चबाता रहे। यदि तालु शोषमें पिपासा की अधिकता न हो तो भोजनके पश्चात पिप्पली और सोंठसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे। अमिलतासके गूदे अथवा आलू-बुखारेको पानीमें घोलकर अथवा अन्य अम्ल द्रव्योंके रससे कुल्ले करे। कच्चे दूधसे निकाले हुए मक्खनको तपाकर नाकमें छोड़े। घी भात खावे अथवा खूब घी पड़े हुए द्रव्योंका जूस अथवा खूब घी पड़ा हुआ मांस रस पीनेको देवे। स्नेहन और स्वेदन करावे तथा अन्य वातनाशक उपाय करे।

तालुपाक--पित्तप्रकुपित होकर तालूमें कष्टदायक पाक उत्पन्न करता है। उसे तालुपाक कहते हैं। इससे तालूमें चोरेसे पड़ जाते हैं। यदि पित्तके साथ वायु भी विकृत हो तो श्वास विकार और तालुशोष भी होता है। इसमें फटनेकी सी पीड़ा होती रहती है। ठनका और जलन होती है और कभी कभी मवाद भी निकलता है।

इसे डाक्टरीमें अलसरेशन आफ दी पैलेट कहते हैं। इसमें पित्तनाशक क्रिया करे। यदि तालुपाक अपक्व हो तो हीराकसीस और रसवतका चूर्ण मधु मिलाकर रगड़े और शीतगुण विशिष्ट तथा कषाय एवं मधुर द्रव्योंके काढ़ेसे कुल्ले करावे। पंक जानेपर अष्टापद अर्थात + धनके चिन्हके समान मण्डलाग्र शस्त्रसे क्रियाकर तीक्ष्ण और उष्ण औषधियोंका चूर्ण रगड़े। इसके सिवाय अडूसा, नीम, परवर, चमेली, गुर्च, कनेर, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, वेत तथा भटकटैयाके काढ़ेसे कुल्ले करावे।

तालुपिटिका--ऊपर लिखे तालु रोगोंके अतिरिक्त तालुपिटिका भी प्रायः हो जाती है। वायुके प्रकोपसे तालुका मांस दूषित हो जाता है, जिससे तालूमें खरखरापन आजाता है और तालूमें बहुत सी कड़ी फुंसियां हो जाती हैं और उनमें वेदना होती है। वे बहती भी हैं। इस बीमारीको तालुपिटिका कहते हैं। इसमें जवाखार, तेजबल, पाढ़ी, रसवत, दारुहल्दी और पीपलका चूर्णकर मधुसे गोली बना मुंहमें रखे और दारुहल्दी, तज, नीमकी छाल, रसवत्त और इन्द्रजव का काढ़ा मधु डालकर पिलावे अथवा हरीतकीके काढ़ेमें मधु डालकर पिलावे।

कण्ठ (गल) रोग

परिचय--जहाँसे दांतोंके जुड़ावका अन्त होता है, तथा तालु का अन्तिम भाग भी जहां होता है और जहाँसे जिव्हा जुड़ी रहती है, वहांका भाग कण्ठ या गला कहलाता है। मुंहके इस भागमें महरावसा बना रहता है। इसके ऊपरी भागमें कोमल तालु और उससे ऊपर उसीसे ढके हुए नासिकाके पिछले छिद्र या नथने रहते हैं। नीचेके भागमें दो नलियोंके छिद्र रहते हैं। उनमेंसे जिव्हाकी जड़के पीछे **स्वरयन्त्र** का ऊपरी भाग रहता है। जिसके ऊपर एक

ढकनासा लगा रहता है। यदि जीभको खूब बाहर निकालें तो इस ढकनेका कुछ भाग दिखाई पड़ता है। इससे शब्द निष्कासन होता है, स्वरयन्त्रके पीछे अन्ननालिका होती है। इसीके द्वारा भोजनका कौर मुंहके भीतर जाता है। यह भी सछिद्र होती है। स्वरयन्त्रके ऊपरी किनारे पर ठोडीके बीचमें एक कड़ी हड्डी (हाइओयडअस्थि) होती है जो निम्न-हन्वस्थिके समस्थ भाग की तरह मुड़ी हुई रहती है। यह सामने बीचमें मोटी होती है। यह उसका अस्थिगात्र है। शेष पतले भागमें इस अस्थिसे कई मांसपेशियां लगी रहती हैं।

कण्ठरोग संख्या---कण्ठके रोग अयुर्वेदमें १८ माने गये हैं। (१) वातरोहिणी (२) पित्तजरोहिणी (३) कफजरोहिणी (४) त्रिदोषजरोहिणी (५) रक्तज रोहिणी (६) कण्ठ शालूक (७) अधिजिंव्हक (८) वलय (९)वलास (१०) एकवृन्द (११) वृन्द (१२) शतघ्नी (१३) गिलायु (१४) गलविद्रधि (१५) गलौघ (१६) स्वरघ्न (१७) मांसतान और (१८) विदारी। अर्थात।

रोहिणी पंचधाप्रोक्ता कण्ठशालूक एवच ॥
अधिजिव्हश्च वलयो वलासश्चैकवृन्दकः।
ततो वृन्दः शतघ्नीच गिलायुः कण्ठ विद्रधिः।
गलौवश्च स्वरघ्नश्च मांसतान स्तथैव च
विदारी कण्ठ देशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः॥

रोहिणी

रोहिणीकी सम्प्राप्ति--कण्ठ देशमें वायु, पित्त और कफ पृथक् पृथक् तीनों मिल कर जब कुपित होकर वृद्धिको प्राप्त होते हैं और मांस तथा रक्तको दूषितकर ऐसे मांसाङ्कुर उत्पन्न करते हैं जो कण्ठ का अवरोध कर जीवनका अपहरण तक कर लेते हैं तब इस व्याधि को कण्ठरोहिणी कहते हैं। यह पाँच प्रकार की होती है। (१) वातज-

रोहिणी (२) पित्तजरोहिणी (३) कफज रोहिणी (४) त्रिदोषज रोहिणी और (५) रक्तजरोहिणी। यों तो रोहिणी सामान्य रूपसे त्रिदोषज ही होती हैं। क्योंकि तीनों दोषोंके दूषित हुए बिना उसकी भयंकरता इतनी नहीं हो सकती जो मारक हो और मांस तथा रक्त को दूषित करदे; तथापि जिस रोहिणीमें तीनों दोष कुपित होने पर भी जिस दोषकी प्रबलता रहती है, वह रोहिणी उसी दोषके नामसे कही जाती है। पाश्चात्य चिकित्सामें इसे डिफथीरियल इन फ्लेमेशन आफ दी थ्रोट अथवा डिफथीरिया (Diphtheria) कहते हैं। इसमें विलक्षण सार्वाङ्गिक विकार होता है, रोगी दुबल हो जाता है, गले की नलीकी अवस्था विशेष रूपसे विकृत होती है। रसग्रन्थियां बढ़ जाती हैं, श्लैष्मिक झिल्लियाँ बढ़ जातीं और उनमें लालिमा और श्वेत धूसर वर्णकी कृत्रिम झिल्ली उत्पन्न हो जाती है और शोथ हो जाता है। इसमें उपद्रव स्वरूप पक्षाघात और स्नायुशूल भी हो जाता है।

डाक्टर लोग इसे उद्भिदजातीय डिफथीरिया नामक जीवाणुसे उत्पन्न बतलाते हैं। आरम्भमें यह बीमारी स्थानिक होती है; किन्तु पीड़ित स्थानके कीटाणुओंका विष शरीरमें शोषित हो गौणरूपसे सार्वाङ्गिक व्याधि हो सकती है। श्लैष्मिक झिल्लीके ऊपर जो कृत्रिम झिल्ली हो जाती है, उसीमें ये कीटाणु पाये जाते हैं। इन कीटाणुओं की खोज पहले डाक्टर क्लेबसल्यूफलरने की थी; इसीलिये इनके नामसे भी ये कहे जाते हैं। इन कीटाणुओंका प्रभाव रक्त और शारीरिक तन्तुओंमें नहीं होता। स्थानिक विषके शोषणसे ही सार्वाङ्गिक पीड़ा होती है। यह कीटाणु सरल अथवा कुछ टेढ़े दण्डाकार दोनों सिरों पर गोल होते हैं। किसी किसीका एक सिरा कुछ फैला सा रहता है।

डिफथीरियाको संक्रामक व्याधि माना जाता है। नाली नर्देकी उठी भाफसे अथवा दूषित जलपानसे शरीरमें ये कीटाणु पहुँचते है। रोगीके कफ, लार और नाकसे निकले श्लेष्माके द्वारा दूसरों

चासनीमें विहीदाना १ तोला, चुनियां गोंद १ तोला, कतीरा १। तोला खसखसके धोये हुए दाने १।। तोला महीन पीसकर मिला दे। इस चटनीसे बहुत लाभ होता है। कभी कभी सर्दीसे कण्ठ नली दूषित हो जाती है, गलेमें कड़ापन और खरखरापन मालूम हो; किन्तु कफ न निकले, प्राय: शीतऋतुमें और उत्तर पूर्वकी हवा चलने पर यह अधिक हो जाय। इसमें मिर्च, हींग, राई, केसर और गन्दा विरोजा बारीक पीसकर शहदमें गोली बना मुखमें रखे। यदि सर्दीके कारण फेफड़ेका मुंह ढीला पड़ जाय और कण्ठ नलीसे शब्द स्पष्ट न निकले तो सौसनकी जड़, सौंफ, अनीसून पानीमें औटाकर शहद मिलाकर कुल्ले करे। तथा अजमोदा, खीराके पत्ते, बोया, अनीसून, गावजबां, उन्नाव और सौंफका काढ़ा कर छानले। उसमें शर्बत बनफशा मिला घूंट घूंट पीवे। अथवा अजमोदा, सौंफ, सौसनके बीज और मुलेठीका काढ़ा कर धीरे धीरे पीवे। सौंफ या कलौंजी शहदमें मिला चाटे। अंजीरका काढ़ा भी लाभदायक होता है। यदि खुश्कीके कारण गला बैठ गया हो, कण्ठमें भारीपन मालूम हो, कण्ठगत सिराएं फट गयी हों, रोगका कारण धूल और धुआं हो तो बनफशेका ताजा तेल और इसबगोलका लुआब चीनी मिला कर पीवे। यदि अधिक चिल्लानेसे गला बैठा हो, सूजन और दर्द हो तो गरम पानीसे नहावे, दूधमें बादामका तेल और निशास्ता मिलाकर पीवे। ककरीके बीज, बादाम की गिरी, खतमी, कतीरा, विहीदाना सब को पीस इसबगोलके लुआबमें चटनी बना चाटा करे मैदे की सेवई खावे।

शब्दमन्दत्व—ठीक निद्रा न आने, थकावट, अधिक विरेचन लेने, अधिक मैथुन, कण्ठ नलीमें शीत लगने आदि कारणोंसे कण्ठनलीमें संकोच हो जाता है, जिससे आवाज बारीक हो जाती है, हिजड़ों और स्त्रियोंको सी आवाज निकलती है। इसमें नातिशीतोष्ण जलसे स्नान करे, दोषोंको फैलाने वाली विसद वस्तुओंका सेवन

और उसके आसपास पीतवर्णकी झिल्ली बनती है और फिर वह काली धूसर हो जाती है। झिल्लीसे भिन्न भाग लाल दिखते हैं। कहीं कहीं पर कुछ रक्तविन्दुसे दिखते हैं। श्लैष्मिक-ग्रन्थियोंसे जो रस निकलता है वह गाढ़ा नीलापन लिये रहता है, रसमें दुर्गन्धि रहती है। गर्दनके पीछे की रसग्रन्थि कुछ बढ़ जाती और दबानेसे उनमें दर्द होता है। शारीरिक उष्णता १०१ डिग्री तक हो जाती है। कहीं कहीं आमवात की सी गांठें भी देखी जाती हैं। इस रोगमें विशेष कर कोमल तालु आक्रान्त होता है। अधिजिव्हा और तालुका मुहस्राव बिगड़ जाता है। बीमारी अधिक बढ़नेसे रोगी प्रलाप भी करता है। और शारीरिक उत्ताप १०५ से १०७ तक हो सकता है। कभी कभी शारीरिक उष्णता घट भी जाती है। वमन, द्रताक्षेप आदि नाड़ी विकार भी होते हैं, गला कुछ मोटा दिखता है। बीमारी बढ़ने पर गले की झिल्ली काली और दुर्गन्धित हो जाती है। यदि ऐसी झिल्ली निकाल डाली जाय तो फिर नयी झिल्ली पैदा हो जाती है। यदि औषधि प्रयोग से झिल्ली आप ही निकल जावे तो फिर नयी झिल्ली नहीं पैदा होती। रोग विषम होने पर भूख बिलकुल नहीं लगती, नाड़ी तेज चलती है, कभी मृदु चाल हो जाती है, नाकसे नकसीर फूटने लगती है, नासागह्वर आक्रान्त होने पर नाकसे सांस लेने और छोड़नेसें कष्ट होता है। अतएव मुंहसे रोगी साँस लेने लगता है। नाकसे पतले रसके समान श्लेष्मा अथवा पूयमिश्रित दुर्गन्धियुक्त क्लेद निकलता है। नासारन्ध्र द्वार तथा ऊपरी ओंठ आदि जहाँ यह रस लग जाता है वहां क्षत हो जाता है। किन्तु रोगारम्भमें रूक्ष, और सूखी खांसी रहती है। खांसी वा स्वर अस्पष्ट रहता है। कण्ठ स्वर, क्षीण, कर्कश, दबा हुआ और कभी कभी सुनाई नहीं पड़ता। गल-वीक्षण यन्त्रसे देखने पर स्वरयन्त्र बढ़ा हुआ, लाल और कृत्रिम झिल्लीसे युक्त दिखता है। यदि कहीं कड़े चमड़ेकी जगह इसके कीटाणु पहुँच जायं तो चमड़ेमें भी वैसे ही लक्षण दिखने लगते हैं। चमड़ेमें जो इसकी झिल्ली पड़ती है वह श्वेत, पाण्डु, धूसर और

कृष्णवर्ण होती है। यह झिल्ली कुछ मोटी होती है।

इस रोग की विषमविकृतिमें प्रायः रोगी मर जाते हैं। किन्तु जो आराम होजाते हैं वे भी कई सप्ताह तक दुर्बल और उदास रहते हैं। कभी कभी रोगके अन्तमें पङ्गुता या पक्षाघातका दौरा हो जाता है। गलेके नीचे कुछ दिनों तक कष्ट रहता है। गाढ़ी चीजें निगलनेमें कष्ट होता है और पतली चीजें पीनेसे नाकके रास्ते निकलने लगती हैं। हृदयमें अवसाद रहता है, नाकसे कुछ सिनसिनाहट निकलती है और नाड़ी की चाल घट कर ४० या पचास और कभी कभी प्रति मिनट २० तक हो जाती है। आंखें पेशियोंका घात होनेसे द्विधादृष्टि हो जाती हैं। पक्षाघातकी अवस्थामें मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र भी हो जाता है। पेशियोंका काम शिथिल होता जाता और उनकी अनुभव शक्तिमें न्यूनता आजाती है। डिफ्थीरियामें पहले सर्दी या खांसी नहीं होती; किन्तु ज्वर होता है। सयानोंकी अपेक्षा बच्चोंके लिये यह बीमारी अधिक भयंकर होती है। अधिकतर श्वासावरोध और हृदयके अवसादसे इसमें मृत्यु होती है। आयुर्वेदमें इसकी सम्प्राप्तिमें कहा गया है "गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम्। गलोपसंरोध करै स्तथाऽङ्कुरै र्निहन्त्यसून् व्याधि रयं च रोहिणी", इसमें डाक्टरीके सभी लक्षणोंका समावेश हो जाता है और अन्तमें जो उपद्रव होते हैं उसके विषय में भी कहा गया है "वातात्मकोपद्रवगाढ़ जुष्टा" इससे उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है।

(१) वातजरोहिणी—यदि रोहिणीमें वात दोषकी प्रधानता हो तो गला और मुंह सूखता है। हनु-ठुड्डी और कानमें ठनका लगता है। सम्पूर्ण जिव्हामें बहुत दर्द होता है, मांसाङ्कुर इतने अधिक हो जाते हैं कि गला रुँध जाता है। इनके सिवाय अन्य वात सम्बन्धी उपद्रव स्तम्भ आदि भी होते हैं। इसमें पहले बाहर और भीतरसे सेंककर रक्तमोक्षण कराकर पञ्चलवणसे प्रतिसारण करना हित है। बारम्बार

कुछ कुनकुना कर स्नेह गण्डूष धारण करना चाहिये। अर्थात वात-नाशक तैल मुंहमें थोड़ी देर रख कुलकुल कर कुल्ले करने चाहिये। शस्त्रकर्म अंगुलिशस्त्रसे करना चाहिये। अथवा नखसें सेंधानमकके टुकड़े भरकर उन्हींसे जीभको रगड़कर खरोंचे। पंचमूलके काढ़ेका कवल धारण करे अथवा पञ्चमूलसे सिद्ध किये हुए तेलका कवल धारण करे। ऐसे तेलसे कुल्ले करनेके सिवाय नस्य भी लेना चाहिये।

(२) **पित्तजरोहिणी**—जिस रोहिणीमें पित्ताधिक्य दोष रहता है उसमें रोगी को ज्वर रहता है। चुनचुनी मालूम पड़ती है, मोह रहता है, गलेसे धुआंसा निकला करता है। पित्तदोषसे रोहिणीके विकार शीघ्र उत्पन्न होते हैं, शीघ्र विदग्ध होकर ऐसी रोहिणी शीघ्र पकती है। पित्तजरोहिणीमें लालिमा अधिक रहती है और स्पर्श सहन नहीं होता है। इसमें रक्तमोक्षण कराकर मिश्री, प्रियंगु, पठानी-लोध और पतंगका चूर्णकर मधुमें सान रगड़े। इन्हीं औषधियोंका काढ़ा कर कवल धारण करे। इसी प्रकार मुनक्का और फालसाका काढ़ा कर कुल्ले करना भी हितकारी है।

(३) **कफजरोहिणी**—कफजन्यरोहिणी पिच्छिल और फीके सफेद रंग की होती है। कफके कारण स्रोतसोंका अवरोध हो जाता है। इसलिये कफजरोहिणीका पाक मन्दगतिसे होता है। भारीपन और स्थिरता रहती है। कफजरोहिणीमें कटुरसयुक्त औषधियोंको पीस उसमें गृहधूम-धुआंसा-मिलाकर प्रतिसारण करे अर्थात रगड़े। तथा अपामार्ग, मैनफल, चमेलीके पत्ते, दन्तीमूल, वायविडंग और सेंधानमक डालकर सिद्ध किये हुए तेलसे कुल्ले करे, कवलधारण करे और नस्य लेवे। वृन्द-शालूक तुण्डकेरी और गिलायुरोगमें, कथित उपाय भी इसमें करे। अथवा फिटकरी, वायविडंग, दन्ती और सेंधानमकसे सिद्ध किये हुए तेलका कवल धारण करे और नस्य ले। अथवा सोंठ-मिर्च-पीपलके चूर्णमें धुआँसा मिलाकर प्रति-

धारण करे। अपराजिता, वायविडंग, दन्ती, और सेंधानमकसे सिद्ध किये हुए तेलका कवल धारण भी किया जाता है।

सान्निपातिकरोहिणी---सान्निपातिकरोहिणीमें तीनों दोषोंके कुछ कुछ लक्षण मिलते हैं। यह गम्भीर पाक होती है अर्थात् पकनेके लक्षण मवाद आदि गहरे रहते हैं। यद्यपि सभीरोहिणी त्रिदोषज होने के कारण मारक होती हैं; किन्तु त्रिदोषज होते हुए भी दोष प्रधान होनेके कारण वातज-पित्तज और कफजरोहिणी आरम्भमें ही अच्छी चिकित्सा होनेसे आराम भी हो जाती है। अन्यथा कफजरोहिणी तीन दिनमें, पित्तज पांच दिनमें और वातज सात दिनमें असाध्य होकर मारक होती है। किन्तु सान्निपातिक रोहिणीका रोगी प्रारम्भ से ही असाध्य होता है, यह शीघ्र मारक है। अतएव इसकी चिकित्सा नहीं लिखी गयी।

रक्तजरोहिणी—रक्तजन्य रोहिणीमें छोटी छोटी फुंसी और छाले पड़ जाते हैं। उनमें अधिक जलन होती है, उसका रंग लाल जलते हुए अंगारके समान रहता है। इसमें कानमें टीस और ठनका लगता रहता है। इनके सिवाय पित्तजन्य रोहिणीके लक्षण भी मिलते हैं। इसकी चिकित्सा पित्तजरोहिणीके समान करनी चाहिये। यह सुखसाध्य है। दारुहल्दी, तजकलमी, नीमकी छाल, रसवत और इन्द्रजवका काढ़ा मधु मिलाकर पिलावे अथवा केवल हरीतकीके क्वाथमें मधु मिलाकर पिलावे।

कण्ठशालूक—गलेमें बेर की गुठलीके समान आकार वाली कडी, स्थिर, तथा काँटों सी उठी हुई, शूलके समान या चुभे हुए कांटों के समान वेदना जनक स्पर्शमें खर जो गाँठ उत्पन्न होती है, उसे कण्ठशालूक कहते हैं। इसमें वात-पित्त-कफ तीनों दोषोंकी विकृति होती है; किन्तु कफ प्रधान होता है। यह शस्त्र क्रिया साध्य व्याधि है। डाक्टरीमें इसे एडीनोइड्स (Adenoides) कहते हैं। इसका स्थान गलेमें नाकके पीछे होता है। इसीसे नासामार्गका अवरोध

होता है और रोगीको मुखसे सांस लेनी पड़ती है। सोते समय सांस घरघराती हुई चलती है। इसे चीर कर दोष विस्रावित करे और कफरोहिणी या तुण्डकेरीके समान चिकित्सा करते हुए केवल एक बार यवके पदार्थ घृत मिलाकर थोड़ी मात्रामें आहारके लियें पथ्यरूप देवे।

अधिजिव्ह—कफ और रक्तके प्रकोपसे जिव्हाके ऊपरी भागमें, जीभ की नोकके आकार प्रकारकी जो सूजन उत्पन्न होती है उसे अधिजिव्ह कहते हैं। यह जीभकी जड़के पास उसके बन्धनके समीप खरखरी सूजन होती है, उसे मांसाङ्कुर उत्पन्न होते हैं, जीभ तनती और चुनचुनाती रहती है, मुंहसे लार गिरती, और ठनका लगता है, खुजली होती और बोलनेमें कष्ट होता है। आचार्य वाग्भटने इसका वर्णन जिव्हारोगके उपजिव्हकके साथ ही किया है। उनके मतमें इसमें कफ और रक्तके सिवाय पित्त भी विकृत होता है। डाक्टरीमें इसे एपीग्लोटाइटिस (Epiglotitis) कहते हैं। इसमें जीभको वडिशयन्त्रसे पकड़ कर दबावे, रगड़े, शोथको खींचें और मण्डलाग्रसे उसे छेदन कर तीक्ष्ण और उष्ण औषधियोंका चूर्ण रगड़े। ऐसी ही औषधियोंके काढ़ेसे कुल्ले करावे और तीक्ष्ण तथा उष्ण सोंठ-मिर्च-पीपल आदि औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ तेल कान और नाकमें डाले। यदि यह पक जावे तो फिर असाध्य हो जाती है।

वलय—गलेमें भीतर और बाहर दोनों ओर जबरदस्त सूजन हो और उससे सिर भारी मालूम पड़े, सूजन विस्तृत और ऊँची हो, गले में रुकावट मालूम पड़े और कोई वस्तु निगली न जा सके, उसे वलय कहते हैं। इस शोथका आकार वलयाकृति विस्तृत होता है इसीसे वलय कहते हैं। इसमें कफ दोष प्रधान होता है। यह व्याधि असाध्य है। इसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। **वासनबेत** जिसे पातालगारुडी या छिरेंटा कहते हैं उसकी जड़ पीसकर पीनेसे लाभ होता है। अथवा

महुवाके बीज घिसकर पीवे।

वलास—कफ और वायुकी विकृति बढ़ कर गलेमें ऐसा शोथ उत्पन्न होता है कि श्वास लेनेमें कष्ट होता है, इसलिये श्वासरोगीके समान वह कष्टसे साँस लेता है, हृदय आदि मर्म स्थानोंमें छेदने की सी पीड़ा होती है। इसे वलास या अलास कहते हैं। यह बहुत कठिन व्याधि है। इसलिये इसकी चिकित्सा दुस्तर है। गदनिग्रह-कारके मतसे बहुत निपुण वैद्य इसकी चिकित्सा कर सकता है।

एकवृन्द—गलेके भीतर गोल और ऊँची उठी हुई जो दाह और खुजली युक्त सूजन होती है, उसे एकवृन्द कहते हैं। यह कफज और रक्तज व्याधि है। इससे गलेमें भारीपन मालूम होता है। यह पकती नहीं अथवा ईषत पाकी है। इसी तरह अमृदु अर्थात् ईषत् मृदु कुछ नरम होती है। इसे विस्रावित कर-बहाकर शोधन क्रिया द्वारा आराम करना चाहिये। अर्थात पहले दूषित रक्त निकाल दे तब शोधन क्रिया करे। कफनाशक चूर्णसे घर्षण करे। शिरोविरेचन देवे, मुखमें वफारा दे और कुल्ले भी करावे।

वृन्द—पित्त और रक्तके प्रकोपसे गलेमें जो गोल उठी हुई सूजन होती है और उसमें तेज जलन होती तथा ज्वर हो आता है, उसे वृन्द कहते हैं। यदि इसमें वात विकार भी हो तो उस शोथमें तोद अर्थात सुई चुभनेके समान पीड़ा भी होती है। इसमें शस्त्रसे लेखन कर शोधन चिकित्सा करनी चाहिये। एकवृन्दके समान वृन्द की भी चिकित्सा करनी चाहिये।

शतघ्नी—गलेमें एक गोल वली होती है। उसे शतघ्नी कहते हैं। उसके आसपास और बत्तीके समान ऊपर बहुतसे घने मांसांकुर उत्पन्न होते हैं उसे भी शतघ्नी कहते हैं। इसमें प्यास बहुत लगती है। ज्वर होता, शिरमें दर्द जोरका होता है, गला रुक जाता है। यह त्रिदोषज व्याधि है। जलन, खुजली, तोद आदि अनेक विकार होते हैं। पुराने

समयमें लोहेके कीलोंसे जड़ी बड़ी पत्थरकी शिला किलोंसे शत्रु पर फेंकी जाती थी उसे शतघ्नी कहते थे। उसीके समान कण्टक पूर्ण और मारक यह व्याधि है, इसकी चिकित्सा कठिन है।

गिलायु—कफ और रक्तके प्रकोपसे गलेमें आँवले की गुठलीके समान आकार और परिमाणकी दृढ़ और अल्प वेदना युक्त जो गांठ उत्पन्न होती है, उसे गिलायु या गलायु कहते हैं। इससे कण्ठ ऐसा भरा मालूम होता है, मानों आहारका कौर गलेमें अँटका हो। वाग्भटाचार्यने गलायुक नामसे जिस व्याधिका वर्णन किया है, उसे तीनों दोषोंके प्रकोपसे हुआ माना है—

मांसकीलो गले दोषैरेकोऽनेकोऽथवाल्परुक्।
कृच्छ्रोच्छ्वासाभ्यव हृतिः पृथुमूलो गलायुकः॥

अर्थात वातादि तीनों दोषोंके प्रकोपसे मूलमें मोटी गलेमें एक या अनेक मांसकील थोड़ी पीड़ा वाली उत्पन्न होती हैं। इससे श्वास लेनेमें और छोड़नेमें तथा आहार निगलनेमें कष्ट होता है। यह शस्त्रकर्मसाध्य व्याधि है। अर्थात् शस्त्रकर्मसे मांसांकुर या गांठको चीरकर दोष निकाल दे और फिर व्रण संशोधनक्रिया करे। यदि वेदना कम हो और अपक्व हो तो काट कर निकाल दे और यदि पक गया हो तो चीर कर मवाद निकाल दे और शोधनरोपण क्रिया कर आराम कर दे।

गलविद्रधि—वात-पित्त-कफ तीनों दोषोंके प्रकोपसे समस्त गले को व्याप्त करने वाला जो महान शोथ उत्पन्न होता है और उसमें तोद, दाह, कण्डू आदि पीड़ा रहती हैं, उसे गलविद्रधि कहते हैं। इसमें त्रिदोषज विद्रधिके सब लक्षण वर्तमान रहते हैं। यदि गल-विद्रधि मर्म स्थानसे अलग हो और ठीकसे पक गयी हो तो शस्त्रसे भेदन कर रक्त और दोष निकाल देवे। इसके बाद आंवला, हर्रा, बहेड़ा, गोरोचन, रसवत, गेरू, पठानी लोध, सेंधानमक, पतंग और पिप्पली

का चूर्ण कर रगड़े और इन्हीं औषधियोंका काढ़ा कर कुल्ले करे। तीक्ष्ण औषधियोंका नस्य देवे।

गलौघ—कफ और रक्तके प्रकोपसे तीव्र ज्वर युक्त कण्ठमें जो महान् शोथ उत्पन्न होता है और जिसमें न तो आहार निगला जा सकता न पानी पिया जा सकता और न वायु ग्रहण किया जा सकता उसे गलौघ कहते हैं। कण्ठदेशमें उदानवायु रहता है। इस शोथके कारण उसकी गति रुक जाती है। गलौघकी सूजन भीतर बाहर दोनों ओर होती है। सिर भारी हो जाता है, झपकी सी लगी रहती है, लार गिरती रहती है। इसमें बहेड़ेकी अन्तर छाल पानीमें पीस कर पीनेसे लाभ होता है। वनतरोई—झुनझुनी चिलममें रखकर पीवे अथवा केवड़ेके फूलके बीचका केसर भाग चिलममें रखकर पीवे। सरसों की छीमीका बकला चिलममें रखकर पीनेसे भी शोथमें लाभ होता है।

स्वरघ्न—जब हम बोलते हैं तब वायु प्रश्वास क्रिया द्वारा फुस्फुससे टेटुवे और स्वरयन्त्रसे होकर बाहर आता है। उसके स्वर रज्जुओंसे टकराने पर ये कपने लगती है। स्वररज्जुओंके उत्कम्पनसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। बोलनेमें कण्ठ, तालु, जिव्हा, दन्त और ओष्ठोंसे सहायता मिलती है। स्वररज्जुओंके तनने या ढीले होनेसे भिन्न भिन्न प्रकारके स्वर उत्पन्न होते हैं। स्त्रियोंकी ये रज्जु पुरुषोंकी अपेक्षा कम लम्बी होती हैं।इसीसे दोनोंके स्वरमें अन्तर होता है। दांत टूटने, जिव्हा फटने, तालुमें छिद्र होने या कण्ठ प्रदाहसे स्वरमें अन्तर होता है। कफके प्रकोपसे वातवह स्रोतस अवरुद्ध होते हैं, इससे वायु भी प्रकुपित हो जाता है। इससे गला सूख जाता है, आवाज बैठ जाती और फटी सी निकलती है। आंखोंके सामने अन्धकार छाया रहता है, इससे घबड़ाकर रोगी बार बार हांफता और जोरसे सांस छोड़ता है, गला सूखा रहनेके कारण कुछ निगला नहीं जा सकता। इस विकार को स्वरघ्न कहते हैं। इसमें कुलींजनकी जड़ मुखमें रख रस चूसे

इससे स्रोतस खुलते हैं। मुनक्का, कुटकी, सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, नागरमोथा, पाढ़ी, रसवत, दूब और मालकांगनीका चूर्ण कर मधुमें सान गोली बना मुखमें रखे। इससे स्वर खुलेगा और गलेके सब विकार नष्ट होंगे। अथवा जावित्री, पीपली, धानके लावा, बिजौरा नींबूकी पत्ती अथवा फलकी कली, इलायची सबको मिलाकर चाटे तो स्वर उत्तम होता है।

स्वरभंग—स्वरघ्न की तरह स्वरभंग भी है, जिसे साधारण बोलचाल में गला बैठ जाना कहते हैं। यदि कफके साथ वायु की भी विकृति हो और उष्णश्लेष्मा सिरसे गले और फेफड़े की ओर गिरे तथा उसकी तेजीसे इन अंगोंमें छिलन पैदा हो और वहां जो चिकनी चेपदार तरी रहती है वह दूर हो जाय तो फेफड़ेके मुख कण्ठमें नरमी और तरी नहीं रह जावेगी। इसके परिणामस्वरूप गला बैठ जावेगा, गलेमें खरखरापन, खुजली, सुरसुराहट और जलन होगी। इसमें खसखसका शर्बत पीना तथा पोस्तकी ढोंडी, उन्नाब, काहूके बीज, खुर्फाके बीज, मसूर की दाल लेकर काढ़ा करे, उसमें नशास्ता और गोंद मिलाकर कुल्ले करे। इसी काढ़ेका सिर पर तरेरा दे और पीसकर लेप भी लगावे। इससे श्लेष्मा नीचे नहीं उतरने पावेगा। कभी कभी श्वास नलीमें उष्णता पहुँच जानेसे उसकी तरी सूख जाती है, उसमें खरत्व आ जाता है और स्वर बदल जाता है। कभी कभी उष्णताके ज्वरमें ऐसा हो जाता है। ऐसी दशामें कफ नहीं निकलता और खुश्की मालूम देती है। ऐसी दशामें जौ औटाकर पीवे। अथवा उन्नाब, खतमी और लसोढ़ा कूटकर पोटली बना पकते हुए जौके काढ़ेमें छोड़ दे और तैयार होने पर छानकर मिश्री मिलाकर पीवे। बिहीदाना, इसबगोल, उन्नाब, खतमी, धनियां पानीमें औटा छानकर गुनगुनेमें कुल्ले करे। मुलेठी १॥ तोला और बिहीदाना २ तोला, रातमें आधसेर पानीमें भिगा दें, प्रातःकाल औटावें। जब आधापानी शेष रहे तब उसमें ६४ तोले चीनी मिला गाढ़ी चासनी करे। इस

पर इन कीटाणुओंका आक्रमण होता है। रोगीके वस्त्र दूसरेके शरीर पर लगने या किसी द्रव्यमें उन वस्त्रोंका सम्पर्क होनेसे भी इनका संक्रमण होता है। रोगी बछड़ेकी लार गायके स्तनोंमें लगनेसे उस गायके दूधके द्वारा भी दूसरोंमें इसके कीटाणु पहुँच जाते हैं। विशेष कर यह बीमारी बालकोंको होती है। आरम्भमें गलेमें ललाई और कुछ विस्तार देखा जाता है। इसके बाद श्लैष्मिक झिल्लीके ऊपर नया पर्दा सा पड़ जाता है, जिससे मलाई की सी सफेद तह जमी दिखाई पड़ने लगती है। यह आवरण बढ़ कर श्वासनलिका, स्वर-यन्त्र, फेरिंक्स आदि पर भी आक्रमण करता है। इस झिल्ली पर एक के ऊपर दूसरी तीसरी आदि तह सञ्चित होती रहती है। पहले तो यह तह नरम रहती है, फिर दृढ़, कड़ी, और कुछ पीलाई लिये और रोग अधिक भयंकर होनेपर कृष्ण वर्ण हो जाती है। अणुवीक्षणयन्त्रसे देखने पर इस आवरणमें मवाद, दैहिकसूत्र और रक्तकणिका प्रभृति दृष्टिगोचर होते हैं। कभी कभी बढ़े हुए उद्भिद (फंगस) भी देखे जाते हैं। एक बार झिल्ली निकल जाने पर फिर पैदा हो सकती है। तीनसे लेकर २४ दिन तक इस रोगका स्थायित्व रहता है। इसका विष कण्ठनली, तालुरस और श्वासमें पाया जाता है। पहले दो से ५ दिन तक इस रोगका, निर्णय नहीं हो पाता, यह समय उसकी गुप्तावस्थाका होता है। कभी बारह बारह दिन तक भी निर्णय नहीं हो पाता।

स्त्रियोंकी योनि तथा गर्भाशय पुरुषोंके लिंग तथा गुदास्थान, आदिमें भी यह विष पहुँचे तो ऊपरके समान ही झिल्ली प्रदाह हो सकता है। इसके पूर्वरूपमें कभी कभी बहुत जाड़ा लगता है। बच्चोंको जल्दी जल्दी आक्षेप होने लगते हैं। गलेमें दर्द, आलस्य, तेजी की कमी, क्षीणता, शिरोवेदना, पीठमें दर्द, क्लान्ति और भूख की कमी हो जाती है। कोई वस्तु निगलनेमें कष्ट होता है, नाड़ीकी चाल बढ़ जाती और कुछ ज्वर भी रहने लगता है। पेशाबमें ललाई और यूरियाकी वृद्धि हो जाती है। ज्यों ज्यों रोग बढ़ता है त्यों त्यों तालुग्रन्थि (टानसिल)

करे। अण्डे की जरदी, मांसरस, तीतर और बटेरका मांस खावे। मुनक्का, अलसीके लड्डू, छुहारा, चिलगोजा, अंजीर, बादाम आदि खावे। पानीमें शहद मिलाकर पीवे। मसालोंमें मिर्च, हींग आदि रखे।

मांसतान—वात-पित्त-कफ तीनों दोषोंके प्रकोपसे कण्ठमें अत्यन्त कष्टदायक और गलेमें लटकता हुआ जो शोथ होता है और जिसमें चारों ओर विस्तृत मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे गला रुक जाता है, उसे मांसतान कहते हैं। यह व्याधि प्राणनाशक है।

विदारी—पित्तकेकोपसे गलेके भीतरी भागमें दाह और सुई चुभाने की सी पीड़ा होती है, गलेमें रक्तवर्ण की सूजन हो जाती है, क्रमशः शोथ स्थानका मांस सड़ कर गल जाता है और दुर्गन्धि करता है। यह सड़ा हुआ मांस गिर भी जाता है। इसे विदारी कहते हैं। यह विदारी रोग गलेमें प्रायः उसी ओर होता है जिस ओर करवट लेकर मनुष्य अधिक सोया करता है। यह बीमारी पाश्चात्य Cancrum oris से मिलता जुलता है। यह कीटाणु जन्य व्याधि मानी जाती है। इससे कभी कभी मृत्यु हो जाती है। पर डाक्टरीमें बहुत भयंकर व्याधि समझी जाती है। प्रायः निर्बल लड़कों को यह विशेष होती है। दांतोंकी जड़के ऊपर गलेके अन्दर और कभी कभी होंठ तक छाले पड़ते हैं, गला सड़ जाता है, मुर्दा मांस दिखाई पड़ता है, मुंहमें बहुत दुर्गन्धि रहती है। गला भीतरसे लाल दिखता है। घाव पक कर मवाद आती है। छाले निकल जाने पर गालके आसपास छिद्र पड़ जाते हैं। कभी कभी होंठ तक सड़कर जबड़ा और दांत नष्ट हो जाता है। डाक्टर लोग Cancrum oris में रोगीको शक्ति लानेके लिये पहले पौष्टिक आहार देते हैं, आहारमें पतले द्रव्य दिये जाते हैं। मुंह को दुर्गन्धि दूर करनेके लिये पोटाशियमपरमेगनेट अथवा क्लोरीनेटेड सोडा पानीमें घोलकर कुल्ले कराते हैं। अथवा तिल पीसकर दूध और पानी मिला कुल्ले करावे। अथवा

काले तिल, गुलखीरोफर, घी, मिश्री और दूध मिला शहद छोड़ कुल्ले करावे। त्रिफलाकी राख पानीमें घोल और मधु मिलाकर कुल्ले करे। दारुहल्दी, गुर्च, त्रिफला, मुनक्का, चमेलीके पत्ते और जवासेकी जड़का काढ़ा कर ठण्डा होने पर मधु मिला कुल्ले करे। त्रिफलाके काढ़ेमें मधु मिला कुल्ले करे। सींकमें रूई लपेटकर कार-बोलिक एसिडमें डुबा फफोलेके ऊपर फेरै। शेष स्थान पर वैस्लिन चुपड़ै। अथवा नाइट्रिकएसिड फफोलेमें लगावे। मवाद हो तो नरम लिण्ट दबाकर मुँह कोरा करता रहे। यदि लड़कियोंके पेशाब स्थानमें इसी तरहके फफोले हों तो वहां पर भी ऐसा ही उपाय करे।

गलार्बुद——गलेके ऊपर लिखे १८ रोगोंके सिवाय एक गलार्बुद नामक रोगका वर्णन भी आचार्य वाग्भटने किया है। यह गलार्बुद तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है। इसमें गलेके आरम्भसे, जीभ की जड़ तक कड़ी, लाल रङ्ग की सूजन होती है। सूजनमें दर्द नहीं होता और यह पकती भी नहीं है। समस्त कण्ठ रोगोंके समान इसमें भी रक्तमोक्षण करा कर तीक्ष्ण नस्य देना चाहिये। यदि गलार्बुद अधिक बढ़ा न हो तो उसे कटवा दे और उसमें सज्जीखार और सोंठका चूर्ण मधु मिलाकर रगड़े। गुर्च और नीमकी छालका काढ़ा कर मधु और तेल डाल कर कुल्ले करे। जव की रोटी और यवागू या दलिया खावे। नाकमें तीक्ष्ण औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ तेल मले।

गलग्रन्थिशोथ—(Mumps) थूक पैदा करनेवाली ग्रन्थि (Paratid Gland) में शोथ हो जानेसे खाने पीनेमें अड़चन पड़ती है। इसे गालपचोलां भी कहते हैं। इसमें आरम्भमें ज्वर भी होता है। यह प्रायः बालकोंको अधिक होता है। इसे डाक्टर लोग संक्रा-मक व्याधि मानते हैं। कान की जड़ और उसके आसपास गालका भाग सूज जाता है। यह शोथ कड़ा होता है। तीन चार दिनों तक इसका जोर अधिक रहता है। एक सप्ताहमें यह अच्छा हो जाता है। आरम्भमें हलका जुलाब लेकर पोस्तेके ढोढ़े पानीमें पका उसी

गरम पानीसे सेंके। दूध और नमक पकाकर बाहर बांधे। ज्वरके लिये ऐसी दवा दे जिससे पसीना आवे। बीमारी कड़ी हो तो जोकें लगवावे और दूसरे लड़कोंको उस बीमारसे अलग रखे।

जृम्भा (जमुहाई)—जब मनुष्य एक वेगवान श्वास वायुको पीकर पुन: उस श्वासको बाहर निकालता है और उससे सहसा मुँह खुल जाता और साथ ही आलस्य तथा नेत्रोंमें झपकी सी मालूम पड़ती है। उसे जृम्भा या जमुहाई कहते हैं। साधारण जृम्भा थकी और आलस्य तथा शरीरमें वायुकी वृद्धि की सूचना देती है; किन्तु जब यह व्याधि रूपसे अधिक हो तब इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, अजवाइन तथा सेंधानमकका चूर्ण खानेसे तत्काल जृम्भा रुक जाती है। यदि सब वस्तुएं न हों तो जितनी मिलें उतनी ही लेकर सेवन करे। ज्योंही जमुहाई आना आरम्भ हो त्यों ही उस मनुष्यको सुंदर बिस्तर पर सुला दे। आरामसे नींद आने पर जमुहाई दूर हो जाती है। जिसे जमुहाई अधिक आती हो उसे कड़वे तेल की मालिश करना, मधुर सुस्वादु भोजन करना और पान खाना चाहिये।

काकलक (कौवेका शोथ)—स्वरयन्त्रके द्वार पर गलेमें जो एक घण्टी सी लटकी रहती है उसे घण्टिका या काकलक या अलिजिव्ह साधारण बोलचालमें कौवा कहते हैं। यह साधारण मांसपेशियोंसे बनी रहती है। इसमें संवेदनात्मक नाड़ियाँ कम रहती हैं। इसलिये इसमें ज्ञान शक्ति की कमी रहती है। कभी कभी इसमें शोथ आजाने से कष्ट होता है। यह शोथ चार प्रकारका होता है (१) वातज (२) पित्तज (३) कफज और (४) रक्तज।

वातज काकलक शोथमें—कड़ापन और रूक्षता रहती है, उसके रङ्गमें कुछ श्यामता रहती है और साथ ही तालू और जीभमें भी श्यामता आ जाती है। मुंहका स्वाद खट्टापन लिये विरस रहता है। इसमें पहले वायुके शोधनके लिये रासनासप्तक (रासना, गुर्च, अमिल-

तासका गूदा, देवदारु, पुनर्नवा, गोखरू और एरण्डकी जड़) क्वाथ पिलावे। अथवा अमरबेलिका काढ़ा देवे। अथवा अमरबेलिकी सिकंजवीन पिलावे। इसके सिवाय मुलेठी, अमिलतासका गूदा, और मेथी समान भाग लेकर पीसे और ताज़े दूधमें मिलाकर थोड़ा बादाम का तेल और थोड़ा सेंधानमक मिलाकर कुल्ले करे। इससे दोष नरम होकर निकल जाते हैं। सूजन बढ़ने न देने और उसके आस-पास तालुमें भी शोथ न आने देनेके लिये मुंहमें हरी धनियां और हरे काहूके रसका कवल धारण करे और इसीसे कुल्ले भी करे। गरम चीजोंसे परहेज रखे।

पित्तज काकलक–शोथमें तोद अर्थात चुभन होती है, जलन रहती और प्यास अधिक लगती है। मुंह, उष्णताके कारण सूखता रहता है। वेदना विशेष होती है और कौवेका रङ्ग कुछ पिलाई लिये रहता है। इसमें सबसे पहले प्रकृति की उष्णता दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये मुरैमक्कीके फांटमें शीरखिस्त मिलाकर पिलावे अथवा गुलाबजलमें अमिलतासका गूदा भिगाकर पीवे। दोष शान्तिके लिये हरी मकोय और हरी कासनीका स्वरस पिलावे। अखरोट और शहतूत या गुलाबके काढ़ेसे कुल्ले करे। वेदनाशमन और शोथ नष्ट करनेके लिये अमिलतासका गूदा, खतमी, बिहीदाना, कनूचेके बीजका लुआब, हरीधनिया और हरी बारतंगका स्वरस पिलावे।

कफज काकलक–शोथमें शोथकी अधिकता रहती है, शोथकी वृद्धि शीघ्रतासे नहीं होती। शोथका रङ्ग श्वेत होता है। उसमें नरमी रहती और वेदनाकी कमी रहती है। कफ निकालनेके लिये कट-फलादि क्वाथ पिलावे। कायफल, नागरमोथा, भारंगी, धनियाँ, रोहिषतृण, पित्तपापड़ा, वच, हर्र, ककड़ासिंगी, देवदारु, और सोंठ को पकाकर मधु मिलाकर पिलावे। नित्य प्रातःकाल शहदका बना गुलकन्द खिलावे। अर्थात गुलाबके फूलमें मधुका पुट देकर धूपमें रख बना हुआ गुलकन्द देवे। कफ शमनके लिये काँजीमें राई मिला

कर कुल्ले करे। नौसादर पीसकर एक नलीमें रख कौवेमें फूंक दे अथवा भुना सोहागा मधु मिलाकर कौवेमें रगड़े। इससे कफ पिघल कर निकल जाता है। अथवा माजूफल, नौसादर, नमक और भुनी फिटकरी पीसकर अंगुली या अंगूठेमें लगा कौवे को ऊपरकी ओर दबावे।

रक्तज काकलक—शोथमें शोथ अधिक होता है, उसका रङ्ग लाल होता और कुछ वेदना और जलन अधिक रहती है। इसमें रक्तमोक्षण कराना हित है। गुलाबके फूल सिरकेमें पीसकर कुल्ले करे। गुलाब के फूल, चन्दन, अनारके फूल, और कपूर महीन पीसकर कौवेमें रगड़ें। दवाको दोनों अंगुलीमें डुबाकर लगावे या एक फुरहरी बना कर उसे दवामें बोरकर रगड़ें।

काकलक शैथिल्य—कभी कभी कौवेमें शोथ न होने पर भी वह शिथिल होकर नीचे लटक आता है। जिससे गलेमें सुरसुराहट और कुछ लटका हुआ सा मालूम पड़ता है। मुंह खोलकर देखनेसे मालूम पड़ता है कि उसका सिरा जिव्हा मूलको छू रहा है। जब तक उसे दबाकर ऊपर न उठा दिया जाय तब तक चैन नहीं पड़ती और कौर निगलनेमें भी कष्ट होता है। यह कभी कभी पित्त की उष्णतासे रक्त उष्ण और विकृत हो जानेके कारण बढ़ आता है। ऐसी दशामें कौवा, जीभ और तालू लाल रङ्गके हो जाते हैं। इसे कौवा लटकना कहते हैं। इसे दूर करनेके लिये रक्तमोक्षण कराना हित है। इसके सिवाय रक्तज शोथमें वर्णन की हुई दवाइयाँ काममें लावे। यदि अजीर्ण रहता हो तो हलका भोजन करे और अजीर्ण नाशक उपाय करे।

कभी कभी कौवा सर्दी-जुखाम और अधिक खांसी आनेके कारण भी बढ़ आता है। इसमें मुखमें लुआब सा भरा रहता है। रङ्गमें लाली नहीं रहती, जलन भी नहीं रहती। इसमें कफ नाशक और खांसी दूर करने की क्रिया करनी चाहिये। पानी में शहद मिलाकर

अथवा जूफाके काढ़ेमें मधु मिलाकर कुल्लेकरे। अथवा खट्टे अनारके रसमें भुनी फिटकरी मिलाकर कुल्ले करे। इससे तरी सूख जाती है। कौवेमें लगानेके लिये साबरशृंगभस्म, भुनी फिटकरी और नौसादर पीसकर अंगुलीमें बोर कर रगड़े। यही दवा अंगूठेमें लगाकर कौवे को ऊपर की ओर दबावे। इस कौवेका सम्बन्ध ऊपरी तालु की मांस-पेशी से रहता है और खोपड़ीसे झिल्ली द्वारा सटी रहती है। इसलिये बाल बनवाकर तालुके ऊपर खोपड़ीमें संकोचक औषधियां रखनेसे भी लाभ ~~होता है~~। अकाकिया, धुमासा (गृहधूम), चूल्हेके नीचे की जली मिट्टी, पीसकर उसमें सरेस और इसबगोल मिलावे। फिर अधीराके पत्ते और सूखी धनियांका काढ़ाकर इसमें सिरका मिलावे और उसी में सब दवाइयोंको सानकर तलुवेपर रखे। यह दवा कौवेको ऊपर खींचती और नीचे की तरी ऊपरको उठाती तथा सुखाती है। सिरके में माजूफल पीसकर तालूपर लेप करें। कभी कभी कौवेमें उष्णता पहुँचनेसे ललाई और जलन होती है। वह उष्ण रहता है। ऐसी दशा में हरी मकोय और हरी धनियांके पत्तोंका रस निकालकर कुल्ले कराना चाहिये।

यदि इन उपायोंसे कौवेमें लाभ न हो और उसकी जड़ पतली, सिरकी ओर बड़ी और गोलाईमें अंगूरके समान हो जाय, रङ्ग सफेद हो, उसके लटके रहने और जिव्हामूल तथा निम्न तालुसे स्पर्श करनेके कारण रोगीको घबड़ाहट और दम घुटनेका सा कष्ट हो तो कौवेका बढ़ा हुआ भाग कटवा देना चाहिये। इसी तरह यदि कौवा इतना बढ़ जाय कि उसकी जड़ पतली और सिरा चूहे की पूछके समान और ढीला मालूम पड़े तो उसे भी कटवा देना चाहिये। कौवेमें अस्त्र-प्रयोग करनेके पहले दोष शान्ति कर लेनी चाहिये। स्मरण रहे कि कौवा जड़से न काटा जाय, अन्यथा अधिक रक्त जायगा और रोगीके मरनेका भय रहेगा। यही नहीं शब्दोच्चारणमें भी कठिनाई पड़ने लगेगी। बहुत आवश्यकता होनेपर ही अस्त्र प्रयोग करना चाहिये। काटनेके समय रोगी सूर्यके सामने खूब मुंह खोलकर

बैठे। अस्त्रचिकित्सक रोगी की जीभ अंगुली या किसी अस्त्रसे दवा रखे और कौवेके बढ़े हुए भागको कैंची अस्त्रसे काट ले। इसके बाद गेंदे की पत्तीका रस या गूलर की पत्तीका रस अथवा गुलाबजलमें भिगोये हुए सिमाकसे कुल्ले करावे। पानीमें पोटाशियम परमेंगनेट डालकर अथवा अखरोटकी शराबमें अफीम मिलाकर भी कुल्ले किये जा सकते हैं। इसके बाद दोषोंको समेटनेके लिये खट्टे अंगूर का रस, खट्टे विहीका रस, मुलतानी मिट्टीमें मिला कटे हुए भागमें लगा दे। इससे खून बन्द होता है और फिर आनेका भय नहीं रहता।

यदि अस्त्र प्रयोग न करना हो तो औषधियोंके द्वारा भी कौवेका बढ़ा हुआ भाग निकाला जा सकता है। हींग और फिटकरी महीन पीसकर उतने भागमें लगावे जितना निकालना चाहते हैं। अथवा नौसादर और हींग बारीक पीसकर लगावें। इससे कौवेका वह भाग पतला और कमजोर पड़ जाता है और तीन चार दिनोंके प्रयोगसे गिर जाता है। मुंहमें फिटकरी रखनेसे भी लाभ होता है। जब ये औषधियां लगायी जावें तब बीमार मुँह नीचाकर एक तकियेके सहारे इस प्रकार बैठे कि मुंहसे लार किसी बर्तनमें गिरती जावे। यह सावधानी रखे कि दवाका कुछ भाग गलेमें न जाने पावे। कौवा कट जाने पर दोष समेटने वाली दवाका प्रयोग करे।

कण्ठपिटिका—कण्ठभागसे लेकर अन्ननलिका तक कभी कभी गरम फुंसियां उभड़ आती हैं। यहांका भाग कोमल होनेके कारण उष्णतासे तुरन्त दूषित हो जाता है। ऐसी फुंसियोंमें सामान्यतः भोजन निगलते समय दर्द अधिक होता है। खट्टे, चरपरे और कड़े पदार्थ खानेमें कष्ट होता है। कण्ठ स्वरमें अन्तर आ जाता है। दर्दके साथ जलन भी होती है। ऐसे समय यवागू पीवे, जवके आटेमें बनफशेके तेलसे हरीरा बनाकर पीवे। पानी कुनकुना करके पीवे। अनारका रस, अंगूरका रस तथा सेवका रस लेवे। रातमें इसबगोलका गुनगुना लुआब पिलावे।

यदि कफके साथ मवाद आने लगे तो गलशोथके उपाय काममें लावे। ऐसे समय पानीमें शहद घोलकर कुल्ले करे। रातमें उन्नाव, मुलेठी और बनफशा गावजवांके अर्कमें भिगा दे और सबेरे मलछान कर पिलाया करे। मुलेठी, समग अरबी गोंद, कतीरा, खतमीके बीज, ककड़ीके बीज, खीरेके बीज सबको महीन पीस इसबगोलके लुआबमें सान गोली बनावे और इन्हें मुंहमें रख लार बाहर गिराते रहे। कृष्णसारिवा, सूखा पोदीना, मकोय, छिली हुई मुलेठी और सफेद कत्था पानीमें औटा कर उसीसे कुल्ले करें। सिरकेका कवल धारण करे अथवा गुलरोगन, बनफशेका तेल, या अलसीके लुआबका कवल धारण करे। क्षतपर मोमका तेल लगावे। विरेचन देकर पेट साफ करते रहे। बनफशा, कतीरा, मुलेठी, ककड़ीके बीज, खीरेके बीज, सोया, नशास्ता, सबको पीसकर इसबगोलके लुआबमें घोट कर एक एक माशे की गोली बनावे, इन्है मुंहमें रखनेसे सब फुंसियां मिट जाती हैं।

कण्ठशल्य--कभी कभी गलेमें बाहरी कारणोंसे विकार पैदा हो जाते हैं, उनका भी स्थूल ज्ञान होना आवश्यक है। जो लोग देहातों में रहते हैं और तालाबोंका पानी पीते हैं, उनके गलेमें कभी कभी पानीके साथ छोटी जोंक चली जाती है। ऐसी जोंक तालु, गले, जिव्हा मूल अथवा अन्ननलिकामें जाकर चिपक जाती है। कभी कभी तालुसे नाक की ओर भी आ जाती है। ऐसी दशामें रोगी घबड़ाया सा रहता है, उदास रहता है, कभी कभी थूकके साथ पतला खून आ जाता है। यदि जोंक बढ़ जाय तो हानि पहुँचा सकती है। फेफड़ेके मुखमें चिपट जाय तो खांसी आती है और दम नहीं लेने देती। यदि तालुसे नाककी ओर आवे तो बीमारको सिरके अगले भागमें बोझासा मालूम पड़ेगा और नासारन्ध्र रुक जायगा। यदि जोंक दिखाई पड़े तो सन्दंश यन्त्रसे पकड़कर निकाल ले। रोगी सूर्यकी ओर मुंह खोल कर बैठे। चिकित्सक पहले जोंकका सिर और गर्दन अंगुलसे पकड़कर दबावे, जिससे सुस्त पड़कर जगह छोड़ दे। इसके बाद उसे धीरे

धीरे खींच ले। सावधानी रखे कि गलेमें लगने न पावे और न जोंक टूटने पावे। नहीं तो उसका मुंह चिपटा ही रहेगा। उसका टुकड़ा आमाशयमें जानेसे विष प्रभाव प्रकट करता है। खूनकी वान्ति आनेका भय रहता है। अच्छा हो कि अस्त्र प्रयोगके पहले सिरकेमें नमक या सिरकेमें हींग मिला कुल्ले करे इससे जोंक सुस्त हो जाय तब निकाले। यदि जोंक दिखाई न पड़ती हो और उसके होनेका अनुमान हो तो अगूरके सिरकेमें नमक या सिरका और हींग मिला कर कुल्ले कराते रहे। इसी तरह सौसनकी जड़ सिरके या तेलमें पीस कर कुल्ले करनेसे भीतर चिपटी हुई जोंक मर जाती है। अथवा तालाब की काली मिट्टी थैलीमें भरकर बीमारके मुखमें रखे। ऐसी दशामें जोंक अपनी प्रिय मिट्टीमें आकर चिपक जावेगी। जब मालूम हो कि उसने स्थान छोड़ दिया है तब मिट्टी मुंहसे निकाल ले। यदि जोंक पेटमें चली जाय तो कैसून, अफसनतीन, कलौंजी, कुटकी, बायविडङ्गको सिरकेमें मिलाकर औटावे और रोगीको पिलावे। भोजनमें लहसुन, प्याज, पोदीना, राई आदि देवे और वमन भी करावे। यदि सन्देह हो कि जोंक नाकमें आ गयी है तो कलौंजी, कडूकचरिया और कुटकी सिरकेमें औटाकर छानले और उसे नाकमें डाले। रोगी उस नस्यको ऊपर सुरक ले। ऊपर लिखी दवाओंके कुल्ले भी करे। एक उपाय यह भी है कि रोगी लहसुन सिरकेमें मिला कर यों ही खावे और स्नानगृहमें बैठे। मुंहमें वर्फका टुकड़ा रखे और पानी हो जानेपर गिरा दे। भीतरी गर्मीसे जोंक घबड़ाकर वर्फ की सर्दी की ओर आवेगी। इसी तरह लहसुन खाकर धूपमें बैठे और मुंह खोल कर ठण्ढे पानीका गिलास मुंहसे लगाये रहे ताकि जोंक घबड़ाकर ऊपर आवे और पानीमें चली आवे। इसी तरह तालाब की काई मुखमें रखनेसे उसकी मँहकसे जोंक ऊपर आजाती है।

यदि गलेमें कांटा चुभ जावे या कोई खाने की वास्तु अटक जावे, आमकी गुठली या ऐसी ही कोई अन्य वस्तु चली जावे तो कन्धोंके बीच थपेड़े मारे जिससे वह बाहर निकल आवे। अथवा भीतर

उतर जाय। अथवा वमन करावे जिससे वमनके जोरसे वह वस्तु बाहर आजाय। यदि अँटकी हुई वस्तु कड़ी और खुरखुरी हड्डी या मछलीके कांटे की सी हो और दिखती हो तो सन्दंश या चिमटीसे पकड़कर निकाल ले। यदि दिखती न हो तो लुआब दार, नरम और स्निग्ध हरीरा और फिसलाने वाली चीजें पिलावे। यदि इससे फिसल कर वह शल्य आमाशयमें पहुंचे तो वमन कराकर निकाल दे। अथवा एक धागेमें स्पंजका टुकड़ा बांधकर गलेमें निगलावे और धागेका सिरा ऊपर एक आदमी पकड़े रहे। ऊपरसे पानी पिलावे जिससे स्पञ्जचुभी हुई वस्तुसे नीचे उतर जाय। इसके बाद ऊपरके धागेको उठाकर खींच ले; जिससे शल्य स्पंजमें लगकर निकल आवे। अथवा एक कपड़ा शहदमें लपेट धागेसे बांध निगले और देर तक रखे रहे जिससे शहद घुलकर उतर जाय, फिर धागेको खींचले। यदि शल्य अधिक समय तक न निकले तो हालूनके बीज कूटकर गरम पानीसे पीनेको दिया करे यह चुभे हुए शल्यको निकाल देगा। जहां तक हो सके शल्यको आमाशयमें न जाने दे। बिहीदाना, खतमीके बीज, इसबगोल और तुलसीके बीज पानीमें औटा छान कर कुल्ले किया करे। अथवा इसबगोल और बिहीदानेका लुआब गौदुग्धमें मिला गरम करे और कुनकुना कुल्ला करे। इससे शोथ उत्पन्न नहीं होने पावेगा। पतली, लसदार वस्तुएं खानेको दिया करे।

यदि धोखेमें गलेमें सुई या आलपीन चली गयी हो तो चुम्बक पत्थर ४ माशे महीन पीसकर एक चमचा शराबमें मिलावे और प्रातः काल पीवे। फिर आधे घण्टे बाद सनाय २ तोले, गुलाबके फूल और बनफशा नौ नौ माशे, लसोढ़े ३० दाने सबको एक गिलासमें औटावे। जब आधा पानी रह जाय तब उसमें शीरखिस्त २ तोला मिलाकर गुनगुना पीवे। तीन घण्टे बाद कन्द मिलाकर गुलाबका शर्बत तुलसी के बीजके सङ्ग पिलावे। पथ्यमें चनेका पानी देवे।

कण्ठशैथिल्य—कण्ठनलिकाके मुखपर एक पर्दा होता है जो

किसी आहारीय वस्तुके गलेमें पहुँचनेसे दबावसे खुल जाता है और कौर भीतर जानेके बाद वह फिर बन्द हो जाता है। यदि गलेमें बहुत सर्दी पहुँचे तो कण्ठ और पर्दा ढीला पड़ जाता है, जिससे हल्की और पतली वस्तु निगली नहीं जा सकती ; क्योंकि हल्की वस्तु निगलनेके समय पर्दा उठता नहीं हैं ; किन्तु भारी और कड़ी वस्तु आहारमें लेनेसे उसके वजनसे पर्दा दब जाता है। यह व्याधि कष्ट साध्य है ; किन्तु यदि रोगी बालक हो तथा औषधि और आहार विहारमें सावधानीके साथ उष्ण वीर्य और शोषक उपाय किये जावें तो लाभ हो सकता है। शारीरिक शक्ति और उष्णता बढ़ने पर यह शैथिल्य दूर हो जावेगा। पीली अंजीर, राई, गेहूँ की भूसी, और गिलेअरमनी पानीमें औटाकर कुल्ले करे। शारीरिक पुष्टिके लिये सौंफ, बालछड़, कुन्दरूका गोंद, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद और मस्तगीका काढ़ा कर घूंट घूंट कर गुनगुना पिलावे। जुन्दबेदस्तर और सुकबीनजका ठुड्डीके नीचे लेप करे। जैसे सर्दी और तरीसे कण्ठ शैथिल्य होता है, उसी तरह अन्ननलिकाका पर्दा भी ढीला पड़ जाता है। ऊपर लिखा इलाज दोनोंके लिये लाभदायक है।

कण्ठनलीशोथ--कण्ठनलीकी श्लेष्मिक झिल्लीमें जो शोथ और क्षत हो जाता है उसे कण्ठ नलिका शोथ कहते हैं। जब यह साधारण और नवीन रहता है, इसे डाक्टर लोग सिम्पिल एक्यूट इनफ्लोमेटरी **सोरथ्रोट** कहते हैं। इसके पूर्व रूपमें कण्ठनलिका की श्लैष्मिक झिल्लीमें साधारण शोथ होता है, श्लैष्मिक कला आरम्भमें सूखी सी रहती है, फिर उसमें लालिमा आ जाती है, फिर वह मोटी पड़ जाती और फिर कफसे घिरी दिखाई पड़ती है और चारों ओर क्षत हो जाते हैं। कमजोर मनुष्योंको यदि गीला रहना पड़े अथवा शीत लग जाय तो यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इस बीमारीका रूप प्रकट होनेपर कण्ठनलिका उष्ण और शुष्क मालूम पड़ती है, गलेके नीचे कोई वस्तु उतारना कठिन होता है। गला बैठ जाता है,

खांसी की प्रबलता होती है ; किन्तु कफ निकालना कष्ट कर होता है। ज्वर आ जाता है, कभी कभी ज्वर प्रबल हो जाता है। गलनली देखनेसे उसके पर्दे और श्लैष्मिक कलामें शोथ मालूम पड़ता है, कभी कभी मुखमण्डल, ग्रीवा, छाती और कन्धेके पासके चमड़ेमें ललाई आ जाती है। प्रायः रोगी एक सप्ताह कष्ट भोग कर आराम होता है। गलौघके लक्षणोंसे इसकी कुछ समानता प्रकट होती है। गलरोगमें वर्णित कफ रक्तज व्याधिके अनुसार कुल्ले कराने, शोथमें फुरहरीसे दवा लगाने, कवल धारण करने और कफ ढीला करके निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। डाक्टर लोग नाइट्रेट आफ सिलवर गलेमें लगाते हैं। एक सलाईमें रूई लपेटकर पीडित स्थानको नित्य साफ कर तब कुल्ले और लगाने की दवाका उपयोग करना चाहिये। गरम पानीसे सेंक करें, बाहर अलसी की पुल्टिश बांधें। गरम पानीमें फिटकरी मिलाकर बारम्बार कुल्ले करें। भुना सोहागा, कत्था, माजूफल, और हर्रा पीसकर गूलरके दूधमें लपेट क्षत स्थानमें लगावे। गूलर की पत्ती पानीमें पकाकर उसीसे कुल्ले करे। कटसरैया की पत्ती पानीमें पकाकर उसीका धुआं गलेके भीतर लेवें। खानेका सोडा पानीमें पकाकर उसमें ग्लिसरीन बोरैसिस मिलाकर कुल्ले करे।

पुरातनगलशोथ--यही गलशोथ जब पुराना पड़ जाता है तब उसे जीर्ण गलशोथको डाक्टर लोग क्रानिक इनफ्लेमेशन आफ म्यूकस-मेम्बरेंस कहते हैं। इसके पूर्वरूपमें स्थानिक शोथके साथ शिथिलता आ जाती है, कण्ठनली की श्लैष्मिककला और विशेषकर सिराओंमें रक्तका आवेग और वेदना होती है। गलेका शोथ रहते हुए यदि अधिक बोला जाय अथवा तमाखू आदि उग्र पदार्थ खाये जायं तो यह व्याधि पुरानी पड़ जाती है। इसमें गलेमें सुरसुरी बनी रहती और खांसी आती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कण्ठनलीमें कोई वस्तु अटकी हुई है ; इसलिये रोगी उसे निकालनेके लिये खाँसता रहता है। अतिजिव्हा अर्थात कौवा बढ़ जाता है। कभी कभी

नूतन गलशोथके लक्षण इतने बढ़ जाते हैं कि उससे रोगीको बहुत कष्ट होता है। किन्तु पुरातन गलशोथमें ज्वर नहीं रहता है। ऊपर लिखी हुई औषधियोंका सावधानीसे प्रयोग करे। शोथ स्थानमें संकोचक औषधियां लगावे। शोथ बढ़ जाने पर उसे आराम करने का उपाय करे और आवश्यकता हो तो उसे छंटवा दे। कोठा साफ रखनेका प्रयत्न करे, शरीर दुर्बल न होने पावे। तेज शराब, और कटुतीक्ष्ण आहारका सेवन तथा तमाखूका प्रयोग बन्द करदे।

कण्ठरोगोंकी सामान्य चिकित्सा

ऊपर भिन्न भिन्न कण्ठ रोगोंके लक्षण और साथ ही उनकी चिकित्सा लिखी गयी है। यदि रोगका निश्चय न हो सके अथवा चिकित्सामें कोई अन्य असुविधा हो तो दोष विचारके अनुसार सामान्य चिकित्सा कर रोग आराम करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि **वातज गलरोग** मालूम पड़े तो दारुहल्दी, दालचीनी, नीम की छाल, मुनक्का, और इन्द्रजवका काढ़ा कर मधु मिलाकर देवे अथवा हरीतकीके काढ़ेमें मधु मिलाकर देवे। इससे वातज ही नहीं सब प्रकारके कण्ठ रोग अच्छे होते हैं। यदि गलरोगमें **पित्तप्रकोप** मालूम पड़े तो कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ़ी, नागर मोथा और इन्द्रजवको गोमूत्रमें सिद्ध कर यही काढ़ा पिलावे। यह भी पित्तदोषमें प्रधानतासे देते हुए भी सब प्रकारके गलरोगोंको आराम करता है। यदि **कफज गलरोग** हो तो मुनक्का, कुटकी, सोंठ, मिर्च, पीपर, दारुहल्दी, तजकलमी, हड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, पाढ़ी, रसवत, दूब और तेजबलका काढ़ा शहद मिलाकर देवे अथवा इन सबका चूर्ण कर शहदसे चटावे अथवा इन सबके चूर्णको शहदमें सान गोली बना मुखमें धारण करे। सब प्रकारके कण्ठरोगमें जवाखार, तेजबल, पाढ़ी

रसवत, दारुहल्दी, और पीपरका चूर्ण कर शहदमें सान गोली बना मुखमें धारण करे। इससे सब प्रकारके गलेके रोग नष्ट होते हैं।

अथवा **पञ्चकोलादि गुटिकाका** उपयोग करे। अर्थात् पीपली, पिपरामूर, चव्य, चित्रक, सोंठ, तालीसपत्र, बड़ी इलायचीके दाने, मिर्च, दालचीनी, पलाशक्षार, मुष्कक अर्थात मोखाका क्षार या राख, यवक्षार सबको कपड़ छान चूर्णकर दूने पुराने गुड़को पकाकर उसीके पाकसे बेर बराबर गोली बना सात दिनों तक उन गोलियोंको मोखे की राखमें दबाकर रखे। इसके बाद उपयोग करे। इन्हें मुखमें रखनेसे सब प्रकारके कण्ठरोग आराम होते हैं। यह गोली अमृत समान लाभदायक है।

सर्वसर-मुखपाक

सम्प्राप्ति--वायु प्रकुपित होकर सारे मुखमें जब सञ्चार करने लगता है, तब मुखमें लाल और रूक्ष व्रण उत्पन्न करता है। पाककी जगह समय समय पर बदलती रहती है, ओंठ लाल हो जाते हैं, ओंठोंका चमड़ा पपड़ी बनकर निकलता है, जीभ भारी पड़ जाती है और फट जाती है, जीभमें कांटे आ जाते हैं। ठण्डे पदार्थों का स्पर्श जिव्हाको सहन नहीं होता, मुंह खोलनेमें कष्ट होता है। इस विकार को मुख पाक या सर्वसर कहते हैं। यह चार प्रकारका होता है। (१) वातज (२) पित्तज (३) कफज और (४) रक्तज। इसे अंग्रेजीमें स्टोमाटायटीज़ (Stomatitis) कहते हैं।

लक्षण--वाताधिक्यसे--जो मुखपाक होता है उसमें मुखमें छोटी छोटी फुंसियां उठ आती हैं। उनमें सुई चुभाने की सी वेदना होती है। सारे मुखमें ऐसे स्फोट भर जाते हैं। **पित्तप्रकोपसे** जो मुखपाक होता है उसमें जो छाले आते हैं उनका रङ्ग लाल होता है, कभी कभी पीले भी होते हैं अथवा आरम्भमें लाल होकर फिर

पीले पड़ जाते हैं। ऐसे छालोंमें जलन और चुनचुनी बहुत होती है मुंह कड़ुवा रहता है और क्षारसे जले हुए व्रणके समान व्रण होते हैं, **कफज मुखपाकमें** जो छाले आते हैं उनका रङ्ग वही रहता है जो मुखका होता है। कफज छालोंमें दर्द बहुद कम रहता है, मुँह गुल-चट रहता, मुँहमें लिबलिबापन बना रहता है। मुख और छालोंमें खुजली बहुत मालूम पड़ती है। **रक्तजसर्वसरमें** सब लक्षण पित्तज मुखपाककेसे होते हैं। किन्तु पित्तके फफोलोंमें पीलापन भी होता है, रक्तज मुखपाकके छाले लाल ही रहते हैं।

चिकित्सा

वातजसर्वसर--(१) वातज सर्वसर या मुखपाकमें पिप्पली, सेंधानमक और इलायचीका चूर्ण मुँहमें रगड़े (२) पंचलवण (सेंधानमक, सोंचर नमक, सांभरनमक, समुद्रनमक और विडनमक) का चूर्ण बारीक पीसकर प्रतिसारण करे अर्थात् रगड़े (३) माल-कांगनीका चूर्ण मुंहमें रगड़े (४) वातनाशक देवदार्व्यादिगण (देव-दारु, तगर, कूट, बरियारी, सहदेवी,) अथवा दशमूल (शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी भटकटैया, बड़ी भटकटैया, गोखरू, बेल, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, और काश्मरी) की औषधियां डाल कर तेल सिद्ध करे और मुँहमें लगावे और उसीका कवल धारण करे। इसी तेल को नाकमें भी डाले (५) शालकी छाल, खिरनी की छाल या बीजी, एरण्डकी बीजी, हिंगोट (इंगुदी-इंगुवा) की बीजीका गूदा, महुवा की गोही, गूगल, गन्धतृण, जटामांसी, सारिवा, शिलारस, छरीला, और मोमको तेलमें पकाकर अथवा इन सब दवाइयोंका चूर्णकर तेल या घीमें सानकर श्योनाककी लकड़ी पर शहद लगाकर इस दवाको या तेलको चुपड़कर मुँहमें लगा दे। इसीका धूम्रपान करे।

पित्तजसर्वसर--(१) पित्तज मुखपाकमें पहले वमन-विरेचन

देकर शरीर शुद्ध करे। इसके वाद मधुर-शीतल और पित्तनाशक औषधियोंसे सिद्ध किये हुए घृतका कवल धारण करे। ऐसी ही औषधियोंका नस्य देवे। (२) चमेलीकी पत्ती, गुर्च, मुनक्का, जवासे की जड़, दारुहल्दी, हर्रा, वहेड़ा और आंवलाका काढ़ा बनाकर ठण्डा होनेपर मधु डाल कुल्ले करे। (३) हल्दी, नीमके पत्ते, मुलेठी और गुलनीरोफरके कल्कसे सिद्ध किये हुए तेलके लगाने और कवल धारण करनेसे पित्त जन्य मुखपाक अच्छा होता है। (४) पानीमें फिटकरी डाल कर कुल्ला करे (५) चमेलीके पत्ते चबाया करे।

कफजमुखपाकमें--(१) कफजन्य मुखपाकमें कफ नाशक औषधियोंके काढ़ेसे कुल्ले करे और ऐसी ही औषधियोंके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किये हुए तेलका कवल धारण करे। (२) अडूसेके पत्तोंके रसमें मधु डालकर मुखमें लगावे (३) अतीस, पाढ़ी, नागर-मोथा, देवदारु, कुटकी, और इन्द्रजव इन सबका चूर्ण कर गोमूत्रमें मिलाकर पीवे। (४) परवरके पत्ते, सोंठ, हर्रा, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रायण, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी और गुर्च का काढ़ा मधु डालकर पीवें (५) कठिन और स्थिर दाने हों तो उन्हें सागोनके खरखरे पत्ते से रगड़ कर घिसे।

रक्तजमुखपाक--(१) सभी मुखपाकमें विशेषकर रक्तज मुख-पाकमें फस्द खुलवावे (शिरावेध करे), शिरोविरेचन देवे अर्थात छींक लाने वाली और नाकसे पानी बहाने वाली क्रिया करे, वमन विरेचन देवे। शिरावेध तालूके नीचे या जीभके नीचे करे (२) परवर की पत्ती, नीम की पत्ती, जामुन की पत्ती, आमकी पत्ती और चमेली की पत्ती एक साथ पकाकर काढ़ा करे और फिर छान कर उसीसे कुल्ले करे (३) बरगद, पीपल, गूलर, पाकर और बेल अथवा पलाश-पीपल की छालका काढ़ा कर मुख धोवे, कुल्ले करे (४) त्रिफलाका काढ़ाकर कुल्ले करे (५) दारुहल्दी की छाल या गीली लकड़ी लेकर उसका रस निकाले या काढा कर फिर उसे औटा कर गाढ़ा करे। इसे

रसक्रिया कहते हैं। इसे मधुके साथ मुखमें लगावे और मधुके साथ चटाकर खिलावे। इससे मुखरोग, रक्तदोष, और नाड़ी व्रण अच्छा होता है। (६) सतवनकी छाल, सुगन्धवाला, परवरके पत्ते, नागरमोथा, हर्रा, लालचन्दन, कुटकी, मुलेठी और अमिलतासका गूदा पकाकर पीनेको दे और इसीसे कुल्ले करे। (७) काले तिल, नील कमल, घी, मिश्री, दूध और शहद मिलाकर मुखमें कवल धारण करे। इससे दाह, मुखपाक आदि नष्ट होता और चूनेकी तेजीसे मुख जल गया हो तो उसकी भी शान्ति होती है। (८) स्याह जीरा, कूट, और इद्रजव समान भाग लेकर मुँहमें रख चबाता रहे, इससे मुखपाक, व्रण, लालास्राव और मुखदुर्गन्धि दूर होती है।

त्रिदोषजमुखपाक—यद्यपि ऊपर त्रिदोषज मुखपाकका वर्णन नहीं हुआ; तथापि कुछ ऐसे मुखपाक भी देखे जाते हैं; जिनमें ऊपर लिखे मुखपाकोंसे कुछ विचित्रता रहती है। घाव गहरा रहता है, और मुखमें दुर्गन्धि भी अधिक रहती है। ऐसा मुखपाक थोड़े समयमें ही अधिक स्थानमें फैल जाता है। जहाँ जहां उसका मवाद लगता है वहां भी घाव हो जाता है। इसमें दोषोंकी तेजी और दुर्गन्धि अधिक रहती है। ऐसे मुखपाकमें टीस या वेदना भी अधिक रहती है। इसमें दोष सिरमेंसे उतरकर मुखमें आकर आश्रय लेते हैं। प्रायः ऐसा मुखपाक निर्बल लड़कोंमें अधिक देखा जाता है। इसमें तीनों दोषों की विकृतिके लक्षण मिलते हैं। आचार्य वाग्भटने मुखरोग प्रतिषेधाध्यायमें सान्निपातिक मुखपाकका ज़िक्र यह लिखकर किया है कि इसकी चिकित्सा दोषाधिक्यानुसार करनी चाहिये। इससे स्पष्ट है कि त्रिदोषज मुखपाककी कल्पना उन्हें भी थी। त्रिदोषज मुखपाकमें पहले शिरा मोक्षण कराना आवश्यक है। फस्द खोलनेके बाद विरेचन द्वारा दोष निकलनेके बाद अमरबेलिका क्वाथ देना चाहिये। दोष और मवादके वेग और तेजी निकालनेके लिये सिमाकके पानी और खट्टे अंगूरके रससे कुल्ले कराने चाहिये। दुर्गन्धित और

गहरा घाव रोकनेके लिये हकीम लोग फलाफयून औषधिका उपयोग करते हैं। अर्थात् बढ़िया बिना बुझा हुआ चूना १ भाग, तबकिया हड़ताल शुद्ध आधा भाग, सज्जी आधा भाग, अकाकिया आधा भाग सबको अंगूरके सिरकेमें पीसकर टिकियां बनाकर रखे। इन टिकियों को मुखमें रखनेसे निकम्मा मांस नष्ट हो जाता है, व्रणका फैलना रुक जाता है और मवाद आना बन्द हो जाता है। अथवा खट्टे अनार की छाल ३ तोले, मीठे अनारका बकला ३ तोले, माजूफल एक तोला, अनारके फूल १ तोला, फिटकिरी १ तोला, कागजकी जली हुई राख १ तोला, अकरकरा और मिश्री एक एक तोला, सिमाक डेढ़ तोला सेंधानमक आधा तोला और नौसादर आधा तोला लेकर चूर्ण करें और फिर हिब्बुल्लासके सिरकेमें घोटकर टिकिया बना लें। इसे मुँह में रखने और इसीको मुखमें रगड़नेसे मवाद रुक जाता, घाव भर जाते और दुर्गन्धि हट जाती है। अथवा जावित्री, कंकोल, कपूर और सुपारी समान भाग लेकर सबके बराबर खैरका कत्था मिलाकर पानीमें घोट गोली बनावे। इस गोलीको मुखमें रखनेसे सब प्रकारके मुखपाक नष्ट होते हैं। अथवा परवरके पत्ते, नागरमोथा, आंवला, गुलनीलोफर, जवासेकी जड़, लालचन्दन, सारिवा इन सबोंको समान भाग ले काढ़ा करे। ठण्डा होनेपर छानकर मिश्री और शहद मिलाकर पीवे। इससे त्रिदोष जनित तथा सब प्रकारके मुखपाक नष्ट होते हैं। अथवा चिरायता, कुटकी, चमेलीकी पत्ती, परवरकी पत्ती, और नीमकी छालका काढ़ाकर शहद मिलाकर पीवे। इन्हीं औषधियोंके चूर्णमें शहद मिलाकर प्रतिसारण करे। अथवा मुनक्का, परवरके पत्ते, मुलेठी, नीमकी छाल, निशोथ, हल्दी, चमेलीकी पत्ती, सबको पीसकर थोड़ा शहद और सेंधानमक मिलाकर कुनकुना कल्क मुखमें रखे। इससे व्रणका शोधन और मुखपाक नष्ट होगा।

विशेष—सब प्रकारके मुखपाकमें त्रिफला, पाढ़ी, मुनक्का, और चमेलीके फूलके काढ़ेमें मधु मिलाकर मुख धुलाना चाहिये। अथवा

इन औषधियोंको चबाकर थूंकना चाहिये (२) कुठेरादि गण (तुलसी काली, सफेद तुलसी, बनतुलसी, दवना, मरुवा, कसौंधी, बायबिडंग,) की औषधियोंको खूब चबाकर थूंके। (३) कंकोल और मिश्री मुंहमें दबाकर रस निगले (४) भुनी फिटकरी पानीमें डाल उसीसे कुल्ले करे (५) भुनी फिटकरी और इलायचीके दाना पीसकर मुंहमें रगड़कर लार गिरावे (६) सफेद कत्था, माजूफल, छोटी पीपर, बड़ी इलायची पानीमें घिस गूलरका दूध मिलाकर दिनमें कई बार मुंहमें लगावे। (७) सफेद चिरमिटीके पत्ते चबावे (८) सङ्गजिराहत पीस मक्खनमें मिला मुंहमें लगावे (९) भांगरा अथवा अरहरके पत्ते चबाकर लार गिरावे (१०) रूसेके पत्तोंके रसमें अनन्तमूल घिसकर शहद मिलाकर लगावे (११) काले तिल चबावे (१२) पीपर, मिर्च कुलींजन और इन्द्रजव चबाकर लार गिरावे।

मुखस्राव

कभी कभी देखा जाता है कि मुँहसे लार अधिक निकलती है। विशेषकर बालकोंके इतनी लार निकलती है कि कपड़े और शरीर भीगा रहता है। आमाशयमें उष्णता अधिक रहनेसे वह उष्णता लालाग्रन्थियोंको उत्तेजित करती है और वे अधिक लार निकालती है, इससे रोगीको प्रायः अजीर्ण रहता है। पेट खाली रहे अथवा आवश्यकतासे कम भोजन मिले तब भी ऊष्मा बढ़कर क्लेदांशको उत्तप्त करती है, जिससे क्लेदका पतला भाग लार रूपसे निकलने लगता है। इसे मुखस्राव कहते हैं। कभी कभी सोनेके समय लार अधिक गिरती है और जागृतावस्थामें थूंक अधिक आता है। भोजन करनेमें उष्णता की कमी हो जानेसे मुखकास्राव कम हो जाता है। (१) इसमें अनारके फलोंका रस, बिहीका रस, और कच्चे अंगूरके फलोंका रस निचोड़कर पकावें, जब गाढ़ा हो जाय तब उसे मुखमें धारण करें। (२) अथवा सेव, बिहीदाना, सिमाक, मसूर की

दाल, गुलाबके फूल, अपामार्ग, सहतूतकी डाली और अनारके फूल पानीमें पकाकर अथवा भिगाकर रस निकाले और उसीसे कुल्ले करें (३) ताजी हरी कासनी (न मिलने पर सूखी) अधकुचली कर सेंधा नमकके साथ खावे। इससे भीतरी उष्णता शान्त होगी और क्लेदका बहना बन्द होगा। कभी कभी आमाशयमें सर्दी बढ़ जाने और श्लेष्मा अधिक उत्पन्न हो जानेसे भी लार बहती है। ऐसे मुख-स्रावके कारण प्रायः पाचन शक्तिमें भी निर्बलता होती है। मुंह खट्टा रहता है, पेट और मलमें चिकनापन होता है और मुंहके लुआबमें गाढ़ापन रहता है। ऐसी अवस्थामें सोया और मूलीके बीज पानीमें पकाकर पीवे और वमन करे। गेहूँका सत्तू थोड़ी सी राई मिलाकर नित्य खावे। खाली पेट प्रातःकाल एक या दो तोले कांजी अथवा द्राक्षासव पीवे। इसके सिवाय कुन्दरूका गोंद और रूमीमस्तगी मुखमें रख चबाता रहे। **यष्ठीमधुतैल** के उपयोगसे सब प्रकारका मुखस्राव नष्ट होता है। मुलेठी चार तोले, नील कमल ३०संख्या दोनोंका कल्क कर एकसेर तिलका तेल और दो सेर गायका दूध डाल तेल सिद्ध करे। इस तेलको मुखमें रखकर पान धारण करे। इस तेल की शरीर पर मालिश करनेसे सब शारीरिकदोष नष्ट होते और सोनेके समान चेहरा निर्मल होता है।

मुखदुर्गन्धि

ठीकसे दतून न करने, मंजन घिसकर मुंह न धोने, अथवा खाने के बाद अच्छी तरह कुल्ले कर और दांतोंका मैल तथा जूठन न निकालनेसे मुखमें सड़न पैदा होती है, जिससे मुखसे दुर्गन्धि निकलने लगती है। इसे मुखकी दुर्गन्धि या **पूत्यास्यता** कहते हैं।

कभी कभी शरीरके भीतरी विकारसे भी ऐसी दुर्गन्धि आया करती है। बाह्य ऊष्माके बढ़ने पर आमाशयमें उष्णताके कारण तालू

के आसपास और दाँतोंकी जड़ों तक उष्णता पहुँच जाय तब मुखमण्डल की तरी और क्लेदमें उफान आता है और इससे विकृति होकर दुर्गन्धि पैदा हो जाती है। ऐसे मनुष्य यदि उष्ण आहार विहार करते रहें तो इस विकृति का क्रम जारी रहता है। ऐसे मनुष्यों की जबड़ों की विकृति दांतों तक पहुंचकर दांतोंको विकृत बना देती और उन्हें काला कर देती है। इस ऊष्माको दूर करनेके लिये पीले आलू बुखारेका काढ़ा प्रति दिन सबेरे लेवे। इससे आमाशयमें आवश्यक सर्दी पहुँचेगी और दुर्गन्धित क्लेद बह कर निकल जावेगा। ऐसे लोगों को जौका सत्तू और चीनी ठण्डे पानीमें अथवा बर्फ मिलाकर खाना चाहिये। ऐसे लोगोंको खीरा, आलू बुखारा, शफतालू, और तरबूज हितकारी है। ऐसे लोगोंको सबेरे कुछ खा लेना चाहिये, जिससे आमाशयमें ऊष्मा बढ़ने न पावे।

कभी कभी मुखमें दुर्गन्धि आमाशयमें दुर्गन्धित कफके इकट्ठा होनेसे भी आने लगती है। ऐसे दुर्गन्धित कफसे आमाशयस्थ ऊष्माके कारण दूषित वाष्पकण ऊपर उठकर मुखमें आश्रय लेते हैं और मुखसे दुर्गन्धि निकलने लगती है। ऐसी दुगन्धि अच्छी तरह मुँह धोने और भोजन करनेसे दब जाती है। इस विकृतिको निकालने के लिये नमकीन मछली खाकर वान्ति करे अथवा मूली, चौंरा और सोयाका काढ़ा पीकर वमन करे। एलुवा खाकर अफसन्तीनकी शराब पीवे। सोंठ अथवा अदरखका मुरब्बा खाया करे। इतरीफल, सआतर और शहदका बना गुलकन्द अथवा मधुसूक्त पीवे। इसमें तरी पैदा करने वाले स्निग्ध भोजन करना हितकारी होता है। मसाले और घी डालकर बनायी हुई वस्तुएं लाभदायक होंगी।

कभी कभी मस्तिष्क और ऊर्ध्वाङ्गमें सञ्चित श्लेष्मांशके सड़नेसे उसमें दुर्गन्धि आ जाती है। वह दुर्गन्धि ऊपरसे उतरकर दांतों की जड़ोंपर पहुँच जाती है। यह विकृत अंश मुख और दाँतोके क्लेदांशको विकृत कर देता है। यदि किसी खट्टी या खारी वस्तुसे कुल्ले किये जायँ तो दांतों की जड़ों और मसूड़ोंसे खिंचकर चेपदार क्लेद कुल्लेमें आ जाता

है। इससे कुछ समयके लिये दुर्गन्धि मिटजाती है; किन्तु समूल नष्ट नहीं होती। क्योंकि दाँतों, मसूड़ों और मुखसे दुर्गन्धित अंश निकल जाने पर भी ऊर्ध्वाङ्गसे उसका आना जारी रहता है। यह भी होता है कि कुल्लेके साथ दाँतोंकी जड़ोंसे सभी दुर्गन्धि बाहर नहीं होने पाती है। ऊर्ध्वाङ्ग और मुखकी सफाई तथा मसूड़ोंकी पुष्टताके लिये अधीबा और अनारके फूल सिर्केमें औटा कर कुल्ले करे। इसी काढ़ेमें अंगूरका रस मिला लेनेसे अधिक लाभ होता है। मुखमें **कस्तूरीवटी** धारण करनेसे मस्तिष्कका शोधन होता है, वहां दुर्गन्धित क्लेद इकट्ठा नहीं हो पाता और मसूड़ेंको पुष्टि मिलती है। सुपारी कतरकर ४ माशे लेवे, उसमें लौंग, अकरकरा और कुलींजन चार चार माशे मिलावे। गुलाबके फूल, सफेद चन्दन, और हर्र सात सात माशे लेवे। वंशलोचन २ माशे, कस्तूरी और कपूर छः छः रत्ती मिलावे। सबको कूट छानकर बिहीदानेके लुआबमें घोंटे, फिर गुलाबजलसे घोट कर गोलियां बना ले। इन गोलियोंको यों ही अथवा पानके साथ मुंहमें रखे तो मुखकी दुर्गन्धि दूर होगी।

प्रायः उष्ण प्रकृति वालोंका क्लेदांश उष्णतासे सड़कर मुख और दाँतों की जड़ोंमें आश्रय लेता है और मुखस्थ क्लेद और जलांशको भी बेकाम कर देता है। ऐसे लोगोंके मसूड़ोंसे प्रायः रक्त निकला करता है। जिससे मुखसे दुर्गन्धि आने लगती है। ऐसी स्थितिमें हर्र का काढ़ा पीना हितकारी होता है। सिरकेका कवल धारण करे। कभी कभी ऐसे दोष बढ़ कर मसूड़ोंमें घाव कर देते हैं और ऐसी विकृति वहां जमकर मवाद पैदा करती है; अतः मुखसे अधिक दुर्गन्धि निकला करती है। ऐसी दशामें माजूफल, वंशलोचन, गुलाबके फूल और अकाकियाका मंजन करे, इन्हीं की गोली बनाकर मुखमें रखे।

कभी कभी विकृत क्लेद दांतोंकी जड़ोंमें प्रविष्टकर दांतोंको भी खराब कर देता और उनकी जड़ोंको सड़ा देता है। इससे भी मुखमें दुर्गन्धि रहती है। दांतोंका भाग अधिक विकृत हो गया हो

तो दांत उखड़वा दे, जिससे पूतिसंचय होनेका आश्रय स्थान न रह जाय। समुद्रफेन, सेंधानमक और सीपीकी राख दांतोंमें मले। अधीरा, माजूफल, सोंठ, रूमी मस्तगी, अनार की छाल, भुनी फिटकरी और गुलाबके फूलका मंजन बनाकर नित्य मंजन किया करे।

कभी कभी फेफड़ोंके सड़नेसे दुगन्धित अंश मुख तक आते और मुखको दुगन्धित कर देते हैं। उरःक्षत और क्षयकी अन्तिम दशामें ऐसी अवस्था होती है। यह असाध्य अवस्था है।

सब प्रकार की मुख दुर्गन्धिमें वान्तिकराकर दोषोंको निकाल देना अच्छा होता है। तीक्ष्ण धूमपान और तीक्ष्ण नस्य देकर दुगन्धित और सड़े क्लेद और श्लेष्माको निकाल देना हितावह है। (१) लज्जालू, धौके फूल, लोध्र, प्रियंगु और पद्मकाष्ठका काढ़ा कर उसीसे कुल्ले किया करे। इन्हीं वस्तुओंका चूर्णकर मुहमें रगड़े। शीताद और उपकुश रोगमें लिखित नस्योंका उपयोग करे। (२) **त्रिफलादिवटी** मुखमें रखा करे। त्रिफला, चीता, चिरायता, मुलेठी, सरसों, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, जवाखार, अमचुर या कोकम, अम्लवेतस, पीपल की छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, अर्जुन की छाल, विटखदिर की छाल, (न मिलनेपर बबूल की छाल) और खैर इनका समान भाग लेकर चूर्ण करे और इन्हीं औषधियोंके काढ़ेमें चूर्णको घोटकर गोली बना ले। यही त्रिफलादिवटी है। इनको मुखमें रखनेसे गलेकी बीमारियाँ, ओंठ और तालू की बीमारियाँ, रोहिणी, मुखशोष, और मुख दुर्गन्धि विकार दूर होते हैं। इसका आविष्कार विदेहाधिपति निमिराजने किया था। (३) बिजौरा नींबूके फलका छिलका मुखमें रख चबाते रहनेसे सब प्रकारकी मुखकी दुर्गन्धि और अपचनसे होनेवाली दुर्गन्धि, और अपानवायु की दुर्गन्धि नष्ट होती है। (४) चमेलीकी पत्ती, कपूर, सुपारी और कंकोल पीस कर गोली बनावे। इस गोलीको मुखमें रखनेसे दुर्गन्धि दूर होती और मुखका सौभाग्य बढ़ता है। (५) नागरमोथा, एलुवा, मुलेठी,

धनियां, कूट, कडुवा, छोटी इलायची, बड़ी इलायची सबको गुलाब-जलमें पीसकर गोली बनावे। इसे मुखमें रखनेसे सब प्रकारकी मुख दुर्गन्धि यहां तक कि शराब पीने और लहसुन तथा प्याज खानेसे जो मुखसे दुर्गन्धि आती है वह भी दूर होती है। (६) एक सेर गोमूत्रमें १ तोला सौंफ, १ तोला सुगन्ध वाला, १ तोला हाहू बेर और १ तोला कूट डालकर पकावे जब एक छटांक अन्दाज जलशेष रहे तब उतार छान कर उसमें एक छटांक हर्राका चूर्ण डालकर घोटे और गोली बनाकर मुखमें रखे इससे सब तरह की मुख दुर्गन्धि दूर होती है। (७) कूट, मरुवाकी पत्ती, चमेली की पत्ती, जावित्री, दालचीनी सबको पीसकर घीमें सान गोली बनावे और मुखमें रखे तो सब प्रकार की मुख दुर्गन्धि तुरन्त नष्ट होती है।

गलगण्ड (घेघा)

गलगण्ड गलेके बाह्य भागका रोग है। वायु दूषित होकर मुखाश्रित कफ और मेदको दूषित कर देता है, जिससे गलेके ऊपर एक गोल लम्बा भाग लटकने लगता है। इसे गलगण्ड या घेघा कहते हैं। कालान्तरसे यह बढ़ते बढ़ते अण्डेके समान गलेमें लटकने लगता है। और उसमें वेदना भी होती है। इसमें वात, कफ और मेद की विकृति होती है। अतएव जिस गलगण्डमें जिसकी प्रधानता होती है वह उसी नामसे कहा जाता है। (१) अर्थात वातजगलगण्ड (२) कफजगलगण्ड (३) मेदजगलगण्ड।

वातजगलगण्ड--जिस गलगण्डमें वात-विकृतिकी प्रधानता रहती है, उसका रङ्ग कालापन लिये हुए अथवा आरक्त रहता है। उसके ऊपर काली सिराएं उभड़ी रहती हैं, इस गलगण्डमें चुभन या तोद अधिक होता है। यह ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों तालू और गला सूखा सा रहता है। मुखका स्वाद खराब रहता है।

इसमें सेंक करना और रक्तमोक्षण कराना हितकारी होता है। इसके पश्चात काले तिल, कुसुमके बीज, अलसी, चिरौंजी, पटुवाके बीज और सनके बीज पीसकर पकाकर पुल्टिश बनाकर बांधे। घाव भरने पर आवे तब सहिजन, सावरलोध, अग्निमन्थ, गज पीपर, पुनर्नवा, नील, गुर्च, मन्दारकी जड़, मैलफलके फूल (न मिलनेपर फल), और निशोथका चूर्णकर शराब अथवा कांजीमें पीस पीसकर थोड़ी थोड़ी देरमें लेप लगावे। इसके सिवाय गुर्च, नीमकी छाल, कुरैया की छाल, हंसराज, बरियारीकी जड़, कंघी की जड़, पीपर, और देवदारुका काढ़ा पिलावे। अथवा इन औषधियोंके कल्कमें सिद्ध किया हुआ तेल पीनेको देवे।

कफजगलगण्ड——कफज गल गण्ड की गांठ स्थिर होती है अर्थात् शीघ्रतासे नहीं बढ़ती, उसका रङ्ग बाहरी गलेके चमड़ेके समान ही रहता है। टटोलनेसे यह ठण्डा और कड़ा मालूम पड़ता है। इसमें खुजली होती है। यह ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों तालू और गलेमें लिपटा रहता है और तालु और गलेमें लिबलिबापन मालूम होता है। मुंह मीठा गुलचट रहता है।

(१) कफजन्य गलगण्डमें भी वातजगलगण्डके समान चिकित्सा करनी चाहिये। किन्तु स्वेदन-क्रिया और विम्लापन अर्थात मर्दन क्रिया विशेषतासे करनी चाहिये। (२) बन तुलसी, अतीस, करियारी की जड़, ककड़ासिंगी, घुंघची, कड़ू लौकी और सरसों पीसकर पलाशक्षारके पानीमें सान बारम्बार लेप करे। (३) पहले कोदवका भात खाकर ऊपरसे जलकुम्भी अथवा सेवारकाक्षार गोमूत्रमें पका कर पिलावे। (४) वत्सकादिगण (कुरैया की छाल, मूर्वा, भारंगी, कुटकी, काली मिर्च, अतीस, सेहुँड, इलायची, पाढ़ी, जीरा, सोना-पाठा, मैनफल, अजमोदा, सरसों, वच, स्याहजीरा, हींग, वायविडंग, बनतुलसी, पीपल, पिपरामूर, चित्रक, चव्य, और सोंठ) तथा पंच-लवण (सेंधा, सोंचर, सांभर, समुद्र और विडलवण) से सिद्ध किया

हुआ तेल पिलावे (५) कफनाशक धूम्रपान, वमन और नस्य आदि उपचार जारी रखे।

मेदोजन्यगलगण्ड--मेदविकृतिके कारण जो गलगण्ड होता है वह कफजन्य गलगण्डके समान ही होता है। किन्तु रोगीका शरीर जैसा स्थूल या पतला होगा उसीके अनुसार गलगण्ड की गांठ बड़ी या छोटी होगी। मेद विकृतिके गलगण्डमें गलेमें शब्द होता है और स्वर बारीक पड़ जाता है। (१) मेदोजन्य गलगण्डमें शिरामोक्षण कराना उचित है। साथ ही कफनाशक उपाय करते रहना चाहिये (२) असनादिगण की (असन की छाल, तिनिशकी छाल, भोजपत्र, अर्जुन, पूतिकरंज, खैर, सफेद खैर, सिरस, शीशम, ककड़ासिंगी, सफेद चन्दन, लालचन्दन, हरिचन्दन, ताड़, पलाश, अगरु, सागोन, साखो, रालाधूप, सुपारी, धव, इन्द्रजव, पीतशाल (साजा या महाशाल) और शालवृक्ष की छाल) औषधियोंका चूर्ण नित्य सबेरे गौमूत्रके साथ पिलाया करे (३) यदि ऊपरके उपायसे अच्छा न हो तो शस्त्रक्रिया द्वारा चीर कर व्रणके समान चिकित्सा करे। ऐसी शस्त्र चिकित्सा वातजन्य और कफजन्य गलगण्ड पर भी करनी चाहिये।

दन्त और दन्तमूल शारीर

दांतोंकी बनावट--मुखमण्डलका बहुत महत्वपूर्ण अंग दांत हैं। जिस समय बालक उत्पन्न होता है उस समय उसके दोनों हनुओं के भीतर २० पतनशील दांतोंके शिखर बने रहते हैं। ये धीरे धीरे बढ़ते हैं और छठे, सातवें या आठवें महीने तक मसूड़ोंको छेदकर हनुओंसे बाहर आने लगते हैं। इस प्रकार दांतोंके निकलनेकी क्रियाको दन्तोद्गम या दन्तोद्भेद कहते हैं। सबसे पहले नीचेके हनुसे आगेके दो दांत-अन्त:कतनक-निकलते हैं। इसके बाद ऊपरी हनुसे आगेके दो दांत-ऊर्ध्वअन्त:कर्तनक-निकलते हैं। इन दो दो

इसमें सेंक करना और रक्तमोक्षण कराना हितकारी होता है। इसके पश्चात काले तिल, कुसुमके बीज, अलसी, चिरौंजी, पटुवाके बीज और सनके बीज पीसकर पकाकर पुल्टिश बनाकर बांधे। घाव भरने पर आवे तब सहिजन, सावरलोध, अग्निमन्थ, गज पीपर, पुननवा, नील, गुर्च, मन्दारकी जड़, मैलफलके फूल (न मिलनेपर फल), और निशोथका चूर्णकर शराब अथवा कांजीमें पीस पीसकर थोड़ी थोड़ी देरमें लेप लगावे। इसके सिवाय गुर्च, नीमकी छाल, कुरैया की छाल, हंसराज, बरियारीकी जड़, कंघी की जड़, पीपर, और देवदारुका काढ़ा पिलावे। अथवा इन औषधियोंके कल्कमें सिद्ध किया हुआ तेल पीनेको देवे।

कफजगलगण्ड—कफज गल गण्ड की गांठ स्थिर होती है अर्थात् शीघ्रतासे नहीं बढ़ती, उसका रङ्ग बाहरी गलेके चमड़ेके समान ही रहता है। टटोलनेसे यह ठण्डा और कड़ा मालूम पड़ता है। इसमें खुजली होती है। यह ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों तालू और गलेमें लिपटा रहता है और तालु और गलेमें लिबलिबापन मालूम होता है। मुंह मीठा गुलचट रहता है।

(१) कफजन्य गलगण्डमें भी वातजगलगण्डके समान चिकित्सा करनी चाहिये। किन्तु स्वेदन-क्रिया और विम्लापन अर्थात मर्दन क्रिया विशेषतासे करनी चाहिये। (२) बन तुलसी, अतीस, करियारी की जड़, ककड़ासिंगी, घुंघची, कड़ू लौकी और सरसों पीसकर पलाशक्षारके पानीमें सान बारम्बार लेप करे। (३) पहले कोदवका भात खाकर ऊपरसे जलकुम्भी अथवा सेवारकाक्षार गोमूत्रमें पका कर पिलावे। (४) वत्सकादिगण (कुरैया की छाल, मूर्वा, भारंगी, कुटकी, काली मिर्च, अतीस, सेहुँड, इलायची, पाढ़ी, जीरा, सोनापाठा, मैनफल, अजमोदा, सरसों, वच, स्याहजीरा, हींग, वायविडंग, वनतुलसी, पीपल, पिपरामूर, चित्रक, चव्य, और सोंठ) तथा पंचलवण (सेंधा, सोंचर, सांभर, समुद्र और विडलवण) से सिद्ध किया

हुआ तेल पिलावे (५) कफनाशक धूम्रपान, वमन और नस्य आदि उपचार जारी रखे।

मेदोजन्यगलगण्ड——मेदविकृतिके कारण जो गलगण्ड होता है वह कफजन्य गलगण्डके समान ही होता है। किन्तु रोगीका शरीर जैसा स्थूल या पतला होगा उसीके अनुसार गलगण्ड की गांठ बड़ी या छोटी होगी। मेद विकृतिके गलगण्डमें गलेमें शब्द होता है और स्वर बारीक पड़ जाता है। (१) मेदोजन्य गलगण्डमें शिरामोक्षण कराना उचित है। साथ ही कफनाशक उपाय करते रहना चाहिये (२) असनादिगण की (असन की छाल, तिनिशकी छाल, भोजपत्र, अर्जुन, पूतिकरंज, खैर, सफेद खैर, सिरस, शीशम, ककड़ासिंगी, सफेद चन्दन, लालचन्दन, हरिचन्दन, ताड़, पलाश, अगरु, सागोन, साखो, रालाधूप, सुपारी, धव, इन्द्रजव, पीतशाल (साजा या महाशाल) और शालवृक्ष की छाल) औषधियोंका चूर्ण नित्य सवेरे गोमूत्रके साथ पिलाया करे (३) यदि ऊपरके उपायसे अच्छा न हो तो शस्त्रक्रिया द्वारा चीर कर व्रणके समान चिकित्सा करे। ऐसी शस्त्र चिकित्सा वातजन्य और कफजन्य गलगण्ड पर भी करनी चाहिये।

———

दन्त और दन्तमूल शारीर

दांतोंकी बनावट——मुखमण्डलका बहुत महत्वपूर्ण अंग दांत हैं। जिस समय बालक उत्पन्न होता है उस समय उसके दोनों हनुओं के भीतर २० पतनशील दांतोंके शिखर बने रहते हैं। ये धीरे धीरे बढ़ते हैं और छठे, सातवें या आठवें महीने तक मसूड़ोंको छेदकर हनुओंसे बाहर आने लगते हैं। इस प्रकार दांतोंके निकलनेकी क्रियाको दन्तोद्गम या दन्तोद्भेद कहते हैं। सबसे पहले नीचेके हनुसे आगेके दो दांत-अन्तःकर्तनक-निकलते हैं। इसके बाद ऊपरी हनुसे आगेके दो दांत-ऊर्ध्वअन्तःकर्तनक-निकलते हैं। इन दो दो

दांतोंके निकलनेके बाद प्राय: ऊपरी हनुसे दो बाह्यकर्तनक और फिर नीचेके हनुसे बाह्यकर्तनक निकलते हैं। इसके बाद ऊपर और नीचे दो दो प्रथम चवर्णक दांत निकलते हैं। इसके पश्चात कीलके समान भेदकदन्त निकलते हैं। इसके पश्चात द्वितीयचवर्णकदन्त निकलते हैं। इस प्रकार बच्चोंमें दश दाँत ऊपर और दश नीचे निकलते हैं। इन बीस दांतोंमें आठ चवर्णक, चार भेदक, और आठ कर्तनक दांत होते हैं। बड़े मनुष्योंमें ३२ दांत होते हैं; किन्तु शिशुओंमें तृतीय चर्वणक और अग्रचर्वणक नहीं होते। बच्चोंके ये दांत छठे वर्ष से गिरने लगते हैं और इनके स्थानपर नये और स्थायी दांत निकलने लगते हैं। पतनशील दन्त ६ से ६ महीने तकमें नीचेके अन्त: कर्तनक, ८ से १२ महीने तकमें ऊपरके चारों कर्तनक, १२ से १४ महीने तकमें नीचेके बाह्यकर्तनक और अगले चार चवर्णक, १८ से २४ महीने के भीतर भेदक दन्त, २४ से ३० महीनेके भीतर पिछले चर्वणक, निकलते हैं। एक वर्ष के भीतर वाले बच्चोंमें ६ दांत, १॥ वर्ष तकमें १२ दाँत, दो वर्ष तकमें १६ दाँत और २॥ वर्ष तकमें २० दांत हो जाने चाहिये। (जिन बच्चोंका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता और जिन्हें सूखा रोग या अस्थिक्षय (रिकेट्) रहता है, उनके दाँत देरसे निकलते हैं।) स्थायीदांत ६ वर्षमें चार प्रथम पश्चिम चवर्णक, सात आठ वर्षमें आठ कर्तनक, ६ से १२ वर्ष तकमें आठ अग्रचर्वणक, १२ से १४ वर्ष तकमें ४ भेदकदन्त, १० से १५ वर्ष तकमें ४ द्वितीय पश्चिम चर्वणक और १७ से २५ वर्ष तकमें तृतीय पश्चिम चर्वणक और अकिल की दाढ़ निकलती है। कभी कभी अकिल की दाढ़ें (बुद्धिदन्त) २५ से ४० वर्ष के बीचमें निकलती हैं। नीचेके दांत पहले निकलते हैं। छठे वर्षमें हर एक हनुमें २४ दांत होते हैं। इनमें २० पतनशील और २८ स्थायी होते हैं। स्थायी दन्त पतनशील दन्तके नीचे रहते हैं और वे मसूड़ोंसे ढके रहते हैं। ज्यों ज्यों पतनशील दन्त गिरते जाते हैं त्यों त्यों स्थायी दन्त बाहर होते जाते हैं।

इस प्रकार वयस्क लोगोंमें ३२ दांत होते हैं। ये दाँत हन्वस्थि या

जवड़े (जिन्हें देहाती बोलीमें चमूं कहते हैं) से एक प्रकारके सीमेएटके समान संयोजक पदार्थ द्वारा खूब मजबूत जड़े रहते हैं। सबसे आगे मध्यरेखामें जो इधर उधर दो दो चौड़े दांत होते हैं वे भोजन करनेके काम आते हैं, इसीसे इन्हें छेदक कहते हैं। आठ जो दंशन या कर्तनदन्त होते हैं उनका आकार कुदालीके समान होता है। आहार द्रव्यको जकड़कर पकड़नेमें इनका उपयोग होता है। चूहे, बिल्ली, खरगोश आदिके ये दांत अधिक बड़े पकड़ रखने योग्य होते हैं। चार छेदकदन्त कुछ लम्बे और नीचे नुकीले होते हैं। इन्हें गजदन्त भी कहते हैं। इनमेंसे बीचके दो मध्य छेदक और इधर उधरके वाह्य छेदक कहलाते हैं। वाह्य छेदक दन्तसे कानकी ओर दोनों तरफ एक एक नोकीला दाँत होता है, इन्हें भेदक दन्त या रदनक कहते हैं। इनका उपयोग आहार फाड़नेमें होता है। मनुष्य अपना आहार पकाकर खाता है, इससे उसे फाड़नेका काम कम पड़ता है, अतएव मनुष्योंके ये दांत छोटे होते हैं। किन्तु मांसाहारी शेर, बिल्ली, कुत्ते आदिके ये दांत अधिक लम्बे और नुकीले होते हैं। इन्हें कुकुरदन्त भी कहते हैं। भेदक दन्तके पीछे दो छोटी दाढ़ होती हैं, जिनका काम भोजन चबानेका है, इन्हें अग्रचर्वणक कहते हैं। इनके पीछे तीन मुख्य दाढ़ें होती हैं। ये दांत सबसे मोटे होते हैं और भोजन चबानेका मुख्य काम इन्हींसे होता है। इन्हें पश्चिम चर्वणक कहते हैं। सबसे अन्त में जो तृतीय चर्वणक होते हैं उन्हें ही बुद्धिदन्त या अकिल की दाढ़ कहते हैं। ये ३२ दांत स्थायी होते हैं और मध्य बुढ़ापे तक रहते हैं। इनके गिरनेके बाद फिर नये दांत नहीं निकलते।

प्रत्येक दाँतके तीन भाग होते हैं। (१) दांतोंका जो भाग हन्वस्थि के मांसके भीतर रहता है उसे **दन्तमूल** (Root of teeth) कहते हैं। जिस गढ़ेमें दांत लगे रहते हैं, उसे दन्त उलूखल कहते हैं। छेदक और भेदक दांतमें केवल एक एक मूल रहता है। किन्तु भेदक दन्तका मूल छेदकसे कुछ लम्बा होता है। अग्रचर्वण दांतमें कभी

एक और कभी दो मूल होते हैं। या मूलपर दोनों ओर एक गहरी नाली होती है। जिससे मालूम पड़ता है कि यह मूल बीचमें फटते फटते रह गया। ऊपरके हर एक चर्वणक दन्तमें तीन मूल होते हैं, नीचेके पश्चिम चर्वणक दन्तमें दो मूल होते हैं। (२) मसूड़ोंके नीचे जो दांतोंका दबा हुआ भाग होता है उसे **दन्तग्रीवा** कहते हैं (३) और मसूड़ोंके बाहर जो श्वेत और चमकदार भाग रहता है उसे **दन्तशिखर** (Crown) या मीना कहते हैं। यदि दांत काटकर देखे जायँ तो मालूम पड़ता है कि ये दांत खोखले होते हैं और कई उपादानोंसे बने हैं। जिन उपादानों द्वारा इनकी रचना होती है उन्हें दन्तोपादान (Dentine) कहते हैं। दांतोंका सबसे बाहर जो श्वेत भाग होता है, उसका सङ्गठन अस्थि जैसा होता है। किसी जवान पुरुषके दन्तवेष्ठ या रुचकमें १०० में ९६ भाग खनिज अंशोंका और ४ सजीव पदार्थोंका रहता है। खनिजोंमें पुरुषोंके दांतोंमें ८९.८२ खटिका+स्फुरित, प्लविद, ४.३७ खटिककार्बनित, १.३४ मग्नस्फुरित, ०.८८ लवण और ३.५९ सजीव पदार्थ वसाका अंश रहता है। स्त्रियोंमें सजीव पदाथ लगभग ६ भाग, लवण लगभग १ भाग, मग्न-स्फुरित ढाई भाग, खटिककार्बनित पौने नौ भाग और खटिक स्फुरित ८१.६३ भाग रहता है। यह दन्त-वेष्ठ दांतोंके ऊपर मीनाकारीके समान लगा रहता है। यह एक प्रकारके पतले कठिन और चिकने वस्तु द्वारा ढका रहता है। इसीसे दांत उज्वल और चमकदार दिखते हैं। यदि किसी कारणसे यह मीनाकारी निकल जाय तो फिर नहीं पैदा होती। मीना बिहीन दन्त बेकाम हो जाते हैं। यदि दन्तोपादान में खाद्यकण प्रवेश होते रहें तो इस दन्तवेष्ठ या रुचकका क्षय आरम्भ हो जाता है; और उसमें अनेक प्रकारके रोग वीजाणु आश्रय कर रुचकको नष्ट कर देते हैं। प्रत्येक दांतमें जो बीचो बीच खोखली लम्बी फांक होती है उसे **दन्तकोष्ठ** कहते हैं। उसमें एक मुलायम वस्तु दन्त मज्जा (Tooth pulp) रहती है। इसके उपादान

सूक्ष्म सौत्रिकतन्तु, कई प्रकार की सेलें, रक्तकेशिकाएं और नाड़ी-सूत्र रहते हैं। जिससे इसके भीतर कई रक्तधारा और नाड़ीका प्रवेश रहता है। इस मज्जा द्वारा दांतोंकी पुष्टि होती रहती है। दन्त-वेष्ठके नीचे अर्थात मीनाकारीके नीचेका भाग **रदिन** कहलाता है। रदिन कड़े होते हैं और उनका रङ्ग हल्का पीलापन लिये सफेद होता है। इनमें इतनी सफाई नहीं रहती। इस रदिनमें लगभग १० भाग जलांश, १८ भाग सजीव, डेढ़ भाग सोडियमके लवण + हरित + स्फुरित, १ भाग मग्नस्फुरित, ६२ भाग खटिक स्फुरित, २ भाग खटिक प्लविद और साढ़े पांच भाग खटिक कर्बनित रहता है। हाथीके दांतों में जल और सजीव भाग मिलकर ३४ भाग और खनिज ३७ भाग रहते हैं। दन्तमूलमें रुचक या मीनाका भाग नहीं रहता। उसमें जो भाग रहता है उसे **संघात** कहते। हैं संघातकी सूक्ष्म रचना और रासायनिक संगठन अस्थि जैसा होता है। दन्तमूलकी शिखरमें जो एक छोटा छिद्र होता है उसीसे होकर रक्तवाहिनियां और नाड़ियां दन्त कोष्ठमें प्रवेश करती हैं।

दांत केवल मुखकी शोभा ही नहीं हैं, वल्कि परिपाकक्रिया सम्पादनमें उनकी वहुत उपयोगिता है। अधिक नरम और अधिक ठण्डी वस्तुएं दांतोंके लिये हानिकर होती हैं। गरम गरम वस्तु खाने के बाद यदि ठण्डी वस्तुएं ली जायँ तो दन्तवेष्ठ या मीनाको हानि पहुँचाती है। सदा सावधानी रखनी चाहिये कि दांतोंसे यह चिकना भाग निकलने न पावे। इसलिये मुख की सफाईके लिये कई चीजें दांतोंमें नहीं मलनी चाहिये। मंजन या कोयला या नमक जो मला जावे वह खूब मैदेकी तरह वारीक पिसा हो। कड़े ब्रशसे भी दन्त वेष्ठ को हानि पहुंचती है। दतून नीम, वबूल, बरगद, गूलर, अर्जुन आदि की हो और उसकी कूंची खूब नरम बना ली जाय। दांतों की सफाई ऐसी सावधानी से हो कि दन्तमूलमें खाद्यद्रव्यका अंश या मैल न रहने पावे। अन्यथा खाद्यांश सड़कर या मैल जमा रहकर

दन्तवेष्टको हानि पहुँचावेगा और मुंहसे दुर्गन्धि भी आने लगेगी। भोजनके पश्चात खूब अच्छी तरह कुल्लेकर मुंह और दांतों की सफाई कर लेनी चाहिये। ठीक सफाई न होने से मसूड़ोंमें मवाद पैदा होता है। यही नहीं मसूड़े सड़ने लगते और अलग होने लगते हैं। अकसर बूढ़ों के दांतोंमें एक प्रकार की सफेद पपड़ी सी जमने लगती है। दन्तमूल में जा खाद्यांश लगा रहता है, उसमें गाढ़ी लार मिलकर ऐसी पपड़ी जमा होती है। यदि यह पपड़ी दांतों की जड़में जमा होती जाय तो दन्तमूल और पपड़ीके बीच जो सन्धि होती है उसमें रोग बीजाणु पैदा हो जाते हैं। और मवाद पड़ने लगता है इससे दन्ताद आदि रोग होते हैं। आजकल **पायरिया** की बीमारी अधिक देखी जाती है, वह ऐसी ही असावधानीके कारण उत्पन्न होती है। यही नहीं इससे उदरविकार, ग्रहणी, अजीर्ण, अम्लपित्त, रक्ताल्पता, वातव्याधि आदि विकार भी इसके कारण उत्पन्न होने लगते हैं।

अधिक कड़ी वस्तुएं खानेसे, कड़ी दतून करनेसे, दातोंको चाकू द्वारा छीलकर साफ करनेसे यदि दन्तवेष्ठ कुछ भी अलग हो जाय तो विकार रदिन तक पहुँचते हैं और दांतोंमें छेद हो जाते हैं, यही नहीं दांतोंमें दन्तशूल की वेदना होने लगती है। छोटी मोटी असावधानी से भी भयंकर परिणाम होते हैं यह सदा स्मरण रखना चाहिये। बहुतोंके दांतोंमें ठण्डा पानी या खट्टी वस्तु मुंहमें लेते ही सिहरन और असह्य वेदना होने लगती है। पहले कहा गया है कि दन्त मज्जा में सिरा-नाड़ी आदि रहती हैं। दांतों की पुष्टिके लिये ये सिराएं दांतोंके भीतर रक्तसंचालन करती हैं और नाड़ियां (वातसूत्र) दांतोंमें संवेदना या बोधशक्ति उत्पन्न होनेमें सहायक होती हैं। मसूड़ोंके भीतर जो दांतोंका अंश छिपा रहता है, उस दन्तमूलमें मीना या रुचक का काम नहीं होता। यहांका भाग संघात या डेण्टिनसे बना रहता है और वह रुचककी अपेक्षा कम कड़ा होता है। रुचकमें तो खट्टापन या एसिड लगनेसे हानि पहुँचती है; किन्तु दन्तमूल संघातमें वायु

लगनेसे ही उनका शीघ्रतासे विनाश होने लगता है। मसूड़े कटने या मलनेसे दांतोंकी जड़ बाहर होने लगती है और दांतोंका क्षय आरम्भ होने लगता है। दन्त गह्वरमें सन्धि होने लगती है और मुंह में कोई ठण्डी चीज जाते ही दन्तगह्वरमें उसका असर पहुँचता है तथा नाड़ी-सिरा-धमनी युक्त भाग फनफना उठता है। यही क्यों दन्त-मूल खुलजानेसे रोगवीजाणु वहां जमा होते हैं। आहारके साथ शरीर के आंतों और अन्य भागोंमें भी पहुँचते और अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं। दांत की जड़ और मसूड़ेमें रह कर भी ये रोग वीजाणु दांत और मीनामें प्रवेश कर दांत और मसूड़ोंको हानि पहुँचाते रहते हैं। मसूड़े फूलते हैं, भीतर मवाद जमा होता है, दांतों में सन्धि और छिद्र होते हैं, दांतोंमें दर्द और दन्तमूलमें घाव भी पैदा कर देते हैं। दांतों की सफाईमें सावधानी न रहनेसे यह सब होता है और अन्तमें दांत भी गिरने लगते हैं।

चाहे बच्चोंके दूधके दांत हों और चाहे सयानोंके स्थायी दांत हों सब की सफाई और सावधानी आवश्यक है। दांतोंके बिना क्या दुर्गति होती है इसका अनुभव बूढ़ोंको अधिक होता है। गर्भावस्थामें ही बालकके चमूमें दांतोंका मुकुल या अंकुर विद्यमान रहता है। अस्थि और दांतोंका मुख्य उपादान खटिकाजातीय द्रव्य (कैलशियम) है। अतएव गर्भवतीके आहारमें ऐसे द्रव्य विशेष होने चाहिये, जिनमें खटिका भाग अधिक हो। इसके सिवाय ऐसे पदार्थ भी हों जो पौष्टिक हों और जिनमें विटामिन डी०, अर्थात वृष्यतत्व की अधिकता हो। विटामिन डी० के विना शरीरमें कैलशियम और फासफरस विधि पूर्वक शोषित और सञ्चित नहीं हो सकता। यदि गर्भसे ही बालकके दन्तोपादान उचित रीतिसे संचित हों तो दांतों की बनावट ठीक होती है। बालक उत्पन्न होनेके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके आहारमें खटिका जातीय और विटा-मिन डी० वाले पदार्थ अधिक पहुँचें। इसके बिना समय पर दांत नहीं

निकलते। बालकको धूपमें लिटाकर तेल लगानेसे भी उसके शरीर की पुष्टि होती है और शरीरमें विटामिन डी० का प्रवेश होता है। बच्चों को मिठाई, मैदे की चीजें अधिक नहीं खिलानी चाहिये। इससे दांतों में फांक पड़ती है और रोग वीजाणु अपना कार्य अधिक कर पाते हैं। यही नहीं बल्कि ऐसी वस्तुओंसे अम्ल रसकी उत्पत्ति होती है और वह अम्ल रस दन्तोपादान, दन्तसंघात और दन्तवेष्ठका नाशक होता है। दांतोंमें कीड़े लगते तथा दांतबेडौल बनते हैं। बालकोंका नित्य मुंह धोना और दांत मलना भी आवश्यक है बच्चोंको आहार खूब कुचल कर खानेकी आदत डलवानी चाहिये। जिससे दांतोंको व्यायाम हो और उनकी क्रिया ठीक होती रहे। इससे दांतोंमें आवश्यक कड़ाई आती है। यही नहीं स्थायी दांत सुन्दर और सुडौल निकलते हैं। दांतोंमें स्पर्शज्ञान मीना वाले भागमें नहीं बल्कि भीतरी नलीदार भागमें होता है। जब यह भाग सड़कर विकृत होता है तब उनमें वेदना होती है। यदि ऐसी व्याधि उसके पोले भाग तक पहुँचे तो अत्यन्त वेदना होती है। वनस्पतिजन्य आहार करने वालोंको आहारका चर्वण करनेके लिये दाढ़ों की विशेष आवश्यकता पड़ती है। इसलिये ऐसे लोगोंको दाढ़ों की रक्षाका प्रयत्न विशेष रूपसे करते रहना चाहिये।

दांत मसूड़ोंमें दबे रहते हैं और मसूड़े खुलनेसे दांतोंमें विकार होता है। इसलिये मसूड़ोंकी रक्षा भी वैसी ही आवश्यक है। दतून और मंजन करते समय यह स्मरण रहे कि मसूड़े कटने न पावें। ये मसूड़े घने सौत्रिकतन्तुसे वने रहते हैं। ये एक ओर दन्तग्रीवासे और दूसरी ओर जबड़ोंकी हड्डीसे लगे रहते हैं। सौत्रिक तन्तुके ऊपर चिकनी रक्तमय श्लैष्मिक कला लगी रहती है। दन्तरोगका वर्णन करते समय मसूड़ोंके विकारों पर भी विचार किया जायगा।

———

मसूड़ोंके रोग

निदान और सम्प्राप्ति--आरम्भमें मुख्य रोगों की संख्या ६७ कही गयी है। उनमेंसे दांतोंके मसूड़ोंमें १६ रोग होते हैं। अर्थात् (१) शीताद (२) दन्तपुप्पुट (३) दन्तवेष्ट (४) सौषिर (५) महाशौषिर (६) परिदर (७) उपकुश (८) वैदर्भ (९) खल्लीवर्धन (१०) अधिमांस (११) वातज दन्तमूल नाड़ीव्रण (१२) पित्तज दन्तमूलनाड़ीव्रण (१३) कफज दन्तमूलनाड़ीव्रण (१४) त्रिदोषज दन्तमूलनाड़ीव्रण (१५) आगन्तुज दन्तमूल नाड़ीव्रण और (१६) दन्त विद्रधि। अनूपदेशमें पाये जाने वाले प्राणियोंका मांस अधिक खानेसे, क्षार, अम्ल, दही और उड़द जैसे कफकारक पदार्थोंके सेवनसे दोष प्रकुपित होकर कफको प्रधानकर मुखमें दोष विकृति करते हैं। उससे मसूड़ोंमें विकार उत्पन्न होते हैं। जिनके पेटमें लगातार बिगाड़ रहता है, अन्नका पाचन ठीक नहीं होता अथवा कब्ज रहता और पाखाना साफ नहीं होता उनके शरीरमें ऊष्णता ऊपरको उठकर दांतोंके मसूढ़ोंमें दोष आश्रय लेते हैं। वहां रक्तका संचय और विकृति होती है। इससे मसूड़ों में विकार उत्पन्न होते हैं। हनुभागमें वायुका प्रकोप होनेसे भी दांतोंके मसूड़ोंमें विकार उत्पन्न होते हैं। पारामिश्रित औषधि अधिक खानेसे भी मसूड़ोंमें विकार उत्पन्न होते हैं। मसूड़ोंमें विकार होनेसे उसका असर दांतों पर पड़ता है, इसी तरह दांतोंमें विकृति होनेसे मसूड़ों पर भी असर पड़ता है। मुंह और दांतोंकी ठीकसे सफाई न करनेसे दांतों की जड़ और मसूड़ोंके वाह्य भागपर मैल जमता है, इसी तरह भोजनके पश्चात मुखकी अच्छी सफाई न करनेसे भी आहारके कण दांतों की जड़ और मसूड़ोंके आरम्भिक भागमें जमते और सड़ते हैं। इससे रोग वीजाणु उत्पन्न होकर मसूड़ोंको खराब कर देते हैं। बासी भोजन और सड़े गले पदार्थोंके खानेसे पेटमें वायुकी विकृति होती है और वह विकृत वायु ऊर्ध्वगामी होकर मुख भागमें आश्रय लेकर मसूड़ों

में विगाड़ पैदा करता है, थूंकमें अम्लता आती और उस अम्लतासे दांतोंमें विगाड़ होता है। दांतोकी विकृतिका असर मसूड़ों पर पहुँचता है। अधिक खट्टी वस्तुएं भी दांत और मसूड़ों को विगाड़नेमें कारणीभूत होती हैं। अधिक गरम तथा अधिक ठण्डी वस्तुओंका असर भी दांतों और मसूड़ोंके लिये अनिष्ट कारक होता है। यही नहीं पूरा पौष्टिक और ताजा आहार न मिलनेसे भी दांतों और मसूड़ोंका ठीक से पोषण नहीं होता और उनमें विकार उत्पन्न होता है। दाँतों और मसूड़ोंमें रक्तशिराएं और नाड़ियोंका जाल आकर मिलता है; अतएव रक्त या वातवाहिनी नाड़ियोंमें विकृति होनेसे दांतों और मसूड़ोंमें भी उसका असर पड़ता है।

लक्षण और चिकित्सा

(१) **शीताद**—यदि बिना किसी प्रकारकी चोट लगे हुए ही दन्तमूल अर्थात मसूड़ोंसे रक्त निकले, मसूड़ोंका मांस सड़कर दुर्गन्धित हो जाय, मसूड़े काले और मुलायम हो जायँ, सड़कर और पक कर मसूड़ोंका मांस गिरने लग जाय, एक जगह की सड़ावटसे अन्यत्र मसूड़े भी पकने लगें तो ऐसी व्याधिको शीताद कहते हैं। यह व्याधि कफज और रक्तज है। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे ब्लीडिङ्ग (Bleeding) या स्पञ्जीगम्स (Sponjygums) कहते हैं। मुंह की ठीक सफाई न रखने या पारे वाली दवाइयोंका अधिक सेवन करनेसे यह बीमारी होती है। रक्ततारल्य या स्कर्वी रोग वालोंमें भी यह शिकायत देखी जाती है। जब मसूड़ोंकी शक्तिमें कमी आ जाती है तब वहां जो रक्त पहुँचता है उसे मसूड़े ग्रहण कर अपनी आवश्यकताके लिये शोषण नहीं कर सकते; अतएव वह सञ्चित होकर मसूड़े फोड़कर निकलने लगता है। कफ विकारके कारण मसूड़े नरम रहते हैं; इससे वे रक्त को रोक नहीं सकते।

(१) शीतादमें पहले मसूड़ोंसे रक्त निकालनेका प्रयत्न करे (२) इसके पश्चात अर्जुनकी छाल, नागरमोथा, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, मालकांगनी, रसवत और सोंठका बारीक चूर्णकर शहदमें मिला धीरे धीरे मसूड़ोंमें रगड़े। (३) ऊपर लिखी औषधियोंका काढ़ा कर उसीसे कुल्ले करे (४) मधुरवर्ग की औषधियोंसे (घृत, गुड़, दूध, अखरोट, नारियल, फालसा, अतिवला, महावला, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बन-मूंग, बन उड़द, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, मुलेठी, मुनक्का, विदारीकन्द, मुण्डी, काकोली, क्षीरकाकोली, वंशलोचन, कटसरैया, ऊख, गोखरू, शहद आदि) सिद्ध किया हुआ तेल नाकमें छोड़े। (५) सोंठ, सरसों और त्रिफलाका काढ़ाकर गण्डूष धारण करे (६) वातघ्न नारायण तैल अथवा घृतका कवल धारण करे। (७) कूट, दारुहल्दी' लोध, नागरमोथा, मजीठ, पाढ़ी, तेजबल, और हल्दीका चूर्णकर दांतों और मसूड़ोंमें रगड़े। इससे रक्त स्राव, खुजली और वेदनाकी शान्ति होती है। (८) हीराकस, लोध, पीपल, मैनसिल, पियङ्गु और तेजबल का बारीक चूर्णकर मधुमिला मसूड़ोंमें रगड़े। इससे सड़ा और दुर्गन्धित मांस निकल जाता है। (९) जोंक लगाकर अथवा तुम्बी लगाकर रक्त निकलवावे तथा सोंठ और पित्तपापड़ाके काढ़ेसे बारम्बार कुल्ले करे (१०) त्रिफला, मुलेठी, कमल, और पदमाखसे सिद्ध किये हुए घृतका नस्य देवे (११) मसूड़ोंसे खून निकलता हो तो संग्राही औषधों द्वारा मसूड़ोंको पुष्ट करना आवश्यक है। जली हुई मसूर, वंशलोचन, बबूलकी छाल और माजूफलको बारीक पीसकर मसूड़ों पर मले और फिटकरी सिरकेमें बुझायी हुई (फिटकरी एक मिट्टीके बर्तनमें डाल आग पर चढ़ावें और बीच बीचमें सिरका छोड़ते जावें जिससे उसमेंसे भाफ उठे) १ भाग, नमक २ भाग और भुनी लाल फिटकरी १॥ भाग पीसकर मसूड़ोंपर दबावे। (१२) कभी कभी मसूड़ों की निर्बलता न होने पर भी शरीरमें रक्तकी अधिकता हो जाने और उष्ण प्रकृति होनेके कारण भी मसूड़ोंसे रक्त जाया करता है। ऐसी दशा में रक्त अधिकतासे जाता है। ऐसे विकारमें फस्द खोलकर रक्त

निकाले। शीतवीर्य औषधियोंके काढ़े अथवा शीत फांटसे कुल्ले करावे।

(२) दन्तपुप्पुटक—दो या तीन दांतोंके आश्रित दन्तमूलके ऊपर मसूड़ों पर बड़ा शोथ हो जाय और उसमें बहुत वेदना हो तो उसे दन्तपुप्पुटक कहते हैं। यह व्याधि भी कफ और रक्तदोषसे होती है। शोथका आकार प्राय: बेरकी गुठलीके समान और कठिन होता है। यह पक भी जाता है। इसे डाक्टरीमें गम बाइल (Gum boil) कहते हैं। दन्तविद्रधिमें और इसमें भेद यह है कि इसका आकार छोटा होता है और स्थान भी परिमित होता है। शोथ होनेपर मसूड़ा छेद कर दोष बाहर होता है। दन्तविद्रधि अधिक गहराई तक रहता है, उसका विस्तार भी अधिक रहता है और वह जबड़े को भी खराब कर नष्ट कर देता है।

दन्तपुप्पुटकमें मसूड़ोंका स्वेदन करे। कडूतेल एक कटोरीमें लेकर आगपर रखे और पतले बांसकी हरी कमची या मौलसिरी की दतून ले उसमें बढ़िया नरम कूचीं बना उसी तेलमें डुबाकर सहते हुए मसूड़ेमें सेंके। इससे लार गिरेगी और विकार नष्ट होकर वेदना शान्त होगी, शोथ भी मिटेगा। (२) शस्त्रसे छेदन या भेदन अथवा लेखन कर दूषित रक्त निकाल दे; और फिर मुलेठी, सज्जीखार, सोंठ और सेंधानमक बारीक पीस कर मसूड़ेमें मले। (३) फस्द खुलाकर सेंधानमक, सांभर, सामुद्र, सोंचर और विडनमक, तथा जवाखार सबको बारीक पीस मसूड़ों पर धीरे धीरे मले (४) शिरोविरेचन, नस्य और स्निग्ध भोजन देवे। (५) यदि मसूड़ेका शोथ रक्तके बढ़ जानेसे हो और मसूड़ोंमें लाली हो, वेदनाके साथ तोद हो तो फस्द खुलावे। सींगी लगावे और मुनक्के, अंजीर, आलू बुखारा, अमिलतासका गूदा, पीली हड़ और पित्तपापड़ाका काढ़ा पिलाकर जुलाब दे, जिससे दोष निकल जावें। इसके बाद भुनी मसूर, धनियां, अधीरा, लाल चन्दन, सुपारी और सिमाकका काढ़ाकर कुल्ले करावे

(६) हरा खुर्फा, हरीमकोय और हरी वारतङ्गका स्वरस लेकर कवल धारण करे। (७) गुलाब जलमें सिमाक मिलाकर कुल्ले करे। (८) यदि शोथ दब जाय और मसूड़ोंमें शोथका असर काफी रहे तो बादामका तेल और गुलरोगन गरम कर कवल धारण करे, कुल्ले करे।

(३) **दन्तवेष्ठ**--दांतोंको आच्छादित रखने वाला मसूड़ोंका भाग ढीला हो जाय, उसमें पाक हो और दन्तमूलसे रक्त निकले तथा दबाने से मवाद भी जावे, दांत हिलने लगें तो उसे दन्तवेष्ठ कहते हैं। यह विकार दूषित रक्तके कारण होता है। डाक्टरीमें इसे पायोरिया अल्विओलारिस (Pyorrhoea alveolaris) कहते हैं।

दन्तवेष्ठ रोगमें दूषित रक्त निकाल देना आवश्यक है। इसके बाद सावरलोध, पतङ्गकी लकड़ी या छाल और लाखका चूर्णकर शहद मिला घाव पर लगावे। (२) पीपल-बरगद-पाकर-गूलर की छाल के क्याथमें शहद-घी और मिश्री मिलाकर कुल्ले करावे। (३ काकोल्यादि गण की औषधियोंके (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, बनमूंग, वनउड़द, मेदा, महामेदा, गुर्च, ककड़ासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, कमल, ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का, जीवन्ती और मुलेठी) कल्क में दशगुणा दूध डालकर औषधियोंसे चौगुना घी कड़ाहीमें डाल घृत सिद्ध करे। इस घृतका नस्य देनेसे दन्तवेष्ठक आराम होता है। (४) योगरत्नाकर कार इस बीमारीको केवल रक्तके कारण नहीं बल्कि रक्त और पित्त दोनों की विकृतिसे हुआ मानते है। और हिलते हुए दांतोंको दृढ़ करनेके लिये मौलसिरी की छाल मुखमें रख चबाते रहने की सलाह देते हैं। (५) प्राय: दांतोंका हिलना मसूड़ोंके ढीले पड़ जाने के कारण होता है। इसलिये मसूड़ोंको कड़े बनानेके लिये भद्रमुस्तादि वटीका प्रयोग करे। नागरमोथा, हर्रा, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, नीम की छाल या पत्ती सबका बारीक कपड़ छान चूर्णकर गोमूत्रमें घोट बेर बराबर गोली बनावे और छायामें सुखाकर रखे। इस

मुस्तादिवटीको जिसके दाँत हिलते हों, मसूड़े ढीले हों, उसे मुंहमें रखनेके लिये देवे। गोली मुखमें रातमें रख सो रहे। दन्तवेष्ठके लिये यह सर्वोत्तम औषधि है। (६) अरणीका रस मधुमिलाकर मसूड़ों और दांतोंमें रगड़ा करे, इससे रक्तविकार बन्द होता है। (७) गुलाब के फूल, जुफ्त, बलूतफूलके वृक्षका छिलका, और हब्बुलास प्रत्येक चौदह माशे, खर्तब, नष्टी, समाक और अकरकरा प्रत्येक १७॥ माशे लेकर कूट कपड़छान चूर्ण मसूड़ों पर लगावे तो मसूड़े दृढ़ होते हैं। (८) विलायती एरण्ड की ताजी दतूनसे नित्य दांत और मसूड़े रगड़ा करे और इसी वृक्षका दूध दांतोंकी जड़ पर लगाया करे तो दन्तवेष्ठक दूर होता, दांत और मसूड़े दृढ़होते हैं। (९) **सहचरादि तैल** मुखमें धारण करनेसे मसूड़ोंकी जड़ बलवान होती है। हिलते हुए दांत दृढ़ होते हैं। नीली कटसरैया १०० तोले लेकर २५६ तोले जलमें पकावें, जब चतुर्थांश जल रहे तब एक सेर तेल कड़ाहीमें चढ़ाकर गरम होने पर यह काढ़ा छोड़ दें और उसमें जवासे की जड़, खैर की छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, मुलेठी और नील कमलका कल्क आधा आधा तोला डाल कर तेल सिद्ध करे। यही सहचरादि तैल है (१०) जीरकादिचूर्ण-जीरा, सेंधानमक, हर्रा, सेसरके कांटे सबको चूर्ण कर रखे और नित्य इसीका मंजन किया करे; इससे मसूड़ेके व्रण, दाँतोंमें ठनका, दांत फटना, और उनसे रक्त और मवाद जाना दूर होता है (११) अथवा कणादि चूर्णका मंजन नित्य लगावे अर्थात पिप्पली, सेंधानमक और जीरा बारीक पीसकर मल दे तो मसूड़ों की सूजन तुरन्त अच्छी होती है (१२) दशमूलके काढ़ेमें तेल या घी सिद्ध कर मधु मिला कर पीवे और उसीको मसूड़ों पर रगड़े।

(४) **सौषिर**--जब दन्तमूलमें शोथ होता है, उसशोथमें अधिक वेदना और खुजली होती है, लार बहती है तब उसे सौषिर या सुषिर कहते हैं। कुछ आचार्योंने इसे कफज-रक्तज व्याधि कहा है; किन्तु वाग्भटाचार्य इसे पित्त और रक्तके प्रकोपसे हुआ मानते हैं और यह

भी कहते हैं कि इसमें मांस सड़ता है ।

श्वयथुदन्तमूलेषु रुजावान् पिजरक्तजः
लालास्रावी स सुषिरो दन्तमांस प्रशातनः ॥

मालूम पड़ता है, जिन आचार्योंने इसे कफ-रक्तज माना है, उन्होंने खुजली होनेकेकारण ऐसा माना है; किन्तु वाग्भटाचार्य इसमें खुजलीका होना स्वीकार नहीं करते। पित्तके कारणसे जो सूजन होती है, उसमें शोथ कम किन्तु जलन अधिक होती है और जलनके कारण ही वेदना होती है। जब वहाँ अंगुली रखें तो उस स्थानसे रक्त हट जाता है और अंगुली उठानेसे फिर वहीं आ जाता है। किन्तु कफज होनेसे शोथका रङ्ग सफेद और वह छूनेमें ठण्डा मालूम पड़ेगा।

सुषिर रोगमें मसूड़ोंसे विकृत रक्त निकाल करमें (१) लोध, नागरमोथा, और रसवत बारीक पीसकर मधु मिला मसूड़ोंमें लेप करे (२) बरगद, पीपल, गूलर, पाकर आदि चीरी वृक्षोंकी छालका काढ़ा कर कुल्ले करे। (३) अथवा विकृति भाग काटकर अथवा छीलकर निकाल दे और लोध, नागरमोथा, सौंफ, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, रसवत, पतंग, पलाशके फूल और कायफलका काढ़ा कर कुल्ले करे और इन्हीं औषधियोंका चूर्ण मधुमें सानकर मसूड़ोंमें रगड़े। (४) मुलेठी, लोध, नीलकमल, धमासा की जड़, अनन्तमूल, अगर, लालचन्दन, गेरू, मिश्री और सफेद ऊख की जड़का कल्क कर तेल सिद्ध करे और उसे नाकमें डाले। (५) हर्रके काढ़ेसे दस्तोंके द्वारा पित्तके विकारको निकाल दे अथवा यदि रक्तमोक्षणकी आवश्यकता हो तो पहले रक्तमोक्षण कर तब विरेचन देवे और दाँतोंकी जड़ोंपर पछने लगावे। जिससे निकम्मा खून निकल जावे। जब दोष निकल जावें तब अधीरा और मकोयको सिरकेमें औटाकर उसी सिरकेसे कुल्ले करें जिससे मसूड़े कड़े हो जायँ। किन्तु जब तक दोष न निकल जावें तब तक इस कुल्लेको न करे। अन्यथा मसूड़े कड़े हो जाने पर शेष दोष भीतर ही रह जावेंगे। (६) यदि शोथमें सफेदी हो और वह छूनेमें

शीत मालूम पड़े तथा खुजली हो तो मवाद ढीला करनेके लिये और काटकर निकालनेके लिये शहद और जैतूनसे कुल्ले करे। इसके बाद दोष निकालकर शुद्धि करनेके लिये बाबूना, दौना, मरुवा, मेथीके बीज और अलसी पका कर उसी क्वाथसे कुल्ले करावे।

(५) **महासौषिर**--महासौषिरमें तीनों दोष प्रकुपित होते हैं। मसूड़ोंके विकृत और शिथिल हो जानेसे दांत जड़से हिल जाते हैं, मसूड़े और तालूमें फटने की सी पीड़ा होती है। दांतों की जड़कामांस पक जाता है, यही नहीं मुख भी पक जाता है। अष्टांग संग्रह में लिखा है कि इसमें सन्निपात ज्वरके समान ज्वर भी आता है और मसूड़ोंसे पूय और रक्त निकलता है। भोजराजका यह भी कहना है कि यह बीमारी नित्य बढ़ती जाती है, दांत-तालू और ओंठ भी पक कर कट जाते हैं। इसमें रोगी सात दिनोंमें मर जाता है। पण्डित ब्रह्मशंकर मिश्रने भावप्रकाशकी टीकामें लिखा है कि इसके लक्षण डाक्टरीके गेंग्रीनस स्टोमाटायटीज़ (Gangrenous stoma titis) या कंक्रम ओरीस (Cancrum oris) से मिलता है। डाक्टरी मतानुसार इसमें गालके भीतर या मसूड़ोंमें व्रण होता है जो जिव्हा, तालु आदि तक फैलता है, तीव्र ज्वर होता है और रोगी ७ से १० दिन तकमें मर जाता है। कंक्रमओरीसमें भी जो व्रण होता है उसमें भयंकर दर्द होता है। दांतकी जड़ पर चीरा सा पड़ता है, ओंठ और गलेमें भी छाले पड़ते हैं, गलेके भीतर तक सड़ जाता है, मरा हुआ मांस दिखाई पड़ता है। मुँहसे दुर्गन्धि आती है, लार और मवाद निकलता है, ज्वर होता है, गालमें छिद्र हो जाते हैं, सड़ा भाग गिरने लगता है, कभी कभी सड़ावटके कारण जबड़े की हड्डी और दांत भी नष्ट हो जाते हैं। इसमें भी प्रायः रोगी मर जाते हैं। यह बीमारी प्रायः बालकोंमें होती है। इसके कीटाणु होते है।

असाध्य होनेके कारण इसकी चिकित्सा नहीं लिखी गयी; किन्तु आरम्भमें ही उचित चिकित्सा होनेसे और दोष शान्ति होकर रोग

की वृद्धि रुक जानेसे किसी किसीके बच जाने की सम्भावना रहती है। इसलिये परमेंगनेट आफ पोटाश गरम पानीमें मिलाकर कुल्ले करे। इससे कीटाणु नष्ट होंगे, घाव शुद्ध होगा और मुखकी दुगन्धि दूर होगी। काले तिलोंको पानीमें पीस छानले और उस पानीमें दूध और घी मिलाकर कुल्ले करे। अथवा त्रिफलाके काढ़ेमें मधु मिलाकर कुल्ले करावे। अथवा दारुहल्दी, गुर्च, त्रिफला, मुनक्के, चमेलीके पत्ते और धमासाकी जड़का काढ़ा कर मधु डाल कर पिलावे और इसीके काढ़ेसे कुल्ले भी करावे।

(६) **परिदर**--जिस व्याधिमें दांतोंके मसूड़े विकृत होकर कट कर गिरने लगें और थूंकके साथ रक्त निकलता रहे, उसे परिदर कहते हैं। इसमें पित्त और रक्त विकृत होता है। श्रीवाग्भटाचार्यने परिदरका वर्णन नहीं किया। परिदरमें शीताद की तरह चिकित्सा करे। पहले वमन-विरेचन देकर शरीरकी शुद्धि करे, शिरोविरेचन देकर मस्तक शुद्धि करे। काकोदुम्बर अर्थात कठूमर या वन अंजीरके पत्ते अथवा गोजिव्हा अर्थात गावजबांके पत्तेसे रगड़कर रुधिर निकलवावे। इसके पश्चात सोंठ मिर्च पीपल, सेंधानमक और शहद मिलाकर रगड़े। पीपल, सरसों, सोंठ और जलवेतस या नीम के फल गरम जलमें पीस सहते हुए कुनकुना जल लेकर कवल धारण करे। तथा मधुर द्रव्यों और काकोल्यादि वर्गकी औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत मुखमें रख कवल धारण करे। इसी घृत का नस्य भी देवें।

(७) **उपकुश**--दन्तवेष्ठ अर्थात मसूडोंमें दाह और पाक हो, मसूडों को रगड़नेसे उनका रंग लाल हो जाय, उनसे रक्त बहे, हल्की पीड़ा हो, रक्त निकालनेके बाद मसूड़े फूल जावें, मुखसे दुर्गन्धि निकले और दांत हिलने लगें, उसे उपकुश रोग कहते हैं। यह व्याधि पित्त और रक्त की विकृतिसे होती है। आयुर्वेदविज्ञानकारका मत है कि रक्त न निकलनेसे मसूड़े अधिक फूलते हैं और मुखकी दुर्गन्धि भी बढ़ती है। वाग्भटाचार्यके मत से मसूडों में खुजली भी होनी

चाहिये। यह बीमारी प्रायः रक्ततारल्यदोष (Scurvy) वालों को अधिक होती है।

उपकुशरोगमें वमन-विरेचन और नस्य देकर शरीर को शुद्ध करे। इसके पश्चात गावजबां अथवा कठूमर (वन अंजीर) के पत्ते से रगड़ कर रक्त निकाले। साथ ही सोंठ-मिर्च-पीपल-सेंधानमक अथवा पांचों नमक पीसकर शहद मिला रगड़े। आवश्यकता समझे तो सिरामोक्षण करे। पीपल, सरसों, सोंठ, हिङ्गलके फल और फिटकरी पीसकर कुनकुने पानीमें सान मसूड़ों में रगड़े और उसीका कवल धारण करे। पटोलादि तेलका गण्डूष धारण करनेसे भी बहुत लाभ होता है। परवरके पत्ते, लालचन्दन, मजीठ, नीमकी छाल, मुलेठी और हल्दी-का कल्क कर तेल सिद्ध करे। इस पटोलादि तैलका गण्डूष सौषिर और उपकुशमें लाभदायक होता है। परिदरकी चिकित्सा भी इसमें की जा सकती है। केवल गरम पानीके कुल्लोंसे भी आराम पहुँचता है। कठूमरके पत्ते न मिलें तो सागोनके पत्तोंसे भी मसूड़े रगड़ सकते हैं अथवा मंडलाग्र शस्त्रसे खुरच सकते हैं। लाख, मालकांगनी, पतंग, सेंधानमक, गेरू, कूट, सोंठ, मिर्च, पीपल, मुलेठी, और रसवत पीस कर घी और शहदमें सानकर रगड़नेसे अधिक लाभ पहुँचता है। इसे रगड़नेके बाद घी अथवा तेलका कवल धारण करे। मधुर औषधियों-से सिद्ध किये हुए घृतका कवल धारण और नस्य हितकारी होता है।

(८) **वैदर्भ**—कड़ी दतून या मोटे मंजनके रगड़नेसे अथवा किसी कारणसे यदि मसूड़े घिसकर छिल जांय अथवा चोट लगनेसे मसूड़ों में विकार उत्पन्न होकर पीड़ा होने लगे, जलन हो और मसूड़े अधिक सूजकर पक जावें तो उसे वैदर्भ रोग कहते हैं। आघातके कारण या मसूड़ोंके शिथिल होनेके कारण इसमें दाँत भी हिलने लगते हैं। यही नहीं दाँतोंमें दाह और वेदना होने लगती है। सौषिर, महासौषिर, परिदर, उपकुश और वैदर्भ मसूड़ेके रोग प्रायः एक

समान ही हैं। सूक्ष्म लक्षणोंके विचारसे आयुर्वेदाचार्योंने इन्हें अलग अलग कहा है। एलोपैथीमें इस प्रकारका 'सूक्ष्म विवेचन नहीं हुआ। जिञ्जिवाइटिस (Gingivitis) रोगके अन्तर्गत प्रकार-भेदसे इनका समावेश हो सकता है। मण्डलाग्र शस्त्रसे चीर कर रक्त निकाल देवे और क्षार लगाकर नस्य प्रयोग और शीतगुण प्रधान औषधियोंके कुल्ले करा शीतोपचार द्वारा मसूड़ों को पकने न देवे। दूधका कवल धारण करे और भोजनमें भी दूधका व्यवहार करे। यदि दाँतमें वेदना अधिक हो और वह अधिक हिलता हो तो पीड़ित दन्तको उखड़वा दे और मसूड़ेका रक्त निकलजाने पर शीतल क्रिया करे।

(९) **खल्लीवर्धन**—वायुके प्रकोपसे मसूड़ोंमेंसे दाँतके ऊपर दूसरा दाँत जमे तो जब तक वह दाँत निकल नहीं आता तब तक मसूड़ेमें बहुत दर्द रहता है। दाँत निकल आने पर पीड़ा शान्त हो जाती है। इसे खल्लीवर्धन कहते हैं। अष्टाङ्ग संग्रहमें इसे अधिदन्त और खलवर्धन भी कहा गया है। "दन्तोऽधिकोऽधिदन्ताख्यः स चोक्तः खलवर्धनः" डाक्टरीमें इसे एक्स्ट्रा टूथ (Extra tooth) कहते हैं। किसी किसीने धोखेसे समझा है कि यही अकिलकी दाढ़ (Wisdom tooth) या बुद्धिदन्त है। किन्तु यह भ्रम है। खल्लीवर्धनमें नये उगे दाँतको उखाड़नेका विधान है। अकिलकी दाढ़ उगने पर उखाड़ी नहीं जाती। खल्लीवर्धनकी चिकित्सामें नये उगे हुए दाँतको उखाड़कर निकाल दे और उस स्थानको अग्निदग्ध कर कृमिदन्तके समान चिकित्सा करे।

(१०) **अधिमांस**—सबसे पीछेके बुद्धिदन्त या अकिलकी दाढ़के मसूड़ेमें जब अधिक शोथ हो जाता और उसमें अधिक वेदना होती है, लार गिरती है, उसे अधिमांस कहते हैं। यह विकार कफ-विकृतिसे होता है। यह शोथ कभी मसूड़ेके ऊपर और कभी नीचे तथा अगल बगल भी हो जाता है। कोई वस्तु खाते समय इसमें

स्पर्श होनेसे बहुत वेदना होती है। ऐसी वेदना हनुसन्धि तथा कान में भी होती है। यही नहीं ऐसे समयमें शिर दर्द भी होता रहता है। कोई चीज कुचलने और निगलनेमें कष्ट होता है। अष्टांग संग्रहमें कहा गया है "हनुकर्णरुजाकर:। प्रतिहन्त्यभ्यवहृतिम्॥" डाक्टरीमें इसे इमपेक्टेड विज़िडम टूथ (Impacted wisdom tooth) कहते हैं। जो लोग प्राय: गरम गरम चीजें खाया करते हैं, उनके तालु और मसूड़ेका नरम भाग पीड़ित हो जाता है। शेष भाग कड़ा होकर रह जाता है। पहले रोगीको यह मालूम पड़ता है मानों दाढ़में कोई खानेकी वस्तु चिपट गयी है। मसूड़ेमें आश्रित कफ ऐसे व्यवहारसे दूषित होकर शोथ उत्पन्न कर देता है।

शोथ युक्त बढ़े हुए मांसको काट कर निकाल दे (१) और उसपर बच, तेजवल, पाढ़ी, सज्जीखार और जवाखार पीसकर मधुमें सान लगावे और रगडे। (२) कडूपरवर, नीमकीपत्ती, आंवला, हर्रा, बहेड़ाका काढ़ा कर कवल धारण करे। (३) यदि शस्त्रक्रिया कराने की इच्छा न हो तो तीन दिनों तक बांस या मौलसिरीकी कूची बना कडूतेल या इरिमेदादितेलमें जरासा सोहागा छोड कटोरी आगपर रख उसीसे-स्नेह स्वेदन पूर्वक दागे। इससे दूषित लार निकल जावेगी, कफ प्रकोप शान्त होकर सूजन मिट जावेगी। (४) छोटी पीपर और बड़ी पीपर पीस कर मधुमें सान दाढ़में दबावे और शोथ की जगह भी रखे। (५) हरीफिटकरी और मुरेमक्कीको बारीक पीस कर बढ़े हुए मांसमें भुरकावे और दबावे। इससे वह नष्ट होकर सूख जावेगा।

(११) **दन्तवेष्ठ विद्रधि**—दन्त मांसगत वात-पित्त और कफ तथा रक्त प्रकुपित होकर मसूडेमें भीतर और बाहर शोथ उत्पन्न करते हैं। जिससे मसूडोमें दाह और टीस होती है। वह शोथ जब पक जाता है तब मसूडोंकी जड़से रक्त और मवाद निकलता है। इसे दन्तविद्रधि कहते हैं। कभी कभी शोथ विदीर्ण होनेसे उससे भी रक्त

और मवाद आता है। डाक्टरीमें इसे एल्विओलर एबसिस (Alveolar abscess) कहते हैं।

दन्त विद्रधिमें कटु, तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष औषधियोंका काढ़ाकर कवल धारण करे और ऐसी ही औषधियोंको पीसकर लेप करे। इस प्रकार की औषधियोंमें सहिंजन, तुलसी, वनतुलसी, कूट, देवदारु, रेणुक बीज, बाकुची, नागरमोथा, सोनापाठा आदि ले सकते हैं। अथवा कुटकी, कूट, मेढासिंगी, और जवाखारका बारीक चूर्ण कर मंजन की तरह घिसे। शीतोपचार कर मसूड़ा पकने न देवे। यदि पक ही जावे तो चीरकर दोष निकाल दे और गहरी खुली जगहको दाग दे। किन्तु भावप्रकाशकारका मत है कि दन्तविद्रधिमें शस्त्रकर्म नहीं करना चाहिये। अतएव आवश्यकता पड़े तो कुशल चिकित्सकसे ही शस्त्र कर्म कराना चाहिये।

१२-१६ **दन्तवेष्ठ नाड़ीव्रण**—मसूड़ेके जो रोग साध्य हैं, उनकी भी यदि लापरवाहीकी जाय तो वायु प्रकोपसे पूय (मवाद) भीतर प्रविष्ट कर नाड़ीव्रण (नासूर) उत्पन्न कर देता है। यह नाड़ीव्रण त्वचा, मांस और अस्थियोंका भेदन कर पूयस्राव करता है। जो लोग सुपारी और पान अधिक खाते हैं और गालमें तथा मसूड़ोंके नीचे उसे भरे रखते हैं, उनके मसूड़ेका निम्न भाग कोमल होकर व्रण कर देता है और यह व्रण धीरे धीरे नाड़ीव्रणमें परिणत हो सकता है। ऐसे पुराने घाव को बोल चाल की भाषामें नासूर कहते हैं। घाव पुराना होने पर ही नासूर कहलाता है। नासूरमें जो नली की तरह छेद हो जाता है, उसमें से पीला पानी बहा करता है। जब तक सूजनसे दुर्गन्धित मवाद नहीं आता और मुँहसे दुर्गन्धि नहीं छूटती तब तक उसे मलरहित कहा जाता है; किन्तु जब घाव दुर्गन्धित हो जाता है तब उसे निकम्मा या खबीसा कहते हैं। आयुर्वेदमें यह नाड़ीव्रण ५ प्रकारका माना गया है (१) वातज दन्त नाड़ी (२) पित्तज दन्त नाड़ी (३) कफज दन्त नाड़ी (४) त्रिदोषज दन्त नाड़ी और (५) आगन्तुज दन्त नाड़ी।

शोथ पकने पर भी यदि न बहे और यदि चीरकर मवाद न निकाला जाय अथवा व्रण होने पर अपथ्य किया जाय तो पीव मांसादिमें प्रविष्ट होकर गहरे चली जाती है। उसकी गति गहराईमें रहती है। इसलिये नलीके समान बहती रहती है। इसीसे उसे नाडीव्रण कहते है (१) वातजन्य नाडीव्रणमें टीस होती है, उसका मुँह होता है, नाडी मुखके आसपासकी त्वचाका रङ्ग सामान्य-त्वचासे अलग होता है, उसमेंसे जो स्राव होता है वह फेनदार होता है (२) पित्तज नाडीव्रणमें रोगीको प्यास अधिक लगती है, जलन होती है, उसमेंसे जो मवाद आता है वह पीला, गरम और दुर्गन्धित रहता है। पित्तज नाडी व्रणसे मवाद दिनमें अधिक बहता है (३) कफज नाडी व्रणसे जो स्राव होता है वह गाढ़ा लिबलिबा और चिकना होता है। खुजली होती है, व्रण कड़ा रहता है और रातमें स्राव अधिक होता है। (४) त्रिदोषज नाडीव्रणमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हैं और वह लगभग असाध्य होता है। (५) आगन्तुज नाडी व्रणमें फेनदार पतला, उष्ण, रक्त मिश्रित और थोड़ा थोड़ा मवाद आता है, मवाद बराबर बहता है और उसमें टीस अधिक होती है।

दन्तनाड़ीव्रण चिकित्सा--(१) वातजन्य नाडीव्रणमें ऊपरी भागमें पुल्टिश बांधकर यदि चीरने लायक हो तो चीरकर व्रण की जड़में अपामार्ग के बीज और सेंधानमक तेलमें पीसकर लेप करे। पित्तज नाडी व्रणको चीर कर उसमें तिल, मजीठ, जय-पाल की जड़ और मैनसिल पीसकर लेप करे। कफजन्य नाडी व्रणमें तिल, फिटकरी, दन्तीमूल, नीमकी पत्ती और सेंधानमक पीसकर लेप करे। आगन्तुज नाडी व्रणको चीरकर यदि वहां कोई शल्य हो तो उसे और मवादको निकाल कर तिल, मधु और घीका लेप करे। (२) यदि नाडी व्रण शस्त्र क्रियाके योग्य न हो तो उसमें सलाई डाल कर व्रण की गहराई और गतिका पता लगावे। इसके बाद किनारे काटकर क्षारोंकी पुट दी हुई सूत की बत्ती डाले और बारम्बार

निकाले। इससे व्रणका मुख बड़ा हो जायगा फिर उसकी चिकित्सा करे। लाल एरण्डके बीज पीसकर लेप करनेसे नाडीव्रण अच्छा होता है। (३) ऊपरी दांत जरा अधिक गहराई तक जाते हैं और उनका सम्बन्ध आंखों और कानोंसे विशेष रहता है। इसलिये यदि नाडीव्रण ऊपरी किसी दांत में हो तो दांत समझ बूझ कर निकाले अन्यथा नाडी वाले दांतका मसूड़ा शस्त्रसे चीर कर दांत निकाल दे और घावको क्षार या अग्निसे जला कर दाग दे। यदि दांत की उपेक्षा की जाय और उसे निकाला न जाय तो नासूरका घाव बढ़ता हुआ जबड़े की हड्डीको भी खराब कर देता है और जबड़ेकी हड्डी टूट जाती है। ऐसी अवस्थामें जड़से दांतको निकालनेके बाद जबड़े की सड़ी हुई हड्डीको भी निकाल देना चाहिये। ऊपरी जबड़ेके दांतको निकालनेसे रक्त अधिक बहता है और अधिक रक्त बहनेसे तृष्णा, दाह, पाण्डु, हिचकी आदि भीषण उपद्रव होते हैं। ऐसे रोगीकी आंखमें भी असर पड़ता है; वह काना भी हो जाता है। यही नहीं अर्दित रोग भी हो जाता है। इसलिये ऊपरी जबड़ेका दांत हिलता हो तो भी उसे सहसा न निकाले। (४) मुंह धोनेके लिये चमेली की पत्ती, धतूर की पत्ती, गोखरू और खैर की छालका काढ़ाकर कुल्ले करावे और दन्तनाडीमें शस्त्र कर्म करने पर इसीसे मसूड़े धोवे। (५) दांतके नाडीव्रणमें पहले रोगीको वमन-विरेचन और शिरो-विरेचन देकर शुद्ध करे। तब दांत उखड़वा कर नाडी व्रणको दागे। यदि व्रण टेढ़ी गतिका हो अथवा दो तीन ओर गया हो तो उसमें मोम अथवा गुड़ भर कर दाग देवे। दागनेके लिये एक सलाईके सिरे पर ऊन लपेट कर गरम तेलमें डुबावें और बिगड़े हुए मांसपर रखें। इसी तरह कई बार करें जिससे निकम्मा मांस जल जाय और जो दोष घावको नहीं भरने देते वे भी जल जायँ इसके बाद चमेली की पत्ती, मैनफल, खैर की छाल और छोटे गोखरूका काढ़ा कर घाव धोवे। इसी तरह वट, पीपल, गूलर, पाकर आदि क्षीरी वृक्ष की छाल का काढ़ा कर कुल्ले करावे, क्षीरी वृक्षके काढ़े और कल्कसे सिद्ध किये

हुए तेलको नाकमें डाले। (६) चमेली, मैनफल, कुटकी, गोखरू, मुलेठी, लोध, मजीठ, और खैरकी छालके काढ़े और कल्कसे तैल सिद्ध करे। यह तेल दन्त नाडी व्रणका शोधक और उसकी नली तथा घावको नष्ट करनेवाला है। (७) चमेलीकी पत्ती, धतूरकी पत्ती, बड़ी कटेरी की जड़, गोखरूका पंचांग, मजीठ, लोध, खैर और मुलेठीके काढ़े और कल्कसे सिद्ध किया हुआ तेल जात्यादि तैल कहलाता है। इसके प्रयोगसे दांतोंका नाड़ी व्रण आराम होता है। (८) यदि घाव सड़ गया हो तो पुराना सिरका और फल्दफयून (यूनानी दवा) काममें लावे जिससे खराब मांस नष्ट हो जाय। इसके बाद माजूफल और मुरेसककी पीसकर घाव पर दबा दे। यह दवा घावके दोषोंको समेट कर निकालती और नया मांस उत्पन्न करती है।

दन्तरोग

नाम और संख्या

आयुर्वेदमें दांतोंके रोग आठ प्रकारके कहे गये हैं। (१) दालन (२) कृमिदन्तक (३) भञ्जनक (४) दन्तहर्ष (५) दन्तशर्करा (६) कपालिका (७) श्यावदन्तक और (८) कराल। गदनिग्रहमें करालका नाम नहीं है। उसके बदले अठवां दन्त रोग हनुमोक्ष कहा गया है। अष्टांग हृदयमें भञ्जनकका नाम निर्देश नहीं है। किन्तु दन्तभेद, चलदन्त और अधिदन्त रोग विशेष लिखे हुए हैं।

लक्षण और उपचार

(१) दालन—वात विकारसे दांतोंको उष्ण स्पर्श तो अच्छा मालूम पड़ता है; किन्तु शीत स्पर्शसे बहुत वेदना होती है। कोई

ठण्डी वस्तु या पानी या हवा दांतमें लगते ही जोरका ठनका लगता है, जिससे मालूम पड़ता है कि कोई दांतोंको फाड़े डाल रहा है। इस विकारको दालन या शीतदन्त कहते हैं। डाक्टरीमें इसे टूथ एक (Tooth ache) या ओडोण्टो डायनिया (Odonto dynia) कहते हैं। विकृत शीत प्रकृतिसे यह विकार होता है। इसमें मसूड़ोंमें मवाद नहीं होता।

(१) इसमें दांतका स्वेदन करना अर्थात् सेंकना हितकारी है। गरम पानीमें सेंधानमक डालकर उसे थोड़ी देर मुंहमें रख कुल्ले करें। (२) व्रीहिमुख शस्त्रसे मसूड़ोंको खरोंच कर गरम तेलसे दागे। अर्थात् एक कटोरीमें तेल आग पर रख बांसकी कमची या मौलसिरी की दतून की अच्छी कूंची कर उसे उसी गरम तेलमें डुबाकर बार बार दांतको और मसूड़ेको दागे। (३) इसके सिवाय नागरमोथा, सेंधानमक, अनार की छाल, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, रसवत, मालकांगनी, जामुनकी छाल या गुठली, और सोंठका बारीक चूर्ण कर मधुमें सान दाँत और मसूड़ेमें रगड़े। (४) बरगद, पीपल, गूलर, पाकर आदि क्षीरी वृक्षों की छालका काढ़ाकर कवल धारण करे। (५) इसके सिवाय अणुतेल नाकमें डालनेसे भी दांतों की जड़ मजःबूत होती, दांतोंकी जड़में स्थित वायु शान्त होता, दर्द दूर होता है। (६) अथवा **दन्तलाक्षादि तैल** का कवल धारण करे। अर्थात् तिल तेल एक सेर लेकर कड़ाहीमें डाल आग पर चढ़ावे इसमें लाखका रस एकसेर, गौदुग्ध एक सेर तथा निम्न लिखित औषधियोंका काढ़ा डाल पकावे। लोध, कायफल, मजीठ, कमलकेसर, पद्माख, लालचन्दन, नील कमल और मुलेठी चार चार तोले लेकर १६ सेर पानीमें पकावे, जब ४ सेर शेष रहे तब उतार छान कर उसी तेलमें डाल सिद्ध करे। जब तेल सिद्ध हो जाय तब उतार छानकर बोतलमें भर दें। इस लाक्षादि तेलको मुखमें रखनेसे दांतों की पीड़ा, दांतोंका हिलना, दन्तमोक्ष, कपालिका, शीताद, मुखकी दुर्गन्धि, अरुचि, मुखका फीका-

पन आदि मुख रोग नष्ट होते हैं। (७) काली मिर्च पीसकर शहदमें मिला दांतों की जड़में मले। (८) छोटी पीपल बारीक पीसकर घीमें सान दांत की जड़में मले और थोड़ी देर तक इसी दवाको दबाये रहे (९) रोगीको भोजनमें लहसुन, या सोंठ या केसर डालकर देवे। भोजनके बाद सुखोष्ण जलसे कुल्ले करे। पाय: वायु शीतसंसगसे वेदना उत्पन्न करता है; किन्तु कभी कभी उष्णतासे दुष्ट वायु भी मुख के पिछले भागमें आश्रय लेकर वेदना उत्पन्न कर देता है. ऐसी दशा में उष्णवायुवानाशक औषधियोंके साथ तरी पहुँचाने वाली स्नेहन वस्तुओंका प्रयोग अधिक हितकारी होता है।

(२) कृमिदन्तक—वातकी प्रधानता सहित वात-पित्त-कफ तीनों दोष विकृत होकर किसी दांतकी जड़के पास आश्रय लेते हैं और दन्तमज्जाका शोषण कर दांतों को पोला कर देते हैं। उस पोले भागमें अन्न अथवा मल भर कर सड़ता है, उसमें दुगन्धि उत्पन्न होती और छोटे छोटे कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये बिना कारण दांतोंमें तीव्र वेदना और चुभन तथा टीस पैदा होती है। कभी कभी वह वेदना बन्द भी हो जाती है। दांतोंके आस पासकी जगह और मसूडा सूज जाता है, वहां भी वेदना होती है, दांत हिलता और रक्त और मवाद निकला करता है। इसकी मुख्य पहचान यह है कि इस विकारसे ग्रसित दांत या दाढ़का नीचेका भाग जहां आहार कुचला जाता और छोटा छिद्र होता है काला पड़ जाता है। इस विकारको कृमिदन्तक कहते हैं। दांत देखनेसे छिद्र के पास कालापन स्पष्ट दिखता है। इसे अंग्रेजीमें डेण्टलकेरीज़ (Dental caries) कहते हैं। दांतोंके बीचमें मैल या अन्न भाग जमा होकर जब सड़ता है तब उसमें अम्लता आती है और वह अम्लता ही दांतोंमें व्रण उपत्न्न कर पोलापन लाती है। प्राय: कृमिदन्त वालोंके दांतोंमें शूल और दन्तरोगके लक्षण होते हैं। अर्थात दन्तका कारण भी कभी कभी कृमिदन्त होता है। शरीरमें विटामिन डी० और खटिकांश की कमी से कृमि उत्पन्न होते हैं।

(१) कृमिदन्त यदि हिलता न हो तो उसका स्वेदन कर रक्त निकाले। वातघ्न और स्निग्ध लेप लगावे, नस्य देवे, आहार भी वातघ्न स्निग्ध करे। गरम पानीमें पोटाशियम परमेंगनेट डाल कर कुल्ले करे अथवा कटसरैयाकी पत्ती, चमेलीकी पत्ती, अमरूदकी पत्ती और मौलसिरीकी पत्ती खूब पका कर उसीकी भाफ मुंह खोल कर लेवे। इसी काढ़ेसे कुल्ले भी करे (२) दांतके पोले भागमें गुड़ अथवा मोम भरकर टेढ़े नोककी सलाई आगमें गरम कर उसी जगह दागे। इससे गुड़ या मोमके उष्ण होकर पिघलनेसे दांतमें जमा हुआ मल और आहारांश भी लारके साथ गिरजायगा और कृमि भी गिर जावेंगे। (३) दांतके पोले भागमें हींग अथवा कपूर भर दे इसकी गन्धसे कृमि मर जावेंगे और दोष लारके द्वारा बह जावेगा (४) यदि दांतोंमें कृमिजन्य दन्त शूल होतो सतवनकी गोंद या दूध अथवा मन्दारका दूध दांत के पोले भागमें भर दे तुरन्त पीड़ा बन्द होगी। (५) हींग, कायफल, हीराकस, सज्जीखार, कूट और मिर्चका चूर्ण किसी बारीक कपड़ेमें लपेट या फाहेमें दबाकर दाढ़में दवावे तुरन्त दाढ़की टीस और उनका ठनका बन्द होगा। अथवा इन्हीं औषधियों के क्वाथ और कल्कसे तेल सिद्ध कर उसीका कवल धारण करे अथवा एरण्ड की जड़ छोटी भटकटैया, बड़ी भटकटैया और गोरखमुंडी या अकरकराके काढ़ेमें तेल मिलाकर कुल्ले करे, तुरन्त वेदना बन्द होगी। (६) यदि इतने पर भी वेदना और ठनका शान्त न हो तो दांत नीचेका हो या हिलता हो तो उसे तुरन्त निकलवा दे। यदि न भी हिलता हो तो स्वेदन कर और पहले मसूड़े से उसे अलग कर छोटी संडसी अथवा दन्तनिर्घातन शस्त्रसे खींचकर उसे निकलवा दे और तेल, मधु और मुलेठी मिलाकर कुल्ले करे अथवा तेल मुलेठी या केवल मधुके कुल्ले करे। आजकल पानीमें पोटाशियम परमेंगनेट मिलाकर कुल्ले कराये जाते हैं। इसके बाद विदारीकन्द, मुलेठी, सिंघाड़ा, कसेरू, एक एक छटांक लेकर पीसकर कल्क करे। एक सेर तेलमें यह कल्क और दश सेर दूध डाल कर तेल सिद्ध करे। इस तेल

का नस्य लेनेसे कृमिजन्य दोष और दांत उखाड़ने का दोष असर नहीं करता। (७) कृमिदन्तका कष्ट निवारण करनेके लिये नगरमोथा, देवदारु, दारुहल्दी, पुननवाका लेप करे, स्निग्ध भोजन दे (८) सरसोंका तेल, करञ्जका तेल, झुनझुनी वनतरोईके बीजोंका तेल, निगु ण्डीके बीजोंका तेल, नीमके बीजोंका तेल, पीलूका तेल और खैर मिलाकर दांतोंमें लगावे तो कृमिदन्तका कष्ट दूर होता है। (९) भटकटैयाके बीज और थोड़ा तेल एक करछुलीमें रख उसमें अंगार रख दे और उससे निकलने वाला धुआ दांतोंमें लगने दे। (१०) नीलकी जड़ अथवा आंवलेकी जड़, अथवा काकजंघा अथवा कडू लौकीकी जड़ अथवा सेहुंडकी जड़ अथवा कुन्दरूकी जड़ अथवा स्वर्ण क्षीरीकी जड़ कृमिदन्तमें दबाने से कष्ट निवारण होता है। (११) अरणी अथवा सारिवाके पत्ते अथवा जड़ मुंहमें रख कृमिदन्तके नीचे जोर से दबा कर चबावे, इससे दांतके कीड़े लारके साथ गिर जाते हैं और दांत बलवान होते हैं। (१२) गन्दनाके बीज, खुरासनी अजवाइन, और प्याजके बीज बारीक पीसकर मोममें अथवा बकरी की चर्बी में मिलावे और उसे आगपर डाले। आगके ऊपर एक ऐसा पोला ढक्कन या घड़ेका हिस्सा रखें जिसके बीचमें एक छिद्र हो और उस छिद्रमें नली लगी हो उस नलीका एक सिरा मुंहमें लगावे, जिससे आगसे औषधिका उठता हुआ धुआं दांत तक पहुँचे। इस दवाके धुआंसे कीड़े मर जावेंगे। (१३) जिस मनुष्यके दांतमें कीड़े हों उसे सदा अजीर्णसे बचते रहना चाहिये; क्यों कि अजीर्णसे अन्नका परिपाक नहीं होता और अन्न सड़ कर कृमि उत्पन्न करता है। भोजन इतना कम करे जितना ठीकसे पच जाय, बासी और सड़ा हुआ भोजन न करे। मछली दूध जैसे विरुद्धाहारसे बचता रहे। खट्टी डकार और अम्लपित्तके खट्टे वमनका अवसर न आने दे। अपने दांतोंसे अखरोट, सुपारी, बादाम, जैसी कड़ी वस्तुएं न तोड़े। मिठाई न खावे, क्यों कि मीठेपनसे कीड़े अधिक बढ़ते हैं। खट्टे अंगूर, खट्टे अनार, आम या नींबू आदि खट्टी चीजोंकी चटनी

न खावें, क्योंकि अम्लतासे दांतोंकी क्रिया क्षीण होती है। गरम गरम खाकर ठण्डा पानी न पीवे अथवा ठण्डी वस्तु खाकर फिर गरम या गरम वस्तु खाकर ठण्डी वस्तु न खावे। अखरोट, छुहारे आदि स्वभावतः दांतोंके लिये हानिकर होते हैं, इन्हें न खावे। नित्य भोजनके पश्चात खरकासे दांत साफ कर मंजन लगावे या दतून कर अच्छी तरह कुल्ले करे। यह स्मरण रहे कि ऐसा करते समय मसूड़ोंको हानि न पहुँचने पावे। नित्य सवेरे मंजन और दतून करे, जिससे दांतोंमें मैल न जमने पावे; किन्तु दांतोंको इतना न रगड़े कि उनके ऊपर की चमक निकल जावे। सोनेके पहले दांतमें कड़ुवा तेल मले इसी तरह शयनकर उठनेपर भी दांतोंमें तेल लगा ले। उष्ण प्रकृतिवाले गुलरोगन या बकायन का तेल अथवा मस्तगीका तेल अथवा पहले शहद मला करें इसके बाद तेल मलें। भुनी फिटकरी और सिरका मिलाकर मलने से मसूड़ोंका मांस कड़ा होता और दांतोंकी जड़ोंके मवाद और मलको साफ करता है। जिनकी प्रकृतिमें खुश्की है उन्हें चन्दन, गुलाबके फूल, कस्तूरी, कपूर, झाऊ, अनारके फूल, हीराबोल, माजूफल, मोती, सुपारी, जौका आटा, झाऊके पत्ते, शहतूतके पेड़की छाल जैसी खुश्क किन्तु प्रकृतिमें ठण्डी वस्तुओंका उपयोग करना चाहिये। यदि खुश्की शीत तरी के कारण हो तो जला हुआ नमक, जला पापड़खार, सोंठ, दालचीनी, सूखा जूफा, कुन्दके फूल, पहाड़ी गौका जला हुआ सींग, पोदीनेकी राख, हाऊबेर, जराबन्द गोंद, इन्द्रायनका गूदा, अकरकरा, छुहारेकी गुठलीकी राख, अंगूरकी बेलकी राख, मस्तगी, सीसेकी भस्म जैसी खुश्क गरम चीजोंका व्यवहार करे। यदि गर्मी और सर्दी की प्रकृति समान हो तो ऐसी दोनों तरहकी वस्तुओंका मेल कर व्यवहार करे। (१४) भुनी हींग और कपूर दांतके नीचे दबावे (१५) सोंठ १ भाग और भुनी फिटकरी २ भाग मिलाकर दिनमें तीन बार दांतमें रगड़े तो दन्त शूल मिटता है (१६) हीराकस, हींग, फिटकरी और देवदारु पानीमें पीस गोली बनावे। इस गोलीको दन्तके नीचे रखनेसे दन्तशूल और कृमि

नष्ट होते हैं।

(३) भंजनक—जिस दन्त रोगमें कफ और वातके विकारसे मुख टेढ़ा पड़ जाय और दांत टूट जायँ उसे भञ्जनक या अवभञ्जक कहते हैं। आचार्य वाग्भटने भञ्जनकका उल्लेख नहीं किया; किन्तु उन्होंने **दन्तभेद**का वर्णन किया है, जिसमें कहा गया है कि दांतोंमें टीस होती है, दांत फूटते हैं, उनमें ठनका होता है और दांतमें चीरा पड़ता है। ये लक्षण प्रायः भञ्जनकसे मिलते हैं। इसकी चिकित्सामें भी उन्होंने वातनाशक क्रिया करने का विधान लिखा है। इसमें कफ और वात नाशक क्रिया करे और अर्दितरोग नाशक उपायोंका अवलम्बन करे। नारायणतेल ठुड्डीपर मलकर सेंकें और रुई रखकर ठुड्डी बांध दें जिससे स्वेदन होकर पसीना आवे। इससे वेदना और टीस मिटेगी। नारायण तेल वातघ्न औषधियोंके क्वाथमें मिलाकर वस्ति देवे अथवा एरण्डतैलका जुलाब देवे। खट्टी और अधिक खारी वस्तुओंसे परहेज रखे। शिरोवस्ति देवे अर्थात शिरमें चारों ओर उड़दके आटेसे एक अंगुल ऊँची दीवालसी बना शिरमें तेल डाले और एक घंटा रखकर स्नेहन होने दे। नाक और कानमें नित्य तेल डाले और आंखोंमें घृत तर्पण करे। अर्थात सोधा लेटकर आंखोंके नीचे आटे की एक अंगुल ऊँची मेंड सी बनाकर आंखोंमें पिघला हुआ घी डालकर धीरे धीरे आंखोंको खोले और बन्द करे। १५ मिनट तक ऐसा करता रहे। दांतोंकी जड़ोंमें कफ वायुके दोषसे निकम्मा मवाद इकट्ठा हो जाता और उनकी जड़ोंको सडाकर खराब कर देता है जिससे वे टूटने और फटने लगते हैं। वे हिलते भी हैं। अतएव अकरकरा, अफीम, कुन्दरूका गोंद पीसकर स्त्री दुग्ध अथवा गौदुग्धमें सानकर मुखमें रखे इससे वेदनाकी शान्ति होगी और दांतोंका फटना और टूटना बन्द होगा। दांतोंकी जड़ोंमें दोष सञ्चय न होने देनेके लिये दांतोंकी जड़ोंको गरम तेलसे नरम कूंचोदार दतूनसे सेंके और दाग दे।

(४) **दन्तहर्ष**—वात और पित्तके विकारसे दन्तहर्ष अर्थात दांतोंमें सिरहन उत्पन्न करनेका विकार होता है। कोई खट्टी वस्तु खानेसे दांतोंमें बहुत दर्द होता और ऐसा मालूम पड़ता है कि दांत हिलने लगे। दन्तहर्ष वाला मनुष्य कोई ठण्डी या रूखी वस्तुएं दांतसे चबाकर नहीं खा सकता। खट्टी और ठण्डी वस्तुएं दांतमें सहन नहीं होतीं। यहाँ तक कि ठण्डी हवा लगनेसे भी दांतोंमें दर्द होने लगता है और अधिक उष्ण पदार्थोंका स्पर्श भी सहन नहीं होता। गदनिग्रहकार इसे केवल वात विकारसे उत्पन्न मानते हैं। अंगरेजीमें इसे ओडोंएटाइटीज (Odontitis) कहते हैं। खट्टी और कषाय रसकी वस्तुएं दोषको दांतोंकी जड़में रोक लेती हैं। इससे उनका असर दांतोंकी जड़में पहुँचता है। आरम्भमें यदि खट्टी वस्तु बहुत पतली हो तो दन्तहर्ष उत्पन्न नहीं करतीं। कभी कभी दन्तहर्षका कारण भीतरी होता है। अम्लपित्तके कारण या पक्वाशय खट्टी वस्तुओंको ठीकसे पचा न सके तो वह अम्लभाग आमाशयमें पहुँचता है और अन्ननलिका द्वारा वमनके साथ बाहर आता है। वह अम्ल भाग भी दांतोंमें हर्ष और अवसाद उत्पन करता है। इस प्रकार अधिक दिनों तक होते रहनेसे उसके परमाणु दांतोंमें असर करते और दांतोंको निकम्मा कर देते हैं। खट्टी डकारोंका आना, मुँहका स्वाद कड़ुवा रहना और कभी कभी मुंहमें खट्टे पानीका कुल्ला सा आजाना भी इस रोगके उत्पन्न होनेका कारण होता है।

दन्तभेदके समान दन्तहर्षमें भी वातनाशक क्रिया करनी चाहिये। (१) तिल और मुलेठी दूधके साथ पीस कर मुंहमें थोड़ी देर रख और कुलकुला कर कुल्ले करे। (२) निशोथका कल्क डालकर घी सिद्ध करे और उसका कुनकुना कवल धारण करे अथवा वातनाशक द्रव्योंके काढ़ेका कवल धारण करे। (३) कूट, दारुहल्दी, लोध, नागर-मोथा, मजीठ, पाढ़ी, चव्य, तेजबल और हल्दी पीसकर कुष्ठादि दन्तमंजन तैयार करे। इसके लगानेसे दन्तहर्ष, दांतोंसे होने वाला

रक्तस्राव और दाँतोंका ठनका दूर होता है। (४) स्नेह युक्त पदार्थोंका धुआँ ले, स्नेहयुक्त पदार्थोंका नस्य ले और मांस रसमें अथवा दूधमें तैयार की हुई यवागू खावे, दूध, घी, मलाईका व्यवहार करे तथा शिरोवस्ति और अन्यवात नाशक उपचार इसमें हितकारक हैं। (५) यदि उष्ण प्रकृति हो तो खुर्फा की पत्ती तथा पत्ती न मिलने पर बीज और तुलसीकी पत्ती चबावे (६) छुहारा पकाकर उसके कुनकुने क्वाथसे कुल्ले करे (७) जैतूनके तेलका कवल धारण करे और भोजन के समय मोटी रोटीका टुकड़ा गरम गरम दांतोंके नीचे दबावे। (७) यदि प्रकृति साधारण हो तो अखरोटकी बीजी, गरी, कडुवे बादाम की गिरीको पीसकर गरम गरम दांतों पर मले। अथवा जैतूनके तेल की गाढ़ी काट गरम कर दांतों पर मले (८) यदि भीतरी आमाशयस्थ अम्लताके कारण दन्त हर्ष हो तो पहले आमाशयके दोष निकालनेके लिये मैनफल और सेंधानमक फांककर कुनकुने पानीसे उतार वान्ति करे। इसके पश्चात अन्य ऊपर लिखे उपाय काममें लावे (९) जो लोग प्रायः अधिक गरम गरम भोजन किया करते हैं या एक दम ठण्डा भोजन किया करते हैं उनके दांतोंमें भी खराबी आ जाती है। ऐसी दशामें दांतोंमें सर्दी या गर्मी पहुँचनेसे दर्द और सिहरन होती है और वह मनुष्य कोई कड़ी वस्तु चबाकर नहीं खा सकता। ऐसी दशा में कभी कभी दांतों की चमक निकल जाती है और उसके कारण सिहरन होती है। इसमें स्निग्ध पदार्थोंका कवल धारण करना लाभदायक होता है।

(५) **दन्तशर्करा**--दांतों की ठीक सफाई न करनेसे, दतून और मंजन करनेमें लापरवाही या शीघ्रता करनेसे दांतोंमें मैल सञ्चित होता है और वह मैल कफ और वायुके प्रकोपसे जमता और सूखता रहता है, यहां तक कि उसमें वातकी सी खरखराहट आ जाती है। ऐसे रोगको दन्तशर्करा कहते हैं। इस प्रकारके मैलमें दुर्गन्धि होती है। इसके कारण मुँहसे बुरी बास आया करती है। इस मलके कारण

धीरे धीरे दाँतो की गुणग्राहकता भी नष्ट होती रहती है। डाक्टरीमें इसे टार्टर (Tarter) कहते हैं। डाक्टरोंका मत है कि दांतोंके बीच में फँसी हुई वस्तुओंके सड़नेसे कैलसियमफासफेट विशिष्ट खनिज पदार्थ उनकी जड़ पर जम जाता है। जो चूनेके समान होता है। यह चूने या फिटकरीके समान वालूकी सी रेत कुछ दिनोंमें दांतोंमें चिपट कर पथरा जाती है और सहज ही उसे नहीं निकाला जा सकता। दोष विकृतिके अनुसार उसका रङ्ग सफेदीके अतिरिक्त हरा, पीला अथवा काला भी हो सकता है। हकीमीमें इसे फलजा या दांत का पीला होना कहते हैं। पक्वाशय तथा आमाशयसे निकली हुई दूषित भाफके साथ विकृत परमाणु ऊपर आते और दांतों की जड़ोंमें चिपट जाते हैं। साधारणतः ऐसे परमाणु जीभके चलते रहनेसे कम होते रहते हैं; किन्तु जो संचित होते हैं वे बिना दतून और मंजन के दूर नहीं होते।

इसकी चिकित्सा करनेमें यह ध्यान रहे कि पहले बीमारीके कारणोंको दूर करनेका प्रयत्न करे, नित्य दतून और मंजन करे। आमाशयस्थ दोषोंको वान्ति कराकर निकाल दे। पक्वाशय और आंतों के विकार और मलको विरेचन देकर बाहर करे। दांतोंमें घनी भूत हुए मैलको दतूनसे धीरे धीरे रगड़कर निकाले। अथवा निपुण दन्त-चिकित्सकसे दन्तशोधन अस्त्र द्वारा मैल छिलवा दे। इसके बाद सेंधानमक, समुद्रफेन, सीपी की राख, सीसेकी भस्म और नीलगाय के सींग की राख मिलाकर मंजन बनावे। इस मंजनसे शर्करा दोष दूर होते हैं। अथवा लाखका चूर्ण शहद मिलाकर दांतोंपर रगड़ा करे। साथ ही दन्तहर्ष सम्बन्धी उपचार भी इसमें लाभदायक होते हैं।

(६) **कपालिका**—यदि दांतोंमें मैल जमता रहे और उसे निकालने की परवाह न की जाय तो दन्तशर्करा घनीभूत और कठिन होकर सूख जाता है और दांतोंसे मिट्टीके फूटे हुए घड़े की खपरीके समान चिप्पी निकलती हैं। उसे कपालिका कहते हैं। इस बीमारीसे

दांत नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि दन्त शर्करा की चिप्पीके साथ ही दांतों में जो ऊपर चमकदार दन्तवल्कल या दन्तवेष्ट भाग होता है वह भी निकल जाता है। दन्तवल्कल निकल जानेसे दांत बेकाम हो जाते हैं। इस दन्तवल्कलको अंग्रेजीमें इनामेल (Enamel) कहते हैं। यह दन्तवल्कल शरीरके अन्य सब धातुओंसे अधिक कठिन होता है। यह दांतोंमें सीमेंटके समान जमा रहता है। यद्यपि यह दांतोंमें बहुत मजबूतीसे जमा रहता है तथापि जैसे मोर्चे या जंगसे लोहा खराब हो जाता है और उससे चिप्पी निकलती है उसी तरह मैल रूपी जंगसे यह दन्तवल्कल भी दांतोंसे अलग होने लगता है। इस दन्त-वल्कलके निकल जानेसे दांतोंमें गर्मी सर्दी सहने की शक्ति मारी जाती है। कोई कड़ी चीज चबाना कठिन होता है। दांतोंमें दर्द भी होने लगता है।

कपालिका एक प्रकारसे असाध्य व्याधि है। किन्तु यदि दन्त-शर्करा होनेके समय ही सावधानी की जाय और सावधानीसे दांतों से दन्तशर्कराकी परत निकाल डाली जाय और दन्त वल्कलको हानि न पहुँचने पावे तो दांतोंकी रक्षा हो सकती है। दन्तशर्करा और दन्तहर्ष में जो उपाय कहे गये हैं उन्हें कपालिकामें भी प्रारम्भिक उपायके रूपमें करता रहे। (२) हबुलगार, फिटकरी, जराबन्द, तबील को बारीक पीसकर दांतोंमें रगड़े इससे मल दूर होता और दांतों की चमक नहीं जाने पाती। दांतोंमें मोटी रोटीका गरम टुकड़ा बारम्बार दबावे। यदि परहेज न हो तो आटेमें अण्डेकी जर्दी सानकर रोटी सी बना दांतोंमें दबाया करे। इससे स्वेदन होकर चिपका हुआ मल जड़ छोड़ देता है और दांतों की चमकको हानि पहुँचाये बिना निकाला जा सकता है। इस उपायमें रोटीका टुकड़ा इतना गरम हो कि उसे दांतोंमें दबानेसे आंखोंमें आंसू आ जायँ (३) जंगली प्याज भूनकर कूटे और सिरकेमें मिला कर गरम गरम दांतोंमें रखें। इससे भी शर्करा जल्दी निकल जाती है और दन्तवल्कलको हानि नहीं पहुँचती बल्कि दन्तवल्कलमें अधिक चमक आती है। (४) बकरीकी तिल्ली भूनकर कूट

ले और गरम कर उसीसे दांतोंको सेंक पहुँचावे तो दाँतोंमें जमी हुई सर्दी निकल जाती, मल दन्तवल्कलको छोड़ देता और सहज ही निकल जाता है। (५) मस्तगी पीसकर गुलरोगनमें मिला गरम कर कवल धारण करे। इससे दांतों और मसूड़ोंको शक्ति मिलती है और दाँतों की चमक बनी रहती है। (६) राईका तेल मुखमें रख कवल धारण करे। (७) यदि दांतोंमें विशेष उष्णता उत्पन्न हो और वह दांतों की चमकको हानि पहुँचावे, दाँत रूखे और सुन्न हो जावें, उनका स्पर्शज्ञान कम हो जावे; अर्थात् दन्तशर्करा या दाँतकी चिप्पीके कारण मसूड़ोंके वेष्ठनका सिरा बन्द हो जावे, दाँतोंको छूनेसे वे गरम मालूम पड़ें, मसूड़े लाल हो जावें और दांतोंके रङ्गमें भी कुछ अन्तर आ जावे या लाली आ जावे तो गुलरोगनमें कपूर और चन्दन मिला कर दांतोंमें मले और मुखमें भी रखें।

(७) **श्यावदन्तक**—जब पित्तके प्रकोपसे रक्त विदग्ध हो जाता है और रक्त तथा पित्त दोनों की विकृतिसे दांतोंमें धूसरता, श्यामता अथवा नीलिमा आ जाती है तब उसे श्यावदन्तक कहते हैं। अष्टांग-हृदयकार इसमें वायुकी भी विकृति मानते हैं। यद्यपि रक्त विदग्ध होकर श्यामता ला सकता है तथापि वायुदोषसे श्यामता तथा नीलिमा का आना अधिक सयुक्तिक प्रतीत होता है। यह दोषोंकी विकृति दांतोंमें रङ्ग लानेके साथ ही प्रकृतिमें कई परिवर्तन करती है। कभी कभी दूषित विकार दांतोंके भीतर घुसकर सड़ जाते हैं। इससे दांतों में घुन लग जाता है, वे भुरभुरे हो जाते हैं। दांत ऊपरसे ज्योंके त्यों रहते हैं; किन्तु उनके रंगमें हरापन या कालापन आ जाता है। ऐसी दशामें मस्तिष्क शोधन करना आवश्यक होता है, और दाँतोंको पुष्ट करने वाली और जड़को जमाने वाली औषधि देनी पड़ती है। रसवत, नारदेन, नागरमोथा, माजूफल और अकरकरा पीसकर दांतों पर मले। इससे निकम्मे और हानिकारक दोष दाँतपर असर नहीं कर पाते। साथ ही अधोरा, अनारके फूल और फिटकिरी सिरकेमें

औटाकर कुल्ला करे। जिससे दन्तगत विकार छूटकर अलग हो जाते हैं। यदि दांतोंमें घुन लग जाने और भुरभुरापन आ जानेसे पोलापन आ गया हो तो रूमेमस्तगी, माजूफल और कपूर भर दें। इससे दाँतोंमें दृढ़ता आ जाती और किसी वस्तुको चबाते समय कष्ट बोध नहीं होता। साथ ही वेदना की भी शान्ति होती है। यदि आवश्यक हो तो रेतीसे खराब भागको रेतकर साफ कर दे जिससे वह खराबी उसके दांतको न बिगाड़ सके। रेतनेके बाद उस जगह स्नेहदग्ध कर दे अर्थात् गरम तेलसे नरम कूँचीके द्वारा दाग दे। दौना अरबाका काढ़ाकर उसमें जैतूनका तेल मिलाकर दांतोंपर मले तो फिर उस दाँतमें खराबी नहीं आने पाती। दांतोंमें घुन नहीं लगने पाता।

पित्त और रक्तके साथ ही वायुकी विकृति होनेसे दांतोंमें दृढ़ता रखने वाली शक्ति और चिपकाकर रखने वाली वस्तु नष्ट हो जाती है। जिससे दांत रूखे और सूखे होकर फटने लगते हैं और भुरभुरे हो जाते हैं। जो लोग बूढ़े हो रहे हैं या निर्बल हैं अथवा जिन्हें आवश्यकतानुसार भरपेट और पौष्टिक भोजन नहीं मिलता और जिनकी पचन शक्ति भी क्षीण हो गयी है, जिनके शरीरमें खुश्की और दुर्बलता रहती है, उनमें यह विकार अधिक देखा जाता है। पोषक शक्ति और साधनोंकी कठिनताके कारण इसका अच्छा होना कठिन होता है। तथापि यथा सम्भव पौष्टिक भोजन देवे। अण्डे की सफेदी, इसबगोलका लुआब, गधीका दूध और बनफसाका तेल इनमेंसे जो अनुकूल और प्राप्त हों उन्हें मिलाकर दांतोंमें रखे और उन्हींसे कुल्ले करे। इससे लाभ होता है और आगेका विकार की वृद्धि नहीं होने पाती।

यदि दांतोंका रंग पतले दोषके कारण हो तो थोड़े दिनोंके उपायसे रंग बदल जाता है; किन्तु यदि दोष गाढ़े और तीक्ष्ण हों तो अधिक दिनों तक उपाय करना पड़ता है। नस्य, गण्डूष और स्वेदन तथा शिरोवस्ति द्वारा मस्तिष्क और मुखके दोषोंको शुद्ध करे। यदि दांतों का रंग पीला हो तो हरी मकोयका स्वरस निकालकर उसमें सिरका

मिलावे और कुल्ले करावे। इसके पश्चात मसूर, जव और खतमीके बीज पीसकर सिरकेमें सान दाँतोंपर रखे। यदि दांतोंका रंग काला हो तो रूमेमस्तगी और छरीला पीसकर गुलरोगनमें मिलाकर दांतोंमें रगड़े। यदि कफ विकृतिसे दांतोंका रंग चूनेसा हो और उनमें भुरभुरापन हो तो मस्तगीका तेल दांतों पर लगावे। इन्द्रायणके बीज सिरकेमें पकाकर छान ले उसीसे कुल्ले करें, इससे दांत बिगाड़ने वाले परमाणु और रोगाणु नष्ट होते हैं। इन्द्रायण विष है, इसलिये स्मरण रखे कि कुल्ला करते समय पानी पेटमें न जाने पावे।

इरिमेदादितैल—दन्त विकारके लिये बहुत लाभ दायक है। चार सौ तोले खैरकी छाल कूट कर २०४८ तोले पानीमें पकाकर चतुर्थांश काढ़ा करे। काला खैर (या ऐलकी छाल) लौंग, गेरू, अगरु, पदमाख, मजीठ, लोध, मुलेठी, लाख, बरगदकी जटा, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कपूर, कंकोल, सफेद खैर, पतंग, धौके फूल, बड़ी इलायची, नागकेसर, कायफल सब एक एक तोले लेकर पीसकर कल्क बनावे। इसके बाद दो सेर तेल कड़ाहीमें चढ़ावे गरम होनेपर उसमें काढ़ा और कल्क मिलाकर तेल सिद्ध करे। इस तेलको दांतों और मसूड़ोंमें रगड़नेसे सब प्रकारके मुखरोग नष्ट होते हैं। दांतोंकी जड़का सड़ा हुआ मांस, हिलनेवाले दांत, सौषिर, शीताद, दन्तहर्ष, दन्तविद्रधि कृमिदन्त, श्यावदन्त, दांत फूटना, मुख की दुर्गन्धि, तथा जीभ-तालु और ओष्ठ रोग आराम होते हैं।

(८) **कराल**—दन्तगत वायु धीरे धीरे जब दांतोंको बेडौल और भयानक तथा विकट बना देता है तब उसे कराल कहते हैं। यह रोग प्रायः असाध्य होता है। किन्तु इसकी कई अवस्थाएं ऐसी हैं जिनकी चिकित्सा करनेसे विकृति रुक जाती हैं। बेडौल और भयंकर दांत तो फिर सुधर नहीं सकते। किन्तु कभी कभी दाँत साधारण अवस्थासे कुछ बढ़ जाते हैं। दांतों की जड़में दोष संचय होनेसे दांतों की चौड़ाई बढ़ जाती है। यदि दोष-विकृति उष्णताके

कारणसे हुई हो तो दांतोंमें दर्द भी होता है। इसमें फस्द खोलना चाहिये और विरेचन देकर पेट साफ कर दे, जिससे दोष ऊर्ध्वगामी न होने पावें। दांतों की वृद्धि रोकनेके लिये उनकी क्रियाशीलता सुन्न कर देना चाहिये। इसके लिये खसखसके दाने पानीमें औटाकर छानकर पीवे और गुलाब जलसे कुल्ले करे। सरोकाफल, माजूफल, माई सबको सिरकेमें पीसकर दांतों पर रखे। यदि कफकी तरीसे दांतोंमें बेडौलपन आवे अथवा चपटेपनकी वृद्धि हो तो उसमें वेदना नहीं होती। इसमें शिरोविरेचन करना आवश्यक है। साथ ही जुलाब देकर आंतों की और आमाशय की सफाई भी कर दे। उष्ण और रूक्ष औषधियोंके काढ़ेसे कुल्ले करे। नागरमोथा और रूमे मस्तगी चबावे तथा लहसुन तेलमें मलकर दांतोंपर मले। रबीके खेतोंमें एक तितली नाम की वनस्पति ऊगती है, उसे पानीमें पीसकर दांतोंमें मले।

कभी कभी दांतों की लम्बाई बढ़कर बेडौलपन आता है। कभी कभी किसीके कोई दांत स्वभावतः बड़े निकलते हैं। ये अधिक कड़े होते हैं। समय पाकर दूसरे दांत कुछ घिस जाते हैं; परन्तु अपनी कठोरताके कारण ये नहीं घिसते, अतएव अधिक लम्बे मालूम पड़ते हैं। ऐसे दांतके कारण भोजन करने और कौर कुचलनेमें असुविधा होती है। ऐसे दाँतको नीचेसे रेतीसे छीलकर छोटा करा देना चाहिये। रेती चलाते समय यह सावधानी रखे कि दांत जड़से हिल न जाय। अथवा टेढ़ा न हो जाय। कभी कभी दांतों की जड़में शोथ हो जानेसे दांत यद्यपि अपनी जगहसे उखड़ता नहीं तथापि आगे आगे बढ़ा हुआ मालूम पड़ता है। भोजन करने और कोई वस्तु कुचलनेमें दर्द होता है। फस्द खोलकर रक्त निकालने और विरेचन देनेसे दोष निकल जाते और शोथ मिट जाता है। हरी मकोय की पत्ती और ताजे गुलाबके फूल पीसकर रस निचोड़ ले और इसीसे कुल्ले करे। कभी कभी दांतों की जड़के शोथके कारण दाँत जगह छोड़ देता है और आगे बढ़ा मालूम पड़ता है। यदि जड़से अधिक

न हिला हो तो उसे हाथसे दबाकर बैठा दे। इसके बाद मस्तगी महीन पीसकर दांत और मसूड़ेमें दबाकर लगा दे। इससे जड़ पुष्ट होगी और दांत बैठ जायगा। कुछ लोग ऐसे दाँत सोनेके तारसे कसवा देते हैं। जब तक दाँत अपनी जगह पर दृढ़तासे बैठ न जाय तब तक फिटकरी और बारह सिंघेके सींग की राख उसपर नित्य दोबार दबाते रहें।

(६) **दन्तचलन या चलदन्त**—आचार्य वाग्भटने दन्त चलनका अलग वर्णन किया है। जब दांत हिलते हैं और खाते समय दर्द होता है तब उसे दन्तचलन कहते हैं। ऊपर जो दन्तरोग कहे गये हैं, उनमें भी कईमें उपद्रवरूपसे दांत हिलते हैं; तथापि ऊपरके कोई रोग न होने पर भी विविध कारणसे दांत हिलने लग जाते हैं। बच्चोंके जब दांत उखड़नेको होते हैं तब उनके दन्तकोटर ढीले और चौड़े हो जाते हैं, दूधके दांत उखड़नेकी तैयारी करते और हिलते तथा स्थायी दांत निकलनेके लिये बढ़ने लगते हैं। बूढ़े लोगोंमें भी पोषण और शक्तिसंरक्षणका अभाव होने लगता है। मसूड़ोंमें खुश्की आकर सिकुड़न आती है। उधर दांतोंके पोषणके द्रव्य भी यथेष्ट दांतोंमें नहीं पहूँचते, अतएव दांत हिलने लगते हैं। परन्तु यह विकार अवस्थानुसार स्वाभाविक होता है अतएव इसकी चिकित्सा नही (१) किन्तु जब जवान लोगोंके दन्त किसी रोगके परिणाम स्वरूप हिलने लगते हैं और दन्तकोटर न बढ़ने पर भी हिलने लगते हैं तब कारण ढूंढकर चिकित्सा करना आवश्यक हो जाता है। दांतोंको पुष्ट करने वाले धातु जब दांतों तक नहीं पहुँच पाते और दन्तमूलके पास मसूड़े निर्बल और शिथिल हो जाते हैं तब भी दांत हिलने लगते हैं। (२) जिन लोगों का शरीर दुबला हो, पौष्टिक अन्नका अभाव हो, आंखें धँस गयी हों, उनके यदि मसूड़ोंमें दर्द हो या मसूड़ोंका मास ढीला पड़कर सड़ने लग जाय तो दांत हिलने लगते हैं। ऐसे लोगोंको सूखे भोजनसे बचते रहना चाहिये। शरीर औरदिमागको तरी पहुँचाने वाले आहार देना

चाहिये, परिश्रमसे बचते रहें और जितना न पच सके उतना भर पेट भोजन नहीं करना चाहिये। दांतोंमें तरी पहुँचाने वाले स्निग्ध पदार्थ या इरिमेदादितैल आदि मलना चाहिये। गुलाबके फूल, वंशलोचन, मसूर, कस्तूरी, छोटीमाई, आदि ग्राही और शीत प्रकृति औषधि बारीक पीसकर दांतों और मसूड़ोंमें दबाना चाहिये।

(३) यदि दोष विकृतिसे मसूड़ोंको पुष्ट करने वाले धातुद्रव्य पतले हो जायं और मसूड़े ढीले तथा सुस्त पड़ जायँ, दांतोंको न ठण्डी चीजें सहन हों और न गरम सहन हों, दांत मोटे हों और बोलनेके समय जबड़े कांपने लगें, मुखसे लार बहे और दाँतों की जड़में सर्दी मालूम हो तो अर्धाङ्ग वायुके समान प्रारम्भिक चिकित्सा करे और उष्ण तथा ग्राही औषधियोंके काढ़ेसे कुल्ले करावे। अकरकरा, मेंहदी, नागरमोथा, भुनी फिटकरी, गुलाबके फूल, बालछड़ बारीक पीसकर मसूड़े और दांतों पर लगावे। (४) यदि उष्णताके कारण मसूड़ेमें सूजन हो और मसूड़े दांतोंसे अलग होनेके कारण दांत हिलने लगें, दांतोंमें दर्द और टीस हो तो फस्द खोले, जोंक लगावे, विरेचन देकर पेट साफ करे तथा शीत वीर्य औषधियों तथा वंशलोचन, पीली हर का बकला, अनारके फूल और सिमाक पीसकर मसूड़े और दांतमें मले। धनियाका क्वाथ कर उसमें गुलरोगन मिलाकर कुल्ला करे। (५) यदि निर्बलताके कारण रक्तकी कमी होनेसे मसूड़े ढीले पड़ जावें और दांत हिलने लगें, रक्त की कमीके कारण मसूड़ेंका रङ्ग फीका सफेद दिखाई दे तो ऐसे मनुष्यको पहले रक्तवर्धक औषधि देकर शरीरमें रक्त बढ़ावे। बकरेका मांस, हिरन और मोटे बच्चे मुर्गोंका मांस तथा अण्डे की जर्दीसे रक्त शीघ्र बढ़ता है। दूध, अनार, अंगूर और टमाटर भी रक्त बढ़ानेमें सहायक होते हैं। उष्ण वीर्य वस्तुएं नागरमोथा, बालछड़, अगर, भुनी हुई मस्तगी और गुलाबके फूल पीसकर मसूड़ों पर मलें, जिससे उनकी ओर रक्तका आकर्षण हो (६) यदि दोषोंकी तीक्ष्णतासे मसूड़ोंका मांस विकृत हो, नष्ट हो और दांतों की जड़ हिलने लगे तो जुलाब ले और जोंक लगावे,

खराब मांस निकाल दे। मिठाई, मांस और रक्तवर्धक वस्तुएं त्याग दे। जराबन्द, कुन्दरूका गोंद, सौसनकी जड़, हीराबोल और मटर कूट पीस छानकर शहद और बन प्याजके सिरकेमें सान मसूड़ों और दांतोंमें लगानेसे निकम्मा और सड़ा मांस नष्ट हो जाता और शेष मांसको पुष्टि मिलती है। (७) यदि चोट या धमक लगनेके कारण दांतों की जड़ हिल गयी हो तो दांतोंकी जड़ गरम लोहेसे दाग दे और दांतको सोने या चांदीके तारसे कसवा दे। (८) किसी कारणसे दांत हिलने हों तो दशमूलके काढ़ेमें तेल डालकर कुल्ले करे और भुना हुआ तूतिया, लोध, पीपल, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, पतंग, तेजबल और सेंधानमक पीसकर दिनमें दो तीन बार मंजनकी तरह लगावे और अवस्थानुसार स्निग्ध नस्य देवे, कवल धारण करे और पौष्टिक तथा ग्राही आहार भोजनमें देवे। इससे दन्तमूल पुष्ट होता और दांतोंका हिलना बन्द होता है। (९) यदि औषधि करने पर भी दांतोंका दर्द न जाय, हिलना बन्द न हो तो दांतोंकी जड़ ढीली करनेके लिये उसमें मन्दारका दूध कई दिनों तक भरे और दांत ढीला होने पर उखड़वा दे। कम हिलते हुए दांतको उखाड़नेसे दर्द होता है, सिर और आंखोंमें विकार उत्पन्न होनेका भय रहता है, जबड़ेका किनारा टूटनेका अन्देशा रहता है। शहतूतकी जड़ और अकरकरा कूट कर सिरकेमें मिला धूपमें रखदे। जब वह शहद सा हो जावे तब दिनमें तीन बार हिलनेवाले दांत पर इसका लेप करे अथवा शहतूत वृक्ष की छाल, पीली हरताल, अकरकरा, और कडवी कचरीके बीज बराबर बराबर ले कूट छानकर सिरकेमें मिला दांत पर तीन दिनों तक रखे अथवा लाल हरताल सिरकेमें पीसकर रखे तो दांतकी जड़ निर्बल हो जाती है। अंजीरका दूध अथवा अंजीरके हरे पत्ते पीसकर लगानेसे भी दांत जड़ छोड़ देते हैं और फिर उखाड़नेमें सरलता होती है। ऐसी दवा लगाते समय अन्य दांतों और मसूड़ों पर आटा सानकर लगादे, जिससे उनपर इन औषधियोंका असर न पड़े। कोकेनका

इन्जेक्शन लगानेसे दांतों की जड़ शून्य पड़ जाती है और फिर दांत उखाड़नेमें कष्ट बोध नहीं होता।

(१०) **अधिदन्त**--जब दांतके ऊपर दूसरा दांत जमता है, तब उसे अधिदन्त या दन्तवर्धन कहते हैं। जब यह निकलने लगता है तब दन्तमूलमें बहुत दर्द और ठनका मालूम होता है; किन्तु दांत निकल आनेपर दर्द बन्द हो जाता है। अतिरिक्त दन्तको बनाये रखना आवश्यक नहीं है। निकलते ही इसमें क्षार लगाकर उसकी जड़ निर्बल और ढीली करदे। जब वह हिलने लगे तब कृमिदन्तके समान दन्तनिष्कासनयन्त्रसे उसे निकाल दे और इसके बाद कृमिदन्त के समान पश्चात कर्म कुल्ले आदि करावे। यदि रक्त न बन्द होता हो तो उस स्थानको शलाकासे दाग दे और फिर व्रणके समान चिकित्सा करे। खल्लीवर्धनमें भी इसका वर्णन हो चुका है।

(११) **दन्तशूल**--किन्हीं किन्हीं दन्तरोगोंमें दन्तशूल भी उपद्रव रूपसे होता है और उसका वर्णन ऊपर हो चुका है। इसी तरह मसूड़ेके रोगोंमें भी कभी कभी दांतोंमें दर्द होता है, उसका भी वर्णन कर दिया गया है; किन्तु कभी कभी अन्य कुछ कारणोंसे भी दांतोंमें दर्द होने लगता है, उसे दन्तशूल कहते हैं। यह विशेषकर वायु विकृतिसे होता है। विकृत वायु अन्य दोष और धातुओंमें आश्रय लेकर शूल उत्पन्न करता है, जिससे दांतोंमें दर्द और टीस मालूम पड़ती है।

(१) जब वायु पित्तको अनुगामी बनाकर मुखमें रूक्षता और उष्णता उत्पन्न करता है तब बिना मवाद उत्पन्न हुए ही दांतों की जड़ोंमें उष्णता और टीस मालूम पड़ती है। मसूड़ोंमें शोथ नहीं होता किन्तु लाली आ जाती है। मुखमें ठण्डा जल रखनेसे रोगीको शान्ति मिलती है। इसमें गुलाबके फूल सिरकेमें पीसकर मुखमें रखनेसे आराम मिलता है। यदि दर्द अधिक हो तो गुलाबमें थोड़ा कपूर भी मिला ले। अथवा मुँहमें गुलरोगनका कवल धारण करे। और यदि

दर्द की अधिकता हो तो उसी गुलरोगनमें थोड़ी अफीम पीसकर मिला दे। सेंधानमक पीसकर सिरकेमें मिला मुखमें रखे और इसबगोल पीसकर सिरकेमें मिला दांत और मसूड़ोंमें लगाये तो शूलकी शान्ति होती है (२) पित्त और रक्तदोषसे मसूड़ोंमें जब अधिक रक्त संचित होता हैं, दन्तमूलके द्वारा वह उष्ण रक्त दांतोंके पोले भागमें भी पहुँचता है तब मसूड़ों और दांतोंमें शूल होता है, मसूड़े लाल पड़ जाते हैं, रक्तभर जानेके कारण मसूड़े सूज भी जाते हैं। दांतों की लम्बाईमें टीस और ठनका मलूम पड़ता है। इसमें रक्तमोक्षण करना प्रथम कर्तव्य है। हकीम लोग सरेरूकी फस्द खोलनेकी सलाह देते हैं। मसूड़ोंके बाहरी भाग ठोड़ीके ऊपर जोंक लगवा कर भी दूषित रक्त निकाला जा सकता है। हरीवारतंग (युनानीदवा) का पानी मुखमें रखे और पहले वेदनाशमनके जो उपाय कहे गये हैं उनका भी अवलम्बन करे। (३) जब पित्त वायुको अनुगामी बनाकर दन्तमूलमें आश्रय लेता है तब मसूड़े पीले पड़ जाते हैं और पित्त विकृतिके सब लक्षण प्रकट होते हैं। दांतोंमें मन्द वेदना रहती है। पित्त दोषको दूर करनेके लिये हर और इमलीका काढ़ा पीनेको देवे। इसके बाद बिना मवादके उष्ण शोथमें जो उपाय लिखे गये हैं उन्हें भी करे। उसमें सिरका या गुलरोगन ठण्डा ही लिया जाता है; किन्तु इसमें जरा गुनगुना कर ले। (४) जब कफकी विकृति और वृद्धि होती है और उसे वायुका आश्रय मिल जाता है तब वह कफ दन्तमूलमें आश्रयकर मसूड़ोंको फुला देता और दांतोंमें वेदना उत्पन्न करता है। इसमें उष्ण उपचारसे लाभ पहुँचता है। एलुवा सिरकेमें पीसकर मसूड़ों और दन्तमूलमें लगावे। पोदीना और अकरकरा सिरकेमें पकाकर कुल्ले करे। इससे कफ ढीला पड़ेगा। अकरकरा, पापड़खार, सोंठ, मिर्च और पीपल पीसकर शोथके स्थानमें मले। सेंधानमक और बाजरा पीसकर एक कपड़ेमें पोटली बना ऊपर जबड़ेकी हड्डियोंमें शुष्क स्वेद करे। इससे श्लेष्मा पतला पड़कर बाहर आजाता है। ऐसी सेंक भोजनके बाद चार घण्टे पहले न करे; क्योंकि उस समय आमा-

शयमें कफकी क्रिया होती रहती है। इसी तरह सेंकके दो घण्टे तक भोजन न करे अन्यथा कफ वृद्धि होनेसे सेंकका असर जाता रहता है। हकीम लोग ऐसी दशामें तिरियाकुल अस्नान दांतों की जड़में दबानेको बताते हैं। जुन्दवेस्तर, हींग, काली मिर्च, सोंठ, बनफशाकी जड़, और अफीम बराबर बराबर ले कूट कपड़ छानकर शहदमें मिलानेसे तिरियाकुल अस्नान बनता है। इसे दन्तमूलमें दबानेसे भी वेदनाकी शान्ति न हो तो कडू तेलमें थोड़ा सोहागा डाल कर एक कटोरीमें डाल आगपर रखे। और छिंगुनियां बराबर मोटी बांसकी हरी ताजी कमची लेकर उसके एक सिरेको कुचल दतूनकी तरह कूंची बनावे। इसीको गरम तेलमें डुबाकर दांत और मसूड़ेको दागे। अथवा सोने या लोहेकी सलाई गरम कर एक पोली नली वेदना की जगह लगा दे और उसीसे गरम सलाई पहुँचा कर उस जगहको दाग दे। अथवा रोगीको उताना लिटाकर पीडित दांत और मसूड़ेके आस-पास सने हुए आटे या मुलतानी मिट्टीसे घेरा सा लगा दे और घेरेके बीच जैतूनका गरम तेल भर दे। इससे गरम तेल अन्यत्र नहीं जा सकेगा। इससे तुरन्त वेदना की शान्ति होती है। इससे भी काम न चले तो तांबेके मलको अंजीरके दूधमें सानकर एक रुई की फुरहरीसे दूषित दांतमें कई दिनों तक लगावे अथवा सोंठ सिरकेमें पीसकर दांतमें चालीस दिनों तक लगावे इससे दांत कमजोर पड़ जायगा और दन्तनिर्हरणास्त्रसे निकाल दिया जायगा। दांत कमजोर करने वाली दवा लगानेके पहले अन्य दांतों पर तेल मल दिया करे, जिससे उनपर असर न पड़े (५) कभी कभी अजीर्ण वाले रोगियोंके आमाशयमें गाढ़ा दूषित आमरस भर जाता है और वही ऊर्ध्वगामी होकर दाँतोंमें वेदना उत्पन्न करता है। ऐसी वेदना भरपेट भोजन करने या अजीर्ण की दशामें अधिक होता है। ऐसे लोग भरपेट भोजन करना बन्द कर दें, दूध और मेवोंका खाना छोड़ दें। भोजनमें धनियांका उपयोग अधिक करें। ऐसी दशामें वमन नहीं कराना चाहिये, क्योंकि दूषित आम ऊपर आकर दन्तमूलमें हानि पहुँचावेगा। यदि वमन

होवे हो तो थोड़ी सी अफीम घोलकर दांतों पर मल दे ताकि दूषित परमाणुओंका असर दांतोंमें न पड़े। (६) जब दूषित वायु सिरके ऊपरी भागसे उतरकर दांतोंकी जड़में आश्रय लेता है और दांतोंको वेष्ठित करनेवाली सिराओंको दूषित कर देता है, तब खिंचावटके साथ दर्द और टीस होती है। ऐसा दूषित वायु जब अन्य दन्तमूलमें पहुंचता है तब वहां भी वैसी ही वेदना होने लगती है। वायुदोष की शान्तिके लिये बनफशेकी गोली खिलावे (सौंफ, अफीम (या अफीम के फलके ढोढ़े) और जीरा तीन तीन माशे लेकर एक सेर पानीमें औटावें और आधा रहने पर इसीका कवल धारण करें और कुल्ले भी करें। दांतोंमें मलनेके लिये काली मिर्च और सोयेके बीज पीस शहद में सान काममें लावे। इसके सिवाय अन्य वातनाशक उपाय करे।

(१२) बालदन्त--बच्चोंके दांत निकलते समय उन्हें बहुत कष्ट मिलता है। यही नहीं उस समय उन्हें अनेक रोगोंसे सामना करना पड़ता है। ज्वर, अतीसार, वान्ति, खांसी, नेत्रविकार, शिरोवेदना, विसर्प आदि रोग हो जाते हैं। कहावत है कि बिल्लीकी रीढकी हड्डी मुड़ते समय, मोरके शिखर आते समय और बच्चोंके दांत आते समय यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें अमुक अमुक विकार नहीं होते। अर्थात सभी विकार होने की सम्भावना रहती है। यदि माताका दूध शुद्ध हो और बालक हृष्टपुष्ट हो तो उसे दांत आते समय अधिक कष्ट नहीं होता तथापि यह प्रयत्न करना चाहिये कि बच्चेके दांत शीघ्र निकल आवें। क्योंकि दांत निकलनेके पश्चात उसके उपद्रवरूप विकार भी शान्त हो जाते हैं।

जो लड़के दुर्बल होते हैं और जिनको नाड़ीमण्डल (नर्वस) का विकार रहता है उनके प्रथम दांत निकलनेके बाद या उसी समय उग्रलक्षण दिखाई पड़ते हैं। उस समय बच्चोंका स्वभाव उग्र अथवा डरपोक हो जाता है। कुछ ज्वर और निद्राका व्यक्तिक्रम दिखता है। ऐसी दशामें उन्हें ८५ से ९० डिग्री तापांश तकके ठण्डे पानीमें स्नान

कराना चाहिये, स्वर्णभस्म और मौक्तिकभस्मका योग देना भी हितावह होता है। डाक्टर लोग ऐसी दशामें पोटाशियम ब्रोमाइड एक रत्ती और टिकंचर आफ एकोनाइट $\frac{1}{8}$ मिनम मिलाकर दो दो घण्टे में देते हैं। ऐसे बच्चोंको शीघ्र पचनेवाला पुष्टिकर आहार देना चाहिये। आहार नियमित समय और नियमित परिमाणमें देनेका स्मरण रहे। यदि मसूड़े फैले हुए, उष्ण और वेदना युक्त हों तो एक छटांक पानीमें ५ रत्ती खानेवाला सोडा (सोडा बाई कार्बोनेट) मिलाकर मसूड़ोंको धोया करे। अथवा कपूर, पिपरमेंट और अजवाइनका सत्त मिलाकर बनाये हुए द्रवको फुरहरीसे लगा दिया करे। यदि मसूड़े कठिन, फूले हुए और वेदना युक्त हों और औषधि रगड़नेसे भी दांत जल्दी न निकलें तो चाकूसे मसूड़े चीर देनेसे दांत जल्दी निकल आते हैं। किन्तु जहां तक सम्भव हो इसकी नौबत न आने दे। यदि दांत बाहर न आते हों और बच्चेको बार बार आक्षेप होने लगें, दांत टटोलनेसे नीचे मालूम पड़े तो मसूड़ा चीर देना आवश्यक है। यदि ज्वर, नाडीदौर्बल्य, अनिद्रा, वमन, पेचिस, हो और दांत भीतर मालूम पड़ता हो तब भी अस्त्र प्रयोग आवश्यक है। जिन बच्चोंको अस्थिक्षय (रिकेट) व्याधि है, या अन्य बीमारीसे बच्चा दुबल है, पोषण क्रिया ठीक नहीं हो रही, उनके दांत विलम्बसे निकलते हैं। ऐसे बच्चोंको क्षयनाशक और पौष्टिक औषधि और आहार देनेसे दांत निकल आते हैं। बच्चाको खुली हवामें खेलने देना पुष्टिकर पथ्य; च्यवनप्राश या ब्राह्मीघृत या वचादि घृत पिलानेसे तथा शंख, शुक्तिभस्म और लौहमिश्रित औषधि देनेसे अथवा सुवर्ण-बसन्तमालिनी देनेसे बच्चे पुष्ट होते हैं। दांत निकलते समय मसूड़ों-में शोथ और वेदना होनेसे यदि ज्वर होतो रेंड़ीका तेल देकर आतें साफ कर देनेसे बहुत उपकार होता है। मसूड़ोंमें नीबूका रस मलनेसे भी लाभ होता है। मधुमें मिलाकर यशद भस्म रगड़नेसे भी उपकार होता है।

(१) छोटी पीपल, धौके फूल और आंवला पीसकर मधुमें सान बच्चोंके मसूड़ों पर रगड़े (२) अथवा भुना हुआ सोहागा शहदमें मिलाकर रगड़ा करें (३) लावा और तीतरका मांस सुखाकर चूर्ण करे और शहदमें मिलाकर मसूड़ोंमें रगड़ा करे तो दांत शीघ्र आते हैं।

(४) वचादिघृत के पिलाने और मसूड़ों पर रगड़नेसे दांत आते समय विकार नहीं होते और दांत शीघ्र निकलते हैं। वच, भटकटैयाकी जड़, बड़ी भटकटैयाकी जड़, पाढ़, कुटकी, अतीस, नागरमोथा, बला, अतिबला, मेदा, महामेदा, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, जीवक, ऋषभक, मुलेठी, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, मुण्डी, बंशलोचन, काश्मरी, और गोखरू, एक एक तोला लेकर पीसें और कल्क बनाकर सवा सेर गोघृतमें २॥ सेर गोदुग्ध डालें और ढाई सेर पानीमें ऊपरकी दवाइयां घोलकर घृतपाक कर लेवे। (५) बच्चोंके मसूड़ों पर नित्य मक्खन या तेल रगड़ा करें अथवा खरगोशके सिरका भेजा (मस्तिष्क) पकाकर कुनकुना मले (६) कुतियाका दूध मसूड़ोंमें मलनेसे जल्दी दांत उगते हैं। (७) यदि दांत निकलते समय वेदना हो और बच्चे दांतके दर्दसे रोते रहें तो हरी मकोयका स्वरस और गुलरोगन मिलाकर गरम करें और अंगुलीमें डुबाकर सहता हुआ बच्चोंके जबड़ोंमें धीरे धीरे मले। (८) जब दांत निकलने लगें या दिखाई पड़ने लगें तब बच्चोंका सिर तेलसे तर रखा जाय। गर्दन, कानों की जड़ और दोनों हनुमें धीरे धीरे तेलकी मालिश की जाय। कानोंमें कुनकुना तेल छोड़ा करे। बच्चोंको कोई ऐसी वस्तु न दें जिसे वे चबावें, इससे दांतोंकी पोषण करने वाली धातु निकल जाती है।

(१३) **दन्तकण्ड**--कभी कभी दांतों और मसूड़ोंमें खुजली होती है। इसमें वायु और कफकी विकृति कारण होती है। यदि सूरन, अरुई, भण्डा आदि कनकनाहट पैदा करने वाली वस्तु खायी जावें तो कनकनाहटके साथ खुजली होती है। कभी कभी अधिक नमक, गन्धक या पापड़खार ऐसी वस्तुएं खाने या पीनेसे भी दांतोंमें

खुजली पैदा होती है। जो आहार शरीरमें उष्णता और तीक्ष्णता उत्पन्न करते हैं उनकी तीक्ष्णता ऊर्ध्वगामी होकर मसूड़ों और दांतोंमें पहुँचनेसे भी दन्तकण्डू होने लगती है। ऐसी खुजली या बकबकी उत्पन्न होने पर रहा नहीं जाता। दांतोंसे कोई वस्तु कुचलते रहने की इच्छा होती है; किन्तु ऐसी वस्तुएं चबानेसे भी खुजली थमती नहीं है। ऐसे समयमें जुलाब देकर अथवा स्नेहनवस्तिदे कर शरीर को शुद्ध करना चाहिये। कालीमिर्च, पिप्पली, सोंठ, सेंधानमक और तेजबलका बारीक चूर्णकर मंजन करे। आकाशवेलिका काढ़ा पिलाकर शरीर और दिमागसे दोष शोधन करावे। जंगली प्याज की सिकंजबीनसे कुल्ले करे अथवा जंगली प्याज अथवा चूकाकी जड़ सिरकेमें औटा कर कुल्ले करे। आहारमें खट्टी और नमकीन वस्तुओं की अधिकता रखे।

(१४) **दन्तकिट्किट**--प्राय: छोटे बच्चे दांत किटकिटाया करते हैं। कभी कभी ऐसे लड़के बड़े होने तक भी सोतेमें दांत किटकिटाते हैं। किन्तु प्राय: बड़े होने पर शरीरमें स्वाभाविक गर्मी बढ़ जानेपर ऐसा विकार नहीं होता है। कभी कभी तो यह शिकायत क्रिमिरोगमें, अपस्मार, अपतन्त्रक, हिस्टीरिया और अर्धाङ्ग वातमें भी देखी जाती है। शरीरमें कंपकंपी छूटने और दांतोंमें अधिक दर्द होने पर भी दांत किटकिटाते हैं। प्राय: मस्तिष्कमें शीत और तरी बढ़ जानेसे और हनुसन्धिमें शिथिलता आ जानेसे ऐसा होता है। मस्तिष्कसे ऐसी तरी निकालनेके लिये उष्णवीर्य औषधियों और आहारका सेवन करावे। उष्ण औषधियोंके कुनकुने क्वाथसे कुल्ले करावे। मस्तिष्कसे मुखमण्डलकी ओर आने वाली सिराओं और वातवाहिनियोंको पुष्टि देनेके लिये कूटका तेल, केसर और तेल अथवा नारायण तेल गर्दन, ठुड्डी और सिरपर मले। हनुसन्धि बलवान होनेपर यह शिकायत नहीं रह जावेगी।

(१५) **हनुमोक्ष और अर्दितरोग**--वायुके प्रकोपसे हनुसन्धि-

स्थित वात नाड़ी और सिराएं विकल होकर शिथिल हो जाती हैं। जिससे दांत हनुसन्धिका आश्रय छोड़ ढीले पड़ जाते हैं। हनुसे दांतों का संसर्ग हट जानेके कारण इस व्याधिको हनुमोक्ष कहते हैं। इस व्याधिमें सब लक्षण अर्दितरोग केसे होते हैं। इसकी चिकित्सा भी अर्दितरोगके समान होती है।

यद्यपि अर्दित रोगका सम्बन्ध दांतोंसे नहीं है तथापि यह मुख-मण्डलके अन्तर्गत भाग है और हनुभागसे दातोंका लगाव है। इसलिये यहां अर्दितरोगका भी संक्षिप्त वर्णन कर देते हैं। जो अर्दितरोग उत्पन्न करनेके कारण हैं वेही हनुमोक्षणके भी होते हैं। उच्चस्वरसे बोलने, सुपारी आदि कठिन पदार्थ दांतसे तोड़कर खानेकी आदत रखने, बहुत हँसने, बहुत जमुहाई आने, दांतोंके बल अधिक भार उठाने, टेढ़े मेढ़े सोने और मुंह टेढ़ा कर बैठनेसे नासिका-ओष्ठ-गाल-ललाट और नेत्रसन्धिमें रहनेवाला वायु क्षुभित होकर मुखको पीडित करता है, जिससे आधा मुंह टेढ़ा हो जाता है, ग्रीवा तनकर टेढ़ी हो जाती है। शिर कांपने लगता है, बोलनेमें कष्ट होता, नेत्र, भौहें, गाल तथा नासिका में विकृति आ जाती है अर्थात इनमें वेदना, स्फुरण और टेढ़ापन आ जाता है। जिस ओर इसका प्रभाव होता है उधर गर्दन, गाल और दांतोंमें दर्द होता है। इस व्याधिको अर्दितरोग कहते हैं। यह अर्दित वातज, पित्तज और कफज तीन प्रकारका होता है। वातजमें मुख से लार गिरती, दर्द और कम्प तथा हनुस्तम्भ होता और रोगी बोलनेमें असमर्थ होता है। ओठोंमें शोथ और शूल होता है। पित्तज अर्दितमें मुखका रंग पीला पड़ जाता, ज्वर, पिपासा, मोह और उष्णता अधिक रहती है। कफज अर्दितरोगमें, गाल, शिर और गर्दनकी नस (मन्या) में शोथ और जकडन रहती है। जो अर्दित रोगी दुर्बल होता है, पलक भांजनेमें असमर्थ होता है तथा बोलनेमें असमर्थ होता है वह असाध्य होता है। जिसका रोग तीन वर्षका पुराना हो चुका है अथवा जिसके नेत्र-नासिका और मुखसे स्राव होता है, वह भी असाध्य होता है।

अर्दितरोगमें घृतादि स्नेहपान, वातनाशक नस्य तथा भोजन पुल्टिश, स्वेदन और शिरोवस्ति हितकारी है। वातजन्य अर्दितमें दशमूलका क्वाथ पिलाना और बिजौरा नींबूके रस अथवा बरियारी की जड़के क्वाथ अथवा बृहतपंचमूलके क्वाथमें दूधका क्षीर पाककर पिलाना हितकारी है। दशमूलका क्वाथ पीनेके पहले यदि रोगी घीमें पीसा हुआ मांस अथवा मक्खन खाकर तब क्वाथ पीवे तो अच्छा है। भोजनमें दूध अथवा मांस रस देवे। पित्तज अर्दितरोगी स्नेह पान करे, घृत वस्ति ले और केवल दूध पीकर रहे। कफजन्य अर्दितरोग में बढ़े हुए कफको क्षीणकर बृहंण उपचार करे। यदि शोथ हो तो वमन करा कर दोष निकाले। यदि मुंह टेढ़ा हो गया हो, बोल न सकता हो और दाह हो तो वातपित्त नाशक चिकित्सा करनी चाहिये। अर्दितरोगी तिल तेलमें लहसुन पीस पकाकर खावे तो बहुत शीघ्र और स्थायी लाभ होता है।

उपसंहार

मुखमण्डलके बाहरी और भीतरी रोगोंका यथा सम्भव वर्णन हो चुका है। इस सम्बन्धकी कुछ फुटकल बातोंका उल्लेखकर इस प्रकरणकी समाप्ति करते हैं।

मुखरोगाधिकारकी विशिष्ट औषधियां

खदिरादितैल--चार सौ तोले खैर की छाल लेकर २०४८ तोले पानीमें उसका चतुर्थांश काढ़ा करे। १२८ तोले काले तिलका तेल लेकर कड़ाहीमें चढ़ावे और गरम होनेपर उसमें उक्त काढ़ा छोड़ दे। साथ ही लाल चन्दन, अगर, केशर, नागरमोथा, सुगन्धबाला, खस, देवदारु, लोध, मुनक्का, पद्माख, लौंग, बायविडंग, तगर, नख, कायफल, छोटी इलायची, रोहिषतृण, और पतंग एक एक तोला

लेकर कूट पीस कल्क बना उसी तेलमें डाल तैल पाक करे। इस तेलको पीने, नाकमें डालने और कवल धारण करनेसे समस्त मुख-रोग अच्छे होते हैं। गिद्धके समान दृष्टशक्ति प्रवल होती है, सुनने की शक्ति शूकरके समान तेज होती है। इसी तेलको मुंहके बाह्य भागमें लगाकर चकोंडके बीज, लोध, और दारुहल्दीका चूर्ण मले तो मुखमण्डलका व्यंग, नीलिमा और मुखदूषिका आदि विकार नष्ट होते हैं और मुखकी कान्ति चन्द्रमाके समान बढ़ जाती है।

खदिरादिवटी--२०० तोले खैर और १०० तोले काला खैर या पूति खदिर लेकर अठगुने पानीमें पकाकर चतुर्थांश काढ़ा तैयार करे। फिर उसमें छानकर पुनः कड़ाहीमें डाल पकावे और उसमें सुगन्धवाला, खस, पतंग, गेरू, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पठानी लोध, ऊखकी जड़, मुलेठी, लाख, सफेद सुर्मा, कालासुर्मा, धौके फूल, कायफल, हल्दी, दारुहल्दी, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, तेजपात, अगर, नागरमोथा, मजीठ, बरगदकी जटा, जटामांसी, धसासाकी जड़, पदमाख, एलुवा और लजालू पीस कपड़ छानकर डाल देवे। दवा बराबर चलाता रहे जिससे कड़ाहीमें लग कर जलने न पावे। जब गाढ़ा हो जावे तब उतार ले और उसमें जावित्री, जायफल, लौंग और कंकोल चार चार तोले और अच्छा कपूर १६ तोले डालकर गोलियाँ बना ले। इन गोलियोंको मुखमें रखने से समस्त मुख रोग अच्छे होते हैं। दांत बलवान होते हैं। निरोगी मनुष्य इसे मुखमें रखा करे तो मुखरोग और दन्तरोग न होवें।

हरीतकी कल्प--बड़े हर्रे चौगुना गोमूत्रमें तब तक पकावे जब तक सम्पूर्ण गोमूत्र सूख न जावे। इसके बाद सुगन्धवाला, सौंफ और कूटके काढ़े की क्रमशः तीन भावना देवे। इस हरीतकी कल्पका सेवन करनेसे समस्त मुख रोग और साधारण क्षुद्र रोग नहीं होते। जैसे मन्त्रिमण्डल की सलाह पर चलने वाले राजाको अनर्थोंका स्पर्श नहीं होता, उसी तरह उस मनुष्यको रोग स्पर्श नहीं करते।

सप्तपर्णक्वाथ--सतवणकी छाल, सुगन्धबाला, परवरकी जड़, नागरमोथा, हर्रा, चिरायता, कुटकी, मुलेठी, अमिलतासका गूदा, और चन्दनका काढ़ा पीनेसे सम्पूर्ण मुखपाक दूर होते हैं।

पटोलादि गण्डूष--परवर, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायणकी जड़, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी और गुर्चका काढ़ा मधु डालकर कवल धारण करे और कुल्ले करे। इससे सम्पूर्ण मुखरोग तुरन्त आराम होते हैं।

पीतदारुकल्क--दारुहल्दीका रस या रसवत लेकर पकावे, गाढ़ा होने पर उसमें गेरू और मधु डाल मुखमें रखे। इससे सम्पूर्ण मुखपाक और मुखका नाड़ीव्रण आराम होता है।

त्रिफलादिकल्प--त्रिफला एक सेर लेकर चार सेर पानीमें काढ़ा करे, चतुर्थांश रहने पर छानकर कड़ाहीमें डाले और उसमें परवर की जड़, नीमकी छाल, मुलेठी, रूसेकी जड़की छाल या पत्ते, चमेलीके पत्ते, काला कडुवा खैर, सफेद खैर, आंवला हर्रा, बहेड़ा सब चार चार तोले लेकर कूट कपड़ छानकर उसी त्रिफला क्वाथमें डाल गाढ़ा होते तक पकावे गोली तीन तीन माशेकी बना सेवन करनेसे सभी मुख विकार अच्छे होते और ऊर्ध्वाङ्गके सभी अग बलवान और कार्यक्षम होते है। इसमें कथित औषधियोंके काढ़ेसे कवल धारण और गण्डूष भी कर सकते हैं।

खदिरादिगण्डूष--खैर, लोहा, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, अर्जुन की छाल, मुगली एरण्ड और पूतिखदिरका काढ़ाकर कुल्ले करनेसे समस्त मुख रोग आराम होते और मसूड़े तथा दांत बलवान होते हैं।

दशनसंस्कार मंजन--सोंठ, हर, नागरमोथा, खैर, कपूर, सुपारी की राख, मिर्च, लौंग और दालचीनीका बारीक चूर्णकर सबके बराबर खड़िया मिट्टी डाल खरलमें खूब घोटे और मंजनके काम में लावे। दांतोंके सभी रोग अच्छे होते हैं।

दन्तरोगाशनि चूर्ण--जावित्री, पुनर्नवाकी जड़, तिज़, छोटी पीपर, कटसरैयाकी जड़ या पत्ती, नागरमोथा, घोड़बच, सोंठ, अजवाइन, और हर, सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे और घीमें मिलाकर मुखमें रखे। इससे वातरोग, दन्तकृमि, कर्णशूल, मुखदाह, सम्पूर्ण मुखरोग, मुखदुर्गन्धि, और सम्पूर्ण दन्तरोग नाश होते हैं।

मुखरोगहररस--शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शिलाजीत २ तोला, पहले पारा गन्धक की कज्जलीकर फिर उसमें शिलाजीत घोटकर मिला दें। फिर सबको गोमूत्रसे घोटें, इसके बाद सात बार मन्दारके रसकी भावना दे। इसके बाद चमेलीके पत्तोंके रसकी एक भावना, नीमके पत्तोंके रसकी एक भावना और जल पिप्पलीकेपञ्चाङ्गके स्वरसकी एक भावना देकर पीपलका चूर्ण मिलावे और शहदसे सानकर एक एक माशे की गोली बनावे। इस गोलीको मुखमें धारण करनेसे सब प्रकारके मुखरोग नष्ट होते हैं। जल पिप्पली के स्वरससे मुखमें कुल्ले करे। दतून, स्नान, अम्ल पदार्थ, मत्स्य, अनूपजीवोंका मांस, दही, दूध, गुड़, उड़दकी वस्तु, रूक्षान्न, कठिन पदार्थोंका भोजन, औंधे मुंह लेटना, खारी और अभिष्यन्दी पदार्थ तथा दिनमें सोना वर्ज्यकरे।

रसेन्द्रवटी--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शिलाजीत, प्रवालभस्म, लोहभस्म, सब समान भाग ले और पारेका चौथाई स्वर्णभस्म ले। पहले नीमकीपत्तीके रसकी एक भावना दे, फिर अशनवृक्षके काढ़े की भावना दे, इसके बाद चीताके काढ़े की भावना देकर दो दो रत्ती की गोली बनावे। नित्य एक गोली सबेरे त्रिफलाके काढ़े अथवा त्रिफलाके हिम अथवा केवल जलके साथ लिया करे। इससे सम्पूर्ण वातरोग, सम्पूर्ण प्रमेह, ज्वर, मुखरोग जनित ज्वर, नष्ट होते हैं। शरीरमें अग्नि, बल और वीर्य की वृद्धि होती, सम्पूर्ण मुखरोग नष्ट होते है। यह वटी रसायन है। शरीरको नया और ताजा कर देती है।

अणुतैल--यदि वर्षा ऋतु, शरद ऋतु और वसन्त ऋतुमें प्रतिवर्ष मनुष्य अणुतैलका नस्य लेवे तो आंख-नाक और कानोंमें विकार नहीं होते। उस मनुष्यके बाल सफेद, भूरे और कपिलवर्ण के नहीं होते। मूछ और दाढ़ीके बाल भी काले बने रहते हैं। बाल गिरते नहीं, बल्कि बढ़ते रहते हैं। मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित, ठुड्डीका जकड़ना, पीनस, अर्धावभेदक और शिरका कँपना आदि विकार नहीं होते। शिर और कपाल की नसें, सन्धियां, स्नायु, कण्डरा आदि को अधिक बल प्राप्त होता है। मुखमें प्रसन्नता आती, स्वरमें कोमलता, गम्भीरता और स्थिरता तथा इन्द्रियोंकी निर्बलता बढ़ती है। इसके प्रयोगसे ऊर्ध्वजत्रु रोग सहसा नहीं होने पाते। शिरमें बुढ़ापेके चिन्ह नहीं आते। बनाने की विधि यों है—

चन्दन, अगरु, तेजपात, दारुहल्दी की छाल, मुलेठी, बरियारी की जड़, कमल, छोटी इलायची, बायबिडंग, बेल, नील कमल, हाहूबेर, हर, सावरलोध, दालचीनी, नागरमोथा अनन्तमूल, शालपर्णी, जीवन्ती, पृष्ठ पर्णी, देवदारु, सतावर, रेणुक बीज, बड़ी भटकटैया, छोटी भटकटैया, कमलकेसर और केवांचके बीज समान भाग एक एक तोला लेकर कूट सब औषधियोंके वजनसे सौगुणा दिव्य जल (वर्षाका जल जो ऊपर ही लेलिया गया हो) लेकर काढ़ा करे। दशांश रहने पर उतारकर छान ले और फिर दो सेर तेलमें उक्त क्वाथ डालकर पकावे। इसी तरह दशबार काढ़ाकर पकावे। दशवें पाकके समय एक सेर बकरीका दूध डालकर भी पकावे। इस तेलको दो तोला लेकर नस्य लेवे। इस तेलके उपयोगके पहले स्नेहन-स्वेदन करले। फिर रुईमें तेल डुबाकर प्रत्येक नथुनेमें तीन बार तेल डाले। एक दिन अन्तर देकर नस्य ले। इस तरह तेरह दिनोंमें सात बार लेना पड़ेगा। इसी तरह प्रत्येक ऋतुमें तेरह तेरह दिनोंमें सातबार नस्य लेवे। हवासे बचकर रहे, उष्ण जलका सेवन करे। हित भोजन करे, इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ व्यवहार करे। यह तेल तीनों

दोषोंका शमन करने वाला, इन्द्रियोंको बल देने वाला है। ऋतुओंके अनुसार समय पर इसका प्रयोग करनेसे ऊपर लिखे गुणों की प्राप्ति होती है।

भूपतिरस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सींगिया विष, शुद्ध जयपाल बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल और घीमें भुनी हींग सब समान भाग लेकर कपड़ छान चूर्ण करे। प्रति दिन चित्रकका नया क्वाथ बनाकर सात दिनों तक चित्रक क्वाथसे घोट कर भावना दे और मिच समान गोलियाँ बनाकर रखे। सबेरे शाम एक एक या दो दो गोली अदरखके रस और मधुके साथ लेवे। इसके सेवनसे श्वास और खांसीके उपद्रवसे युक्त सन्निपात तथा जिह्वा दोष, जिह्वा पाक आदि नष्ट होता है। पथ्य यथोचित रखे। (व्याससंहिता)।

साध्यासाध्य

मुखरोगोंमें ८ ओष्ठरोग किन्तु आचार्य वाग्भटके मतानुसार ११, एक गालरोग, ८ (किन्तु वाग्भटके मतानुसार १०) दन्तरोग, १६ मसूड़ों के रोग, ५ (वाग्भटके मतानुसार ६) जिव्हारोग, ६ (वाग्भटके मतानुसार ८) तालुरोग, १८ कण्ठरोग, ३ (वाग्भटके अनुसार ८) सर्वसर रोग; इस प्रकार ६७ के बदले ७६ मुखरोग शास्त्रानुसार इसमें लिखे गये हैं। इनके सिवाय और भी बहुतसे मुखके भीतरी और बाहरी रोगोंका इसमें वर्णन हुआ है। इस प्रकार इसमें ओष्ठगत १४ मुखमण्डलके वाह्य-रोग ६ जिव्हागत २३ तालुगत १०, कण्ठगत ३२ सर्वसर ५, मुखस्राव १ मुखदुर्गन्धि १ गलगण्ड ४ दन्तमूलगतरोग १६ और दन्तरोग १५ मिलकर कुल १३०, और आवान्तर भेद मिलाकर १५६ रोगोंका वर्णन हुआ है। सब रोगों की चिकित्सा भी साथ ही लिख दी गयी है। किन्तु इनमेंसे कराल, मांसौष्ठपाक, रक्तौष्ठपाक, जलार्बुदको छोड़ अन्य सब अर्बुद, कच्छप, तालुपिटिका, गलौघ, सुषिर, महा-

सुषिर, स्वरघ्न, ऊर्ध्वगद, श्यावदन्त, शतघ्नी, वलय, अलस, त्रिदोषजन्य नाड़ी व्रण, त्रिदोषजन्य ओष्ठकोप, रक्तजन्यरोहिणी, सान्निपातिक रोहिणी, दांत फटनेवाला दन्तभेद, पक्वउपजिव्हिका, स्वरभ्रंश, कृच्छ्रोच्छ्वास और एक वर्षसे अधिक पुराना गलगण्ड रोग असाध्य है। इसी प्रकार दन्तहर्ष और दन्तभेद याप्य हैं। शेष रोग औषधि अथवा शस्त्रप्रयोगसे साध्य होते हैं। सुश्रुतने त्रिदोषज ओष्ठपाक, दालन और अवभंजन दन्तरोग, कण्ठरोगोंमें, वृन्द, वलास, विदारिका और मांसतानको भी असाध्य बतलाया है। असाध्य रोगों की चिकित्सा करनेमें व्यर्थ प्रयास और औषधिका व्यय होता है, उससे वैद्य का यश नहीं बढ़ता। इसलिये शास्त्रकारोंने असाध्य रोगीको चिकित्सा करनेका निषेध किया है। किन्तु साथ ही यह भी विचारणीय है कि रोगीको एक दम असाध्य कह देनेसे वह हताश हो जाता है। उसके घरवालोंको भी सन्तोष नहीं होता, इसलिये "जब तक श्वास तब तक आश" की कहावतके अनुसार रोगी और उसके घर वालोंके आग्रहके अनुसार यदि चिकित्सा की जाय तो अनुचित नहीं है। इसके सिवाय यह भी सम्भव है कि वैद्यने निर्णय करनेमें भूल की हो या रोगकी जटिलताके कारण उसका ठीक स्वरूप सामने न आया हो तो धोखेमें किसीको निराश कर देना भी उचित नहीं। इसलिये चिकित्सा करना अनुचित नहीं। किन्तु ऐसे रोगमें यदि वैद्यको यश न मिले तो रोगी या उसके परिवार वालोंको किसीको दोषी नहीं बनाना चाहिये और न वैद्यको ही इसके लिये लज्जित होना आवश्यक है।

चिकित्सासूत्र

गला, दांतोंकी जड़ और ओष्ठ रोगोंमें कफप्रधान और रक्त विकृति प्रधानतासे होती है; इसलिये इनमें उष्ण रक्तको रक्तमोक्षण (फस्द खोलना) द्वारा निकाल देना चाहिये। विरेचन द्वारा शरीर शुद्धि और आवश्कतानुसार वमन भी देना हितावह होता है। कवलग्रह और

गण्डूषकी क्रिया प्रायः मुखमण्डलके रोगोंमें सामान्यतः लाभकारी होती है। नस्यका असर जत्रुदेश संलग्न सभी अंगोंमें होता है; अतएव स्नेह नस्य तथा छींक लाकर शिरोविरेचन मुखरोगोंमें विधेय है। जिव्हारोगमें आवश्यकतानुसार लेखन किया करनी चाहिये। तालुपाक में पित्तनाशक शीतल विधान करना चाहिये। स्वेदन और वायुनाशक विधि करनी चाहिये। जिव्हा-तालु-ओष्ठ, दन्तमूल आदि रोगोंमें प्रतिसारण कर लार गिराना लाभदायक होता है। दन्तहर्षमें स्नेह युक्त धूम्रपान, नस्य, पेया, मांसरस, यवागू, दूध, मलाई, घी, शिरोविरेचन तथा वातनाशक चिकित्सा क्रम हितकारी होता है। तालुपाकमें पित्तनाशक चिकित्सा और तालुशोषमें स्वेदन आदि वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। साध्यरोगियोंमें रक्तमोक्षण, वमन, धूम्रपान, गण्डूष, नस्य आदिका प्रयोग करे। बहुत आवश्यकता होने पर यथावश्यक शस्त्रकर्मकी सहायता ले। कण्ठरोग प्राणवायुके आश्रय स्थान और मार्गमें होते हैं, अतएव उनकी उपेक्षा करनेसे श्वासावरोध होकर प्राणान्त हो सकता है। इसलिये कण्ठरोगकी चिकित्सा सावधानी और और शीघ्रतासे करनी चाहिये।

अपथ्याहार

दन्तरोगोंमें खट्टे फल, ठण्डा पानी, रूखाभोजन, दतून करना, कड़े पदार्थ खाना, बैंगन, आलू आदिका गरम गरम भुरता खाना हानिकारक है।

सभी मुख रोगोंमें सामान्यतः खट्टी वस्तुएं, दही, दूध, गुड़, उड़द, रूक्षान्न, कठिन, भारी और पौष्टिक अन्न तथा दिनमें सोना हानिकारक है। तेलोंमें जीवनीयतत्व प्रायः नहीं होता है; इसलिये खानेमें तेल लेना लाभदायक नहीं है। बादाम, अखरोट, मुरब्बा, सूखेफल, सोडा, चुकन्दर, किसमिस, खजूर, मैदेकीचीजें, अधिक चीनी, अधिक मक्खन, सदा हित नहीं होते।

पथ्याहार

सभी मुख रोगोंमें सामान्यतः पुराने चावल, जव, मूंग, कुलथी, करेला, परवर, कोमल मूली, पान, तीक्ष्ण और तिक्त.कटुरस पथ्य है। विशेषतः ऐसा आहार-विहार रखे जो कफ नाशक और रक्त-शोधक हो। जवकी दलिया और रोटी, काकुन, चावल, सावां, कोदोका भात देवे। मूग या कुलथी पहले यवक्षार या अन्य क्षारोदकमें भिगावे फिर उसीका चतुर्थांश या अष्टमांश क्वाथ कर स्नेह रहित जूस पिलावे। यद्यपि मुखरोगमें गरिष्ट भोजन निषिद्ध है; किन्तु ओजो-वर्धनीय जीवनसत्व ए० के अभावसे गलेमें खराबी, जुखाम, शिरोवेदना, रक्ताल्पता, दांतमें खराबी आती है। इसलिये हरे शाक, ताजे फल, पीले अन्न-शाक और फल, मक्खन, गाजर, टमाटर, चना आदि हित है। मुखरोगोंमें रक्तका सम्बन्ध रहता है। इसलिये ताजे फल, मुसम्बी, रक्त शुद्धि और वृद्धिके लिये रञ्जनीयसत्व विटामिन सी० की आवश्यकता होती है। मीठे नींबू, नींबू, सन्तरा, मीठा अनार, हरीधनिया, आंवला, पालक शाक आदिसे दांतोंके पोषणीय तत्व बढ़ते हैं। आलू-बुखारा, अंगूर, हरेशाक जो कच्चे खाये जायँ हित हैं। गण्डमाला, गलरोग और नाड़ी मण्डलकी दुर्बलता दूर करनेमें वृंहणीय तत्व वाले पदार्थों की आवश्यकता होती है। इसलिये कभी कभी मलाई, मूंगफली, पपीता, और मधुका उपययोग भी लाभदायक होता है।

मुखरोगोपयोगी यन्त्र शस्त्र

मुख रोगमें शल्यकर्म करनेके लिये जिन यन्त्रोंकी आवश्यकता पड़ती है उनका आकार प्रायः सलाई या शलाकानुमा होता है। इसके सिवाय आवश्यकतानुसार अन्य यन्त्र-शस्त्र भी उपयोगमें आते हैं।

यन्त्र—गलेका शल्य देखनेके लिये एक प्रकारका **नाड़ीयन्त्र** दश

अंगुल लम्बा और पांच अंगुल घेरेका होता है। जब रोगीके दांत बैठ जाते हैं तब दवा देनेके लिये मुंह खोलनेकी आवश्यकता पड़ती है। यों खुले हाथ दांत उघाड़नेसे अंगुली कट जानेका डर रहता है। अतएव अंगुलीकी रक्षाके लिये हाथी दांत या लकड़ीका **अंगुलित्राणक** यन्त्र होता है, जिसकी लम्बाई चार अंगुल होती है, आकार गऊके स्तनके समान होता है और उसमें ऊपर नीचे दो छिद्र रहते हैं। कीड़ा लगे हुए अथवा हिलते हुए दांत उखाड़नेके लिये जो यन्त्र होता है उसे **शरपुंखमुख यन्त्र** या दन्त पातन कहते हैं। इसकी लम्बाई चार अंगुल होती है। इसका मुख वाणपंखके समान रहता है।

शस्त्र—शस्त्रोंमें मण्डलाग्र शस्त्र (Spoon) का उपयोग गलशुण्डी तथा आंखोंकी पोथकीका छेदन और लेखन करनेके लिये किया जाता है। वत्र्मरोगमें भी उपयोग होता है। इसके फलका आकार तर्जनी अंगुलीके नखके अन्तनखके समान होता है। गलेकी व्याधि काटकर निकालने या फोड़नेके लिये **अंगुलिशस्त्रक** का उपयोग होता है। इसका फल आधा अंगुल लम्बा होता है। शस्त्रका आकार रोग और स्थानके अनुसार वृद्धिपत्र अथवा मंडलाग्रशस्त्रके समान रखा जाता है। इसका दूसरा नाम मुद्रिकाशस्त्र भी है। मुन्दरीका मुख खुला रहता है। प्रयोग करते समय इसे वैद्य तर्जनी अंगुलीसे लगाकर सूतसे कलाईमें बांध दे, जिससे अलग होकर गलेमें रुक न सके। गलेके स्रोतमें उत्पन्न रोगोंका छेदन-भेदन इससे ठीक होता है। उपजिह्विका या गलशुण्डी और आंखके अर्मर रोगमें बढ़े हुए मांसको पकड़नेके लिये **वडिश** शस्त्रका उपयोग होता है। मछली पकड़नेके कांटेके समान इसका आकार रहताहै। एक प्रकारके वडिशका कांटा ऊपरकी ओर मुड़ा रहता है और दूसरे प्रकारके वडिशके कांटेका मोड़ नीचे की ओर नतातन होता है। समूचा आकार छः अंगुलका होता है। जिसमें साढ़े पांच अंगुलकी मूठ और आधे अंगुलका मुख

होता है। नतातनका मुख अर्धचन्द्राकार रहता हैं और ऊपर मुड़े हुए स्वानतका मुख अच्छी तरह झुका रहता है। इससे गलेमें गये हुए कांटे आदि को भी खींच सकते हैं। इसीलिये इस यन्त्रका मुख अंकुशके समान रखा जाता है। दन्तशर्करा और कपालिका रोगमें शोधन करनेके लिये **दन्तशंकु** शस्त्रका प्रयोग होता है। इसका मुख आधा अंगुल रहता है। बराबर चार मुख होते हैं, धार तेज होती है। हाथमें पकड़ने की मूठ व्रीहि मुख शस्त्रके समान रहती है। दन्तशंकुके समान ही मुख वाला **दन्तलेखनक** शस्त्र होता है। इसके एक ओर तेज धार होती है और दूसरी ओर का भाग भोथला होता है। इसमें भी चार कोने होते हैं। वृन्त या मूठ व्रीहिमुखके आकार की रहती है। इसका उपयोग दांतोंका मैल और शर्करा निकालने में होता है। किसी स्थानमें मांसका उभाड़ हो या अधिमांस हो जाय तो वहांकी शिराओं का वेधन करनेके लिके **व्रीहिमुख** शस्त्रका उपयोग किया जाता है। इसका मुख धानकी नोकके सामन रहता है। फल डेढ़अंगुलका रहता है।

शस्त्रोपयोग--गलेमें यदि कोई शल्य अंटका हो तो कमलके डण्ठलमें डोरा बांध कर गलेमें डाले। जब शल्य डण्ठलमें अटक जाय तब डण्ठल और डोरे को बाहर खींच ले। यदि गलेमें लाखका टुकड़ा चला गया हो तो एक पोली नलीमें एक सलाई गरम कर बीचमें डाले। इससे सलाई की गर्मीसे लाख पिघल कर सलाईमें लिपट जायगी। तब सलाईको पानी डाल कर ठण्डा कर ले और फिर बाहर निकाल ले। उसके साथ ही लाखका टुकड़ा भी आ जायगा। इसी प्रकार गलेमें कोई अन्य शल्य चला गया हो तो एक सलाईमें लाख लगा कर उसे आग पर तपा कर नाड़ी यन्त्रके बीच डाल कर गलेमें डाले ताकि शल्य टिघली हुई लाखमें चिपट कर बाहर आ जाय। यदि गलेमें मछलीका कांटा अटक गया हो तो बालोंका एक गुच्छा डोरेमें बांध कर वमन द्रव्योंके पानीके साथ पीवे। जब वमन होगा तब बालोंमें लिपट

कर वान्तिके साथ बालोंके सहित बाहर आ जायगा। यदि गलेमें बाल अंटका हो तो कांटेमें डोरा बांध कर वमन द्रव्यके साथ पीवे तो वमनके साथ डोरेमें लिपट कर बाल भी आ जायगा। यदि मुंह अथवा नाकमें कोई शल्य इस प्रकार पहुँचा हो कि मुंह या नाकसे न निकल सकता हो तो उसे कोई न कोई उपाय कर कोठेमें ले जावे। वहांसे उसे वान्तिके द्वारा या विरेचन द्वारा निकाले। ददि गलेमें भोजनका कौर या कोई फल अटक गया हो तो पानी पीकर उसे नीचे उतारे अथवा गर्दन पर घूंसा मारे तो अटकी हुई वस्तु बाहर जायगी या भीतर चली जायगी।

पहले शोथ होता है, फिर शोथ पकने पर व्रण होता है। शोथ होने पर उसे ठण्डे लेप, सेंक, रक्तस्राव अथवा विरेचनके द्वारा पहले बिना पकाये बैठानेका प्रयत्न करे। यदि शोथ पक जाय तो उसे चीर कर या औषधियोंके द्वारा फोड़ कर बहा देना चाहिये। क्योंकि यदि मवाद भीतर रहने दिया जाय तो वह भीतर ही बढ़ कर सिरा-स्नायु-रक्त और मांसको उसी प्रकार जला देता है जैसे घासको आग। चिकित्सकको उचित है कि वह न तो अज्ञानतासे कच्ची सूजन को चीरे और न पके शोथ की उपेक्षा करे। कच्चे शोथमें सूजन कम होती है, दर्द कम होता और वहां हाथ रखनेसे उष्णता कम मालूम पड़ती है। उसका रङ्ग अन्य स्थानकी त्वचाके समान ही रहता है। शोथ कठिन और स्थिरता लिये रहता है। पकते हुए शोथमें वेदना रहती है, त्वचाका रंग बदल जाता है, शोथ की जगह पर ललाई आ जाती है, स्पर्शमें शोथका स्थान फूला हुआ रहता है और वहां चुभन होती है। अरुचि-दाह-जलन-पिपासा, ज्वर और निद्रानाश होता है। यदि वहां पर जमा हुआ घी रखा जाय तो वह टिघल जाता है। वहां हाथ रखनेसे स्पर्श सहन नहीं होता। जब सूजन पक जाती है तब वहां वेदना कम होती है, शोथकी जगह मैली, फीकी हो जाती है और वहां सिकुड़न पड़ जाती है। बीचका भाग ऊपर उठ आता है। खुजली और सूजन कम हो जाती है। शोथकी

जगह दबानेसे मवाद इधर उधर फिरता मालूम पड़ता है। मुख रोगमें शस्त्र कर्म करना हो तो शस्त्र कर्मके पहले रोगी को भोजन न दे और न वेदना भुलानेके ख्यालसे मद्य देवे। रोगीको पूर्वाभिमुख बैठा कर मर्म स्थानका विचार कर एकदम चीरे ताकि मवाद निकल जाय। सलाईसे पता लगा ले जहां तक मवाद हो चीर कर या दबा कर निकाल दे। कपाल-भौंह-दांतोंके मसूड़े-बाहु और गलेकी सान्ध, आंखोंके ऊपरी भाग, ओंठ, गाल, और गलेमें शल्य क्रिया करते समय तिरछा छेद या घाव करना चाहिये। इसके बाद रोगीको दिलासा देकर स्तम्भक औषधियोंके काढ़ेसे व्रण धोकर कपड़े अथवा रूईसे घाव पोंछ देना चाहिये। आवश्यकतानुसार गुग्गुल, अगर, सिरस, हींग, राल, बच और नीमके पत्तोंमें घी लगाकर उनकी धूनी देनी चाहिये। जिसपर शस्त्रोपचार हुआ हो उसे दिनमें नहीं सोना चाहिये। इससे व्रणमें खुजली, लाली, शोथ और मवादकी वृद्धि होती है। जिस पर शस्त्रकर्म हुआ है उसे नये अन्न, तिल, उड़द, मद्य, जांगल्य-मांसके सिवाय अन्य मांस दूध और ऊखके रसके पदार्थ खट्टी-खारी और तीखी चीजें,—मल रोकने वाले और विदाही, भारी और ठण्डे पदार्थोंसे परहेज करना चाहिये।

जिनके व्रण हो और व्रणपर शस्त्र क्रिया हुई हो उन्हें मद्य नहीं पीना चाहिये; क्योंकि मद्य तीक्ष्ण, रूक्ष और अम्लगुण विशिष्ट होनेसे व्रणको शीघ्र ही बिगाड़ता है। व्रणको घिसना, खुजलाना या दबाना ठीक नहीं है। उसमें जलन होती हो तो मोरपंख या खसके पंखे से हवा कर सकते हैं। व्रणमें किसी प्रकार धक्का नहीं लगने देना चाहिये। शस्त्र क्रिया होनेके पश्चात व्रणको तीसरे दिन धोना चाहिये। दूसरे दिन नहीं; क्योंकि इससे जुड़ता हुआ व्रण अलग होता है और व्रणके भरनेमें विलम्ब लगता है। यदि व्रणमें बत्ती डालनी हो तो अतिस्निग्ध रूक्ष, ढीली अथवा बहुत कड़ी न हो उसे टेढ़ीमेढ़ी भी न डाले। जिस व्रणमें दुर्गन्धित मांस है। जिसमें कच्चापन है, जिसमें भीतर पोलापन, नाड़ीव्रण-नासूर है, उसमें बत्ती डालनेसे व्रणका

शोधन शीघ्र होता है। यदि गलतीसे अपक्व व्रणको पक्व समझकर शस्त्रक्रिया कर दी गयी हो तो पुल्टिश व्रणके विरुद्ध न हो उसे बांध कर उसे पका लेना चाहिये और ऐसे अन्नपानका व्यवहार करना चाहिये जो उसे पकानेमें सहायक हो। यदि किसी आघातके कारण व्रण हुआ हो और उसका मुँह फैला हुआ हो तो तुरन्त सी देना चाहिये।

मुखरोग

MOUTH DISEASES

तुलनात्मक नाम

१ वातज ओष्ठरोग Cracked Lips
२ पित्तज आदि ओष्ठरोग Herpes labialis
३ खण्डोष्ठ Hare Lip
४ जलार्बुद MucousCyst of the lip
५ रक्तज-मांसज-मेदज ओष्ठरोग Eopitheloma
६ शीताद Bleeding Gums-Spongy Gums
७ दन्त पुप्पुट Gum boil
८ दन्तवेष्टक Pyhrrhoea alveolaris
९ शौषिर
१० महाशौषिर
११ परिदर
१२ उपकुश
१३ दन्तवैदर्भ
(९–१३) Gingibitis Inflmmation of Gums
१४ वर्धन Extra tooth
१५ अधिमांस Impacted wisdom tooth
१६ नाड़ीव्रण Sinus
१७ दन्तविद्रधि Alvealar abcess
१८ दालन Tooth Ache
१९ क्रिमिदन्तक Dental Carries

२० दन्तहर्ष Odontitis
२१ दन्तशर्करा Tartar
२२ हनुमोक्ष Dislocation of Lower jaw
२३ जिव्हाकण्टकSuperficial Glossitis
ch
२४ वातकण्टक 4th stage ,, ,,
२५ पित्त कण्टक 3rd ,, ,, ,,
२६ कफ कण्टक 2nd ,, ,, ,,
२७ अलास Sublingual abcess
२८ उपजिव्हिका Renula, Salivary cyst
२९ गलशुण्डिका Elongated uqula (qvulitis)
३० तुण्डिकेरी Enlarged Tonsil (Tonsillitis)
३१ अध्रुष Pery-Tonsillar abcess
३२ तालुपाक Abcess of Palale
३३ तालुपुप्पुट Cystic Growth
३४ कच्छप Sarcoma
३५ रक्तार्बुद Epithelioma
३६ कण्ठशालूक Enlarged Adenoidese
३७ अधिजिव्हिका Epiglothtis
३८ रोहिणी Diphtheriai
३९ गलविद्रधि Pharyngial abcess
४० गलगण्ड Goitar
४१ मुखपाक Stomotitis
४२ वातिक मुखपाक Ulcerative Stomatitis
४३ पित्तज मुखपाक Gangrenous ,,
४४ महाशौषिर ,, ,,
४५ कफज मुखपाक Apthous ,,
४६ सप्तपथशोथ Pharyngitis